हिंदी में मुक्तक-काव्य की परंपरा
सं० १८५० तक

(प्रयाग विश्वविद्यालय की पी०-एच्० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध)

निर्देशक :
डॉ० रामकुमार वर्मा पी०एच० डी०, पद्मभूषण
अध्यक्ष, हिंदी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय,
प्रयाग।

लेखिका :
(श्रीमती, कांति केशी सिन्हा एम० ए०, साहित्य-रत्न)

सन् १९६५ ई०

प्राक्कथन

साहित्य में मुक्तक एक महत्वपूर्ण विधा है । मुक्तक की विशेषता उसकी रसात्मकता, चमत्कारिता तथा व्यंग-प्रयोग की सफलता में है । इस में विभावादि के संयोग द्वारा स्थायी भाव में या तो रसमग्नता की स्थिति आती है अथवा वैदग्ध्य - भंगी भणिति के द्वारा लोक - हित । मुक्तक दो रूपों में पाया जाता है, मुक्तक काव्य तथा गीति काव्य । मुक्तक काव्य में भंगी भणिति द्वारा चमत्कार की विशेषता है तथा गीति काव्य में स्वर और ताल सहित निश्छल उद्घाटन होता है । मुक्तक काव्य में उपदेश तथा आदर्शपूर्ण वर्णन होता है, गीति में हृदय की सच्ची अनुभूति । इन दोनों ही काव्य की परंपराएं आदि काल से चली आ रही है । प्रस्तुत शोध-प्रबंध का विषय मुक्तक काव्य पर ही अवलंबित होने के कारण यहाँ मुक्तक काव्य पर ही विस्तार से विचार किया गया है । मुक्तक काव्य की परंपरा आदि काल से ही चली आ रही है । वेदों में सूक्ति, संस्कृत काल में श्लोक, प्राकृत में गाथा, अपभ्रंश काल में दूहा, तथा हिन्दी में दोहा एक ही परंपरा की कड़ियाँ है । इन में समय के अनुसार विषयों में भी परिवर्तन हुआ है पर आदि प्रवृत्ति एक ही सी है । वैदिक काल में व्यक्ति प्रकृति प्रेमी था, संस्कृत काल में व्यक्ति मानव के सौंदर्य की ओर थोड़ा थोड़ा उन्मुख होने लगा, प्राकृत काल में उस की पूरी रुचि मानव के सौंदर्य की ओर प्रवृत्त होगई । सौंदर्य - प्रियता अपनी चरम सीमा पर इतनी पहुंच गई कि अपभ्रंश काल तक आते आते उस से अरूचि होगई । हिन्दी कवियों ने सभी परंपरा का निर्वाह सुन्दरता से किया । इस शोध-प्रबंध में इसी का विवेचन है

साहित्य में मुक्तक काव्य का स्थान महत्वपूर्ण है अतएव इस की ओर बहुतों की प्रवृत्ति हुई । मुक्तक काव्य के अन्वेषण से सम्बद्ध अनेक पुस्तकें प्राप्त होती है ।

१- मुक्तक काव्य का विकास - श्री जितेन्द्र नाथ पाठक

२- मुक्तक काव्य की परंपरा और बिहारी - डा॰ राम सागर त्रिपाठी

३- काव्य रूपों का मूल स्रोत और उनका विकास - डा॰ शकुन्तला दुबे

४- हिन्दी संत साहित्य - डा॰ त्रिलोकी नारायण दीक्षित

५- संत साहित्य - डा॰ सुदर्शन मजीठिया

६- रीति काव्य में शृंगार परंपरा और महाकवि बिहारी - डा॰ गणपति चन्द्र गुप्त

७- हिन्दी नीति काव्य - डा॰ भोला नाथ तिवारी

८- हिन्दी में नीति काव्य का विकास - डा॰ राम स्वरूप शास्त्री

<u>मुक्तक काव्य का विकास</u> - इस में मुक्तक की परिभाषा, मुक्तक की विशेषता, मुक्तक के प्रकार वर्णित है । अपभ्रंश साहित्य के मुक्तकों का विवेचन ऋतु वर्णन, स्तुति परक, शृंगार वर्णन तथा वीर रस की दृष्टि से किया गया है । इस में परंपरा अपभ्रंश तक ही सीमित है । हमें शोध-प्रबंध में अपभ्रंश साहित्य को जानने में इस से बड़ी सहायता मिली ।

<u>मुक्तक काव्य की परंपरा और बिहारी</u> - इस में त्रिपाठी जी ने प्रथम खंड में मुक्तक काव्य के विभिन्न अर्थ, मुक्तक का क्षेत्र तथा ऋग्वेद के मुक्तकों का विवेचन किया है । इस में संस्कृत-प्राकृत साहित्य के शृंगार परक काव्य तथा धार्मिक मुक्तक और सूक्ति काव्य का विवेचन है । द्वितीय खंड में बिहारी का विशेष अध्ययन है ।इस में नीति साहित्य पर दृष्टिपात नहीं किया गया है तथा संतों की परंपरा पर भी विशेष ध्यान नहीं है ।

<u>काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास</u> - इस में मुक्तक काव्य को दो धाराओं में बांटा गया है, ऐहिकता-परक तथा आमुष्मिकता- परक । ऐहिकता परक काव्य में अन्तर्गत नीति एवं उपदेशात्मक मुक्तक तथा शृंगार परक मुक्तक आदि हैं, आमुष्मिकता- परक में ईश्वरोपासना आदि ।इस में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी के

आदि काल तक के मुक्तकों का वर्णन है । निर्गुण धारा, रीति काल की विशेषताओं का वर्णन, मुक्तक के विभिन्न रूप, मुक्तक का विश्लेषण, मुक्तक का वर्गीकरण आदि सभी का थोड़ा बहुत विवेचन है । इतना ही है कि इस में भावों के विकास पर कोई व्याख्या नहीं हुई ।

<u>हिन्दी संत साहित्य तथा संत साहित्य</u> - दोनों में ही संतों की भाव शैली का विवेचन है । कवियों के जीवन, उन की दार्शनिक पृष्ठभूमि का चित्रण किया गया है ।

<u>हिन्दी नीति काव्य तथा हिन्दी में नीति काव्य का विकास</u> - इन में संस्कृत,प्राकृत, अपभ्रंश में नीति के काव्य की परिभाषा, भारतीय नीति काव्य की परंपरा, आदि काल, वीर काल, भक्ति काल के नीति काव्यों का विवेचन है । इस में प्रबंध के अन्तर्गत नीति का भी वर्णन किया है ।

इस के अतिरिक्त मुक्तक के कवियों पर विशद विवेचन है, बिहारी केशवदास, मतिराम, चरनदास, रैदास, मलूकदास आदि पर भी शोध-प्रबंध मिलते हैं । हिन्दी बृहद् साहित्य के इतिहास में रीति बद्ध कवियों का विवेचन है । सभी लेखक अपने दृष्टिकोण की पुष्टि में सफल हुए हैं ।

इस शोध-प्रबंध में मुक्तक काव्य का भावगत विवेचन है । जो विचार कवि के हृदय में वैदिक काल में सूक्तियों में पिरोए गए थे वे ही संस्कृत काल में दृष्टिगत होते हैं भले ही थोड़ा उन में परिवर्तन हो गया है । आज भी हिन्दी में वही विचार पाए जाते हैं इसी को लेखिका ने दिखाने का प्रयास किया है, लेखिका ने अपने शोध-प्रबंध को ७ अध्यायों में विभाजित किया है ।

प्रथम अध्याय में मानव की प्रवृत्ति के अनुसार उपासना-परक, शृंगार-परक तथा नीति-परक के अन्तर्गत संस्कृत,प्राकृत, अपभ्रंश की परंपरा दिखाई गई है ।

द्वितीय अध्याय में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश काव्यों का हिन्दी उपासना-परक, शृंगार-परक, तथा नीति-परक काव्य पर प्रभाव का विवेचन है ।

तृतीय अध्याय में उपासना-परक दोहे, सोरठा, कवित्त, सवैया, कुंडलियां, छप्पय की परंपरा दिखाई है । उपासना-परक विचारों की व्याख्या करने के लिए मुक्तक साहित्य का विभाजन निम्न लिखित शीर्षकों में किया गया है

आराधना-पद्धति, अन्य-पूजनीय व्यक्ति, विश्वास तथा आचार-शास्त्र

चतुर्थ अध्याय में शृंगार-परक दोहा, कवित्त सवैया, सोरठा, कुंडलियां, बरवै का विवेचन है । शृंगार-परक में शीर्षक रूप वर्णन, मान वर्णन, संयोग शृंगार तथा वियोग शृंगार का वर्णन किया है ।

पंचम अध्याय में नीति-परक दोहा, कवित्त सवैया, सोरठा, कुंडलियां, बरवै तथा छप्पय का वर्णन है । नीति-परक का विवेचन वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारिक, स्वाभाविक, प्राकृतिक तथा नैतिक नीति के अन्तर्गत किया है ।

षष्ठ अध्याय में कवियों की शैली का विवेचन है । इस में लेखिका ने अन्त में भिन्न भिन्न कवियों की शैली में क्या अन्तर है इस का भी प्रयास किया है । विषय की दृष्टि से थोड़ा सा तुलनात्मक अध्ययन भी कवियों का किया है ।

सप्तम अध्याय में उपसंहार तथा उपलब्धि है ।

इस से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि समय तथा समाज के अनुसार मुक्तक साहित्य ही पनप सकता था तथा मुक्तक की परंपरा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है ।

मुक्तक साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है । बहुत से मुक्तकों के लेखकों का भी पता नहीं है ।यह साहित्य तो भरा पड़ा है ।

इतने कवियों का विवेचन होना कठिन था इस से हम ने अधिकतर बेल्वेडियर प्रेस की संत बानी संग्रह के कवियों का तथा उन से रसखान और घनानंद जी को तुलनात्मक अध्ययन के लिए ले लिया है। कवित्त सवैया में राम चन्द्र जी, गंगा जी, हनुमान जी के प्रति अनेकों पचीसी तथा पचासा मिलते हैं पर ठीक से इन लेखकों का पता नहीं लगता, इसके अतिरिक्त शृंगार-परक, नीति-परक काव्य भी पड़े हैं, सबका विवेचन करने से शोध-प्रबंध का कलेवर बहुत बढ़ जाता, अतः सब का समावेश न हो सका। हस्तलिखित पुरानी पुस्तकों में तो मुक्तक साहित्य प्रचुर मात्रा में है, वास्तव में हिन्दी साहित्य में इतने काव्य हैं कि जाने कितने शोध-प्रबंध लिखे जा सकते हैं।

अंत में मैं उन सब लेखकों की आभारी हूं जिन की पुस्तकों हम को सहायता मिली है। सब से पहले मैं पूज्य गुरुवर आदरणीय डा० राम कुमार वर्मा जी, प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय की आभारी हूं जिन के सुझाव बड़े उपयोगी हुए। मैं डा० दीन दयाल गुप्त जी, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय की कृतज्ञ हूं उन्हीं के कारण मैं लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा लाइब्रेरी की सहायता प्राप्त कर सकी। इस के अतिरिक्त डा० एम० बी० लाल, अध्यक्ष जीव-विज्ञान, लखनऊ विश्वविद्यालय, डा० प्रभाकर शुक्ल (लखनऊ विश्वविद्यालय), डा० श्री मुरारी सिन्हा (लखनऊ विश्वविद्यालय), डा० माता प्रसाद गुप्त (निदेशक हिन्दी इंस्टीट्यूट, आगरा), डा० रघुनाथ सहाय (हिन्दी इंस्टीट्यूट, आगरा) को मैं हृदय से धन्यवाद देती हूं जिन की सहायता पग पग पर मिलती रही। इस शोध-प्रबंध को पूरा करने में हमारे परिवार के लोगों ने सहायता दी अतः हम उन सब के आभारी हैं। इस के अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा की लाइब्रेरी, टैगोर लाइब्रेरी, लखनऊ विश्वविद्यालय तथा आचार्य नरेन्द्र देव लाइब्रेरी आदि सब की मैं ऋणी हूं।

विषय सूची

(४) मान वर्णन (५) संयोग शृंगार में प्रकृति चित्रण

(६) होली का वर्णन (७) वियोग शृंगार - वियोग में प्रकृति चित्रण

कवित्त और सवैयों में शृंगार-परक परंपरा

(१) रूप वर्णन, मान वर्णन, विहार, वियोग शृंगार - स्मृति,

स्वप्न दर्शन, संदेश - पत्र द्वारा संदेश, वियोग में वसंत ऋतु

शृंगार-परक बरवै की परंपरा

संयोग-शृंगार, प्रेम वर्णन, विरह वर्णन, विरह में सन्देश,

ऊधो प्रसंग, विरह में स्वप्न, विरह में ऋतु

<u>अध्याय ५</u> २७७-३२१

नीति-परक मुक्तक की परंपरा

नीति-परक दोहे की परंपरा

नीति-परक दोहे - संत साहित्य के अन्तर्गत

व्यक्ति सम्बन्धी, पारिवारिक

नीति-परक दोहे की परंपरा - भक्ति साहित्य के अन्तर्गत

आचरण, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक,

पारिवारिक, सामाजिक स्वाभाविक, नैसर्गिक

नीति-परक कवित्त सवैये की परंपरा

वैयक्तिक आचरण, मानसिक, सामाजिक, पारिवारिक

कुंडलियों में नीतिपरक परंपरा - वैयक्तिक आचरण, वैयक्तिक आध्यात्मिक, वैयक्तिक मानसिक, सामाजिक, पारिवारिक, स्वाभाविक, नैसर्गिक

नीति-परक सोरठे की परंपरा

वैयक्तिक आचरण, आध्यात्मिक नीति, सामाजिक

नीति-परक छप्पय की परंपरा

वैयक्तिक, सामाजिक,

वीरता-परक कवित्त सवैये की परंपरा

वीरता-परक छप्पय की परंपरा

अध्याय — (१)

मुक्तक की परिभाषा

'मुक्त' शब्द 'मुच्' धातु से बना है। 'मुच्' धातु का अर्थ होता है त्यागना, उन्मुक्त करना, खोलना, फेंकना आदि, 'मुच्' धातु में 'क्त' प्रत्यय लगाने से मुक्त शब्द बना। मुक्त शब्द के भी अनेकों अर्थ होते हैं। कोशकारों ने इसके कई अर्थ किए हैं।

१। जिसे मुक्ति या मोक्ष मिल गया हो [१]

२। बंधन से छूटा हुआ [२]

३। बंधन रहित [३]

४। चलाने के लिए फेंका हुआ कोई अस्त्र [४]

५। प्रसन्न, आनन्दित [५]

६। रिक्त, खाली, फरागत पाया हुआ [६]

७। त्यक्त, निर्मुक्त, निस्तीर्ण, च्युत, निर्बन्ध, स्वच्छंद, स्वाधीन [७]

इसी 'मुक्त' शब्द में 'कन्' [८] प्रत्यय लगाने से मुक्तक शब्द बना। प्राचीन साहित्य में मुक्तक शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया गया है। 'मुक्तक' शब्द (१) एक प्रकार का अस्त्र [९] (२) स्फुट या उद्भट काव्य जो प्रसंग से पूर्ण हो [१०] (३) एक प्रकार का गद्य जिसमें समास का बहुत कम प्रयोग किया हो [११]।

१। सूर कोश सातवाँ खंड पृ. ११२६ २। वही ३। भारतीय हिन्दी कोश पृष्ठ ७१९

४। वही ५। श्रीधर भाषा कोश पृष्ठ ५५१

६। बृहत् पर्यायवाची कोश पृ. २३२ ७। बृहत् हिन्दी कोश पृ. १०३८ ८। संज्ञायां कन् ५।३।८७

९। ब्रजभाषा सूर कोश पृ. १३७८ १०। वही ११। विशाल शब्द सागर पृ. ११०५

⑩ मुक्तकमन्येनालिंगितं तस्य संज्ञायां कन्: ध्वन्यालोक की लोचन टीका ३.६

केवल 'शब्द कल्पद्रुम' में 'मुक्त' शब्द के निम्नलिखित अर्थ दिए हैं ।

> बिना कृतं विरहित व्यवच्छिन्नं विवेचितम
>
> भिन्नं स्वार्थं निकृष्टे मुक्तं मोक्षविशेषणम ।

अर्थात अर्थ में निराश्रित, स्वतंत्र, रसनिष्पत्ति में स्वतंत्र, अपने अर्थ को स्पष्ट करने में स्वतः पूर्ण काव्य, गति चमत्कृति और रमणीयता देने में समर्थ, शब्द का पूर्ण अर्थ देने वाला काव्य मुक्तक कहलाता है । अब साहित्य में 'मुक्तक' शब्द स्वतंत्र, निरपेक्ष और फुटकर कविता में रूढ़ि हो गया है ।इसी अर्थ में अधिकतर विद्वानों ने 'मुक्तक' शब्द की परिभाषा की है ।

संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्धारित परिभाषा -

मुक्तक की परिभाषा का रूप कब से आरम्भ हुआ यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वैदिक काल में तो सभी पद मुक्तक कहलाते थे ।सब से पहले भामह का काव्यालंकार तथा दण्डी का काव्यादर्श मिलता है, जिस में मुक्तक का रूप निश्चित करने का प्रयत्न किया गया है ।भामह ने अलंकार शास्त्र में काव्य के विभाजन में 'बद्ध' और 'अनिबद्ध' कहा है ।यही अनिबद्ध शब्द मुक्तक की व्याख्या करता है ।इसी अनिबद्ध को गाथा कहकर विवेचन किया गया है । श्लोक मात्र की प्रबन्धक रहित रचना को गाथा कहा है, उसमें वक्रोक्ति स्वभावोक्ति आदि सभी होता है ।

> सर्गबन्धो अभिनेयार्थं तथैवाख्यायिकाकथे
>
> अनिबद्धश्च काव्यादि तत्पुनः पंचधोच्यते - भामह

अब तक मुक्तक की कोई परिभाषा निश्चित रूप से न हो सकी थी ।दंडी ने अपने काव्यादर्श में मुक्तक को महाकाव्य का अवयव माना है ।

> मुक्तकं कुलकं कोषः संघात इति तादृशः
>
> सर्गबन्धांश रूपत्वादनुक्तः पद्य विस्तरः । १।१३। काव्यादर्श

काव्यादर्श के टीकाकार तरुण वाचस्पति ने मुक्तक रूप का स्पष्टीकरण किया है । "मुक्तक" एक ऐसा सुभाषित है जो इतर की अपेक्षा नहीं रखता[१] । दूसरे टीकाकार हृदयंगम ने काव्यादर्श की टीका में लिखा है "मुक्तक वह श्लोक है जो वाक्यांतर की अपेक्षा न रखता हो[२] । इसके अनन्तर आचार्य वामन् ने अनिबद्ध (फुटकर : मुक्तक) को एक पद्य का अलग भेद मान लिया है । इनके विचार से पहले अनिबद्ध की सिद्धि कवि को करनी चाहिए तब निबद्ध रचना करे । जैसे कि माला बनाने के बाद ही मौर की कुशलता आती है वैसे ही पहले मुक्तक रचना में निपुण होना आवश्यक है । इनका कहना है कि मुक्तक की सिद्धि करने पर वहीं न रुक जावे । मुक्तक रचना पर ही इतिश्री न समझे । यह दोषयुक्त है । अग्नि में अकेले परमाणु के समान मुक्तक शोभित नहीं होता । केवल इससे ही काव्य शोभायमान नहीं होता[3] ।

आचार्यों ने अभी तक काव्य की आत्मा अलंकार और नाटक की आत्मा को रस माना था । धीरे धीरे आचार्य इस तथ्य पर पहुंचे कि काव्य में भी रसनिष्पत्ति हो सकती है । वाग्वैधग्ध्य (अलंकार) के साथ में रस की भी अपरिहार्यता स्वीकार की गई है । अग्निपुराण में मुनि ने काव्य महाकाव्य को ही कहा है, जिसमें रस की आवश्यकता है पर मुक्तक में तब भी चमत्कार को ही महत्ता देते रहे । "मुक्तकं श्लोकं एकैकश्चमत्कारक्षमः सताम्[४] ।

---

१ - मुक्तकमितराम पेक्षमेक सुभाषितम्   २- मुक्तकं वाक्यांतरं निरपेक्षो यःश्लोकः
काव्यादर्श - Edited by M. Rangacharya 1910 Madras

३ - मुक्तक काव्य परंपरा - डा० रा० सिं० ५.६

४ - अग्निपुराण ३३७ -(३३७ - ३५)

अर्थात् जो चमत्कार उत्पन्न कर सके वह मुक्तक है। इससे इतना तो निश्चित हुआ कि मुक्तक का रूप निर्धारित हुआ, यद्यपि इसको कोई स्थान नहीं मिला। मुक्तक में रस की महत्ता स्थापित करने वाले आलोककार आनन्दवर्धन ही हैं। उन्हों ने ध्वन्यालोक में मुक्तक के रूप का पूर्णतया विश्लेषण किया है। रस की दृष्टि से विवेचन करते हुए मुक्तक में रस को प्रधान-तत्व माना है।

"प्रबन्धे मुक्तके चापि रसादीन बन्धुमिच्छतां।

इन्हों ने मुक्तक को भी वही स्थान दिया है जो प्रबन्ध को है। मुक्तक न तो प्रबन्ध का एक अंग ही है और न कवि की प्रथम सीढ़ी। मुक्तक के कवि को भी स्थान दिलाया गया है जो एक प्रबन्धकार को मिला। इनकी दृष्टि में रस की अनिवार्यता जैसे नाटक में है, वैसे ही मुक्तक में है। एक श्लोक भी पाठक के हृदय में रस का संचार कर सकता है। वास्तव में काव्य का लक्ष्य यही है "रमणीयार्थ प्रतिपादकं काव्यम्" अतः ध्वनिकार के अनुसार ही मुक्तक को काव्य का रूप मिला तथा साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ। इसके बाद के आचार्यों ने मुक्तक काव्य की परिभाषा इसी की पुष्टि में दी। विश्वनाथ ने कहा है "निरपेक्ष पद्य को मुक्तक कहते हैं"। काव्य मीमांसा में राजशेखर ने स्फुट या स्वतंत्र कविता को मुक्तक कहा है। भट्टभट्ट द्वितीय के अनुसार "एक छन्द मुक्तक कहा जाता है। हिन्दी के आचार्यों ने भी कुछ कुछ इसी तरह की परिभाषा की है।

हिन्दी साहित्य के आचार्यों द्वारा मान्य परिभाषा

मुक्तक के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल की परिभाषा अधिक व्यवस्थित लगती है। मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नहीं बहती, जिस में कथा प्रसंग की परिस्थिति में भूला हुआ पाठक रस मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थाई प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें रस की छींटें पड़ती हैं, जिससे हृदय की कलिका खिल उठती है। यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक

चुना हुआ गुलदस्ता । जिस काल तथा परिस्थिति में मुक्तक की रचना अधिक हुई उस दरबारी वातावरण में मुक्तक के गुलदस्ते की ही आवश्यकता थी । काव्य के उसी अंग का विकास हो सकता था । श्री श्याम सुन्दर दास जी के कथनानुसार मुक्तक पद्य उस व्यक्ति के समान है जो स्वयं अपने लिए खेती करता है , कपड़ा बुनता है तथा अपने अस्तित्व के लिए सभी आवश्यक कार्यों को स्वयं करता है । मुक्तक में एक ही व्यक्ति अपनी अलग दुनिया बना कर रहता है । उस में प्रत्येक पद्य की अपनी अलग सत्ता रहती है । अपने अस्तित्व के लिए उसे दूसरे पदों का सहारा नहीं लेना पड़ता । पूर्वापर प्रसंग के निर्देश के लिए और पदों का सहारा न होने पर भी जिस में रस की अभिव्यक्ति हो जाए उसे मुक्तक कहते हैं ।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि जिस में कोई विशिष्ट कथा नहीं होती है और जो स्वच्छन्द रूप से किसी पद्य का गद्य खंड के सहारा कोई रस या भाव या तथ्य को व्यक्त करता है, उस बन्धहीन रचना को निर्बन्ध या मुक्तक कहते हैं। पूर्व या पर से निरपेक्ष जो एक ही पद्य में रसचर्वणा में पूर्ण सहायक होवह मुक्तक है । डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने अपनी पुस्तक शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त में मुक्तक के बारे में अपने विचार प्रकट किए हैं "मुक्तक उस रचना को कहते हैं जिस में प्रबन्धत्व का अभाव रहते हुए भी कवि अपनी कल्पना की चमत्कार शक्ति और भाषा की समास शक्ति के सहारे किसी एक रमणीय दृश्य या परिस्थिति, घटना या वस्तु का ऐसा चित्रात्मक एवं भावपूर्ण वर्णन करता है जिस से पाठकों को प्रबन्ध जैसा आनन्द आने लगता है"। डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार मुक्तक वह पद्य काव्य है जिस में कोई कथा प्रवाह रूप में नहीं चलती और जिसका प्रत्येक पद्य स्वच्छन्द और पूर्ण होता है । डा० नगेन्द्र ने कहा है मुक्तक में व्यापकता का समावेश संभव नहीं, परन्तु इसकी एकाग्रता सहज ही तीव्रता की सृष्टि कर सकती है, और काव्य के लिए व्यापकता की अपेक्षा तीव्रता का मूल्य कुछ कम

महत्वपूर्ण नहीं है । वर्ण का गौरव भी है और भाव का भी । वनस्थली की अपनी शोभा है और पुष्पस्तव की अपनी ।

इन सब प्राचीन तथा नवीन आचार्यों की परिभाषायें देखने के बाद हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मुक्तक वह रचना है जिस में पूर्वा-पर सम्बन्ध के बिना कथा- प्रवाह के बिना भी काव्य पढ़कर हमें ब्रह्मानन्द के समान आनन्द प्राप्त हो सकता है। प्रभाव भले ही सूक्ष्म हो, व्यापक न हो, रसाभिव्यक्ति न हो, चाहे केवल चमत्कारयुक्त हो, पर अपने में पूर्ण एक ही छंद वाली रचना भावों से परिपूर्ण जीवन की लघु घटना को हृदयंगम कराने में समर्थ हो, वही मुक्तक है । तीव्रता भी कभी कभी उतना ही आनन्द प्रदान करती है उसकी भी महत्ता है । इन सब परिभाषाओं को देखकर अब यह जानने की इच्छा होती है कि मुक्तक काव्य के कितने भेद हो सकते हैं। मुक्तक काव्यों के भेद दो चार आचार्यों को छोड़कर हमें प्राचीन आचार्यों द्वारा ही मिलते हैं, क्योंकि मुक्तक का युग रीतिकाल तक ही रहा । उसके बाद जो हमें मुक्तक मिलते हैं वह स्वच्छंद मुक्त छंद के आगे नीरस हैं । बीसवीं सदी के आधुनिक गीतकारों ने न तो मुक्तक रचना की ओर न ध्यान ही दिया और न शास्त्रीय अध्ययन करने की आवश्यकता समझी ।

<u>काव्य के भेद</u>

अग्निपुराण में श्रव्य, अभिनेय तथा प्रकीर्ण भेद किए गए हैं । श्रव्य में सब तरह के काव्य आ जाते हैं। प्रबन्ध और मुक्तक का अलग अलग विभाजन नहीं किया है । इसके बाद भामह ने काव्यशास्त्र में `सर्गबद्ध`, अभिनेयार्थ (नाट्य) आख्यायिका कथा तथा अनिबद्ध किए हैं । इसमें भी मुक्तक का नाम नहीं है । प्रबन्ध सर्गबद्ध है तथा अनिबद्ध मुक्तक है । दंडी, वामन तथा रुद्रट ने पद्य और गद्य विभाजन किया है । पद्य में मुक्तक और सर्गबद्ध अलग अलग हो गया है । हेमचन्द्र ने भी दृश्य और श्रव्य विभाजन किया है। नवीन आचार्यों में पं० विश्वनाथ प्रसाद जी ने काव्य के

भेद बन्ध और निर्बन्ध किए हैं । डा० श्याम सुन्दर दास इसी को प्रबन्ध और मुक्तक कहते हैं ।डा० भगीरथ मिश्र ने प्रबन्ध, निबन्ध और निर्बन्ध काव्य कहा है ।

इन सब विचारों से यही निष्कर्ष निकलता है कि जिस रचना में कथा क्रमबद्ध कही जाती है वह प्रबन्ध काव्य है तथा जिस रचना में प्रत्येक पद्य स्वतंत्र होता है किसी रस, भाव या तथ्य का निरूपण होता है वह मुक्तक कहलाता है । श्याम सुन्दर दास जी कहते हैं कि प्रबन्ध काव्य में सभी पद्य एक दूसरे का सहारा लिए रहते हैं । एक पद्य कुछ अपनी कहता है और कुछ आगे की कथा की वृद्धि के लिए कहता है । रस निष्पत्ति कराने के लिए विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव आदि बहुत सामग्री का स्थायी भाव के साथ मिलन होना आवश्यक है । प्रबन्ध काव्य के पद्य प्रबन्ध गत होते हैं कथा वर्णन के आधीन तथा परस्पर सम्बन्धित रहती है । प्रबन्ध में ही विषय का ज्ञान होता है । पाठक भाव में मग्न होता है तथा रस का संचार होता है । रवीन्द्र बाबू का मत है कि वर्णनानुगुण से जो काव्य पाठक को उत्तेजित कर सकता है, करुणाभिभूत, चकित, स्तम्भित, कौतूहली और आग्रहवान् को प्रत्यक्ष करा सकता है वह महा - कवि है । निबन्ध काव्य में छंद किसी विचार सूत्र या भाव धारा से अनुस्थित रहते हैं । इस रचना में भाव या विचार का विकास क्रमशः दिखलाई देता है । प्रबन्ध काव्य में भी कई भेद होते हैं । (१) पुराण, (२) आख्यान, (३) महाकाव्य । पुराणों में सृष्टि के आरम्भ और विकास की कथा कही गई है । आख्यान वह प्रबन्ध है जिस में प्रेम, नीति, भक्ति आदि के निरूपण के लिए काल्पनिक रोचक कथानक का सरस मधुर शैली में वर्णन होता है । महाकाव्य के अंग हैं कथावस्तु,नायक, रस, छंद, वर्णन, नाम और उद्देश्य । . . प्रबन्ध काव्य का दूसरा भेद है खंडकाव्य । इस में कथावस्तु संपूर्ण न होकर जीवन

का एक अंग होती है । बहुत सी विशेषताएं प्रबन्ध काव्य के प्रत्येक भेद में समान हैं । अत: प्रबन्ध काव्य और मुक्तक की ही विशेषताओं पर विवेचन हम करते हैं ।

<u>मुक्तक काव्य और प्रबन्ध काव्य की विशेषताओं में अन्तर</u> -

प्रबन्ध में सानुबन्ध कथा होती है । कथा में पूर्वापर सम्बन्ध निर्वाह प्रकथन प्रवाह, कथावस्तु का सुगठित विन्यास एवं रांग-रस-परिपाक अवश्य पाया जाता है । मुक्तक काव्य में इनका पूर्णतया अभाव रहता है । मुक्तक में निरपेक्ष चित्रण, चमत्कार योजना, रसाभिव्यक्ति आदि तत्व विद्यमान हैं । प्रबन्ध काव्य उद्देश्य प्रधान होता है । कलात्मक आनन्द के साथ साथ कुछ उद्देश्य अवश्य रहता है । मुक्तक में उद्देश्य की झलक मात्र होती है । चमत्कार के द्वारा उद्देश्य प्रकट किया जाता है । बौद्धिक ऊंचाई, भावों की गंभीरता, व्यापकता तथा दृष्टिकोण पूरे जीवन पर आधारित होते हैं । भावुकता और काल्पनिकता की अतिशयोक्ति होती है । पर मुक्तक में जीवन के कुछ क्षण, कोई मार्मिक चित्र, कोई क्षणिक आवेग तथा तीव्र भाव का ही वर्णन होता है । जब प्रबन्धकार यथार्थ पूर्ण जीवन के विविध पक्षों का चित्रण करता है तब मुक्तककार कल्पना की उड़ान के सहारे किसी क्षण की घटना का चित्तबद्ध चित्रण करता है । भाव साधारण होगा पर चित्रण ऐसा होगा कि पाठक का मन उधर आकर्षित हो जायेगा । बिहारी का एक दोहा देखिए -

अज्यों न आए सहज रंग विरह दूबरे गात ।
अबकी कहा चलाइयत ललन चलन की बात । (बि० र० २०३)

'विरह दूबरे गात' से ही नायिका का पूरा चित्र सामने आ जाता है और हृदय खिंच जाता है । प्रबन्ध में नाटकीय संधियां होती हैं । इसके परिपाक के लिए विशाल क्षेत्र रहता है पर मुक्तक के पास तो स्थान की कमी रहती है। एक एक शब्द कवि को चुन चुन कर रखना पड़ता है कि विभाव,

अनुभाव, संचारीभाव पाठक को उसमें मिलें जिस से वह रससिक्त हो सके, समझ लीजिए मुक्तक एक संकीर्ण नली होती है । इस में शृंखला का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता, कथा न होते हुए भी पाठक स्वयं ही संदर्भ लगा लेता है इसी से कवि को प्रचलित शब्दों या काव्यशास्त्र के नियमों के अनुसार चलना पड़ता है । जिस से पाठक को प्रसंग समझने में आसानी होती है । कल्पना या ऊहा का प्रयोग मुक्तक के अधिकांश में होता है पर यह देखने से पता चलता है कि ऊहा जब अस्वाभाविकता का रूप धारण कर लेती है तब वही मुक्तक रचना कठिन तथा नीरस प्रतीत होने लगती है । काव्य - रूढ़ियों से बंधी हुई ऊहायें पाठक को अधिक रससिक्त करती हैं ।प्रबन्ध में सामग्री बहुत होती है जहां अधिक कल्पना से काम लिया जाता है वहीं कथा शिथिल हो जाती है जैसे रासो में । पर मुक्तक में कल्पना का संयोग होने से चमत्कार उत्पन्न होता है और उससे पाठक आकर्षित होता है ।

प्रबन्ध में नायक आदर्श होता है पर मुक्तक में नायक और नायिका सभी वर्ग के होते हैं । प्रबन्ध की कथा, प्रसिद्ध कथा, इतिहासिकपर अधिकतर आधारित होती रही (रीति काल तक), पर मुक्तक तो लोक जीवन से लिए गए। अधिकतर मुक्तकों का विकास प्राकृत और अपभ्रंश काल में हुआ जोकि जन नायकों पर आधारित था, इसी से ग्रामीणजन तथा सभी वर्गों से नायक नायिका का चित्रण हुआ । वैसे तो किसी व्यक्ति विशेष का चित्रण तो मुक्तक में होता ही नहीं ।अधिकतर तो व्यक्ति के भावों पर ही मुक्तकों का विस्तार पाया जाता है ।प्रबन्ध काव्य में कथानक वशीकरण होता है पर मुक्तक में क्षणिक उद्वेग अथवा घटना । हमारा ध्यान अधिकतर शब्द-चमत्कार तथा अर्थ-चमत्कार पर ही रहता है। रसचर्वणाथा चमत्कृति प्रबन्ध में केवल एक पद्य में अपेक्षित नहीं होती पर मुक्तक काव्य का प्रत्येक पद्य रस के समस्त उपकरणों सहित आता है। चमत्कृति एक ही पद्य में प्राप्त हो जाती है ।

डा० श्याम सुन्दर दास जी के विचार से प्रबन्ध में तो प्रसंग की परिस्थिति के साहचर्य से शब्द की अभिधाशक्ति द्वारा इस विषय में काम निकाल लिया जा सकता है, पर मुक्तककार को बार बार व्यंजना का सहारा लेना पड़ता है । मुक्तक में बहुधा पूर्वापर प्रसंग की कल्पना का कार्य सहृदय पाठक या श्रोता पर छोड़ दिया जाता है । श्रोता को मुक्तक का आनन्द लेने के लिए एक पूरे प्रसंग का अध्याहार करना पड़ता है । प्रबन्ध का प्रभाव स्थायी होता है और मुक्तक का क्षणिक ।आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी के शब्दों में `कथा प्रसंग` की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है । हृदय में एक स्थाई भाव ग्रहण करता है किन्तु मुक्तक में रस की स्निग्ध छींटे पड़ती हैं जिन से हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है । आधुनिक गीतकारों ने मुक्तक काव्य के स्थान पर मुक्त छंद का अधिक प्रयोग किया है । वह भी गीति-काव्य की विशेषताएं अधिक लिए हुए हैं । इस में हमको विस्तृत विवेचन नवीन आचार्यों द्वारा नहीं मिलता ।

मुक्तक के प्रकार -

संस्कृत आचार्यों ने मुक्तक काव्य का बड़ा विवेचन किया है तथा मुक्तक काव्य अपनी शाखा प्रशाखा में प्रस्फुटित हुआ है । इस से मुक्तक कई प्रकार के मिलते हैं । सर्व प्रथम दंडी ने काव्य प्रकाश में मुक्तक, कुलक, कोष[1] नाम दिए हैं | साहित्य में इन्हीं रूपों का अधिक प्रचलन रहा होगा । ध्वन्यालोक में आनन्दवर्धन ने मुक्तक, संदानितक, विशेषक, कलापक, कुलक और पर्यायबन्ध भेद किए हैं[2] ।

१- काव्य प्रकाश - हिंदी साहित्य कोश - ज्ञानमंडल प्रकाशन पृ० ५७५

२- ध्व:लो:का ३:७ - हिंदी

- मुक्तक काव्य

इसके बाद के आचार्यों ने इनको तो माना ही है साथ में थोड़े से भेद और बढ़ा दिए हैं । अग्निपुराण[1] में सांदानितक की जगह युग्मक माना है ।हेमचन्द्र[2] ने कोष प्रघट्टक विकीर्णक और संघात तथा विश्वनाथ[3] ने अध्या और बढ़ाया है ।सज्जनों को चमत्कृत करने वाला अपने आप में पूर्ण अर्थ करने वाला एक श्लोक `मुक्तक `दो श्लोक वाला युग्मक तीन वाला `विशेषक `चार वाला `कलापक`पांच वाला `कुलक होता है । मुक्तक के समूह को कोष कहते हैं । एक कवि कृत श्लोक समूह को `प्रघट्टक`कहते हैं । अनेक कवियों द्वारा लिखित मुक्तकों के संग्रह को `विकीर्णक` कहते हैं । वास्तव में `प्रघट्टक, विकीर्णक `पर्यायबन्ध सब कोष के ही रूप हैं ।यह विभाजन संख्या के आधार पर किया हुआ है ।

राजशेखर ने विषयगत भेद किए हैं वे पांच हैं । १- शुद्ध, २- चित्र, ३- कथोत्थ, ४- संविधानक और ५- आख्यानवान । इतिवृत्त वर्णन को `शुद्ध विस्तार के साथ चित्रित करने को `चित्र`प्राचीन कथा को `कथोत्थ` संभावित घटना को `संविधानक`तथा जिस में कल्पित आख्यान हो वह `आख्यानवान` कहलाता है[4]। इसके अतिरिक्त मुक्तक का भेद माध्यम की दृष्टि से भी किया जा सकता है-पाठ्य और गीति ।पाठ्य मुक्तक में कवि अपनी अनुभूति को सरस बनाकर सहृदय पाठक को रसमग्न कर देता है । इसी पाठ्य मुक्तक को आचार्य विश्वनाथ प्रसाद जी ने शुद्ध मुक्तक कहा है । आत्माभिव्यंजन पूर्ण काव्य को गीति काव्य कहते हैं । संस्कृत आचार्यों द्वारा मान्य मुक्तक के प्रकार देखने से

१- हिन्दी साहित्य कोश ज्ञानमंडल प्रकाशन वाराणसी - पृ. २८५

२- काव्यानु ८: १

३- सा. द. ६: ३१४: १५

४- काव्य मीमांसा राज शेखर नवमों अध्याय

पता चलता है कि मुक्तक को तो मान्यता बहुत पहले मिल चुकी थी पर गीति काव्य का कहीं उल्लेख नहीं है । गीति काव्य का अधिक प्रस्फुटन मध्य युग में हुआ है ।हिन्दी साहित्य में जितने भी संस्कृत में हैं उन में बहुत कम रूपों का प्रचलन रहा । कुछ का यदि है भी तो नाम बदल गए । 'युग्मक', 'कलापक' 'विशेषक' हिन्दी में नहीं मिलते । कुलक की जगह 'पंचक', 'अष्टक' 'दशक'आदि संख्यावाचक नाम स्वीकार कर लिए गए । कोष के स्थान पर पचासा, हजारा आदि नाम स्वीकार कर लिए गए ।गीति काव्य जोकि माध्यम की दृष्टि से बाद में प्रचलित हुआ उसका विकास प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी साहित्य में बहुत ही गया । मुक्तक और गीति में कुछ समानताएं भी हैं तथा कुछ असमानताएं भी हैं । विषय की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से, पूर्वापर प्रसंग रहित की दृष्टि से तथा निरपेक्ष की दृष्टि से तो मुक्तक और गीत में कोई अन्तर नहीं है । दोनों ही एक भाव को लेकर चलते हैं और उनकी समाप्ति भी उसी में हो जाती है । छन्द की दृष्टि से भी लघु और दीर्घता का ही अन्तर है । अपने में संपूर्ण दोनों ही रहते हैं । दोनों ही स्वतंत्र रचना हैं । दोनों ही संक्षिप्त हैं एवं भावों का एकीकरण होता है ।एक परिस्थिति, घटना या भाव का चित्रण होता है ।

पर गीति काव्य अनुभूति प्रधान काव्य है ।महादेवी वर्मा के शब्दों में 'सुख दुख 'की भावावेशमयी अवस्था को विशेष गिने चुने शब्दों में चित्रण कर देना ही गीत है । डा० राम कुमार वर्मा का विचार है गीत काव्य की रचना आत्माभिव्यंजना के दृष्टिकोण से होती है उस में विचारों की एकरूपता होती है । गीति काव्य की परिभाषा हमें पाश्चात्य साहित्य में भी मिलती है । रस्किन के शब्दों में कवि की निजी भावनाओं का प्रकाश होता है । सहज सुख

भाव, स्वच्छंद कल्पना, तर्कवाद, न्याययुक्तता से युक्त विचार ही गीति काव्य की विशेषता है । अर्नेस्ट-राइस का कथन है "स्वाभाविक भावात्मक अभिव्यक्ति हो, अनुभूति का सुन्दर आरोह अवरोह हो, माधुर्य युक्त हो, स्पष्ट हो वही गीति काव्य है ।निष्कर्ष यह निकलता है कि आत्माभिव्यंजन ही मुख्य विशेषता है । हम मुक्तक और गीति काव्य की विशेषताओं का विस्तृत विवेचन कर लेते हैं । वैसे तो कोई विशेष अन्तर नहीं कहा जा सकता । गेयतत्व गीति में प्रधान होता है पर सवैया और दोहा भी गाकर पढ़े जा सकते हैं पर कुछ तो विभिन्नता हमें मिलती ही है ।

<u>मुक्तक और गीति काव्य की विशेषताओं में अन्तर</u> -

गीति काव्य भावात्मक होता है । इस में अन्तर्वृत्ति की प्रधानता रहती है । मुक्तक में बौद्धिकता का आवरण पड़ा रहता है । बाह्य अलंकरण की ओर कवि उतना ही लीन रहता है जितना अपनी अभिव्यक्ति की ओर । गीतों की एक विशेषता है संगीत तत्व । गीति काव्य के लिए यह कथन उपयुक्त है कि कविता शब्दमय संगीत है और संगीत ध्वनिमय कविता[१] । अर्थात् जब भाव अतिसंगीतात्मक रूप से शब्दों द्वारा प्रकट होते हैं तब गीति काव्य का जन्म होता है । मुक्तक में इतिवृत्तात्मकता अधिक रहती है । उक्ति - वैचित्र्य में ही पाठक मग्न हो जाता है ।विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव पर कवि का ध्यान अधिक रहता है कि कहीं एक भी भाव छूट न जाए ।संगीत तत्व के कारण ही कोमलकान्त पदावली भी मुक्तक में मिलती है । गीति काव्य में दार्शनिक

१- Poetry is music in words and music is poetry in sound. The New Dictionary of Thought compiled by T.E. Edward and revised by C.N. Cahivons and J.E. Edwards Page:470.

तथ्यों का निरूपण नहीं रहता, मुक्तक में कान्तासम्मति उपदेश अधिकांश में पाए जाते हैं । गीति काव्य में अनुभूति की पूर्णता तभी होती है जब कवि अपनी कल्पना शक्ति द्वारा अनुभूति को मूर्त प्रदान कर देता है । जब यही विशिष्टतम अनुभूति पद्य के माध्यम से अभिव्यंजित होती है, तब गीति काव्य कहते हैं । पर मुक्तक में रागात्मक वृत्ति से कोई प्रयोजन नहीं है ।गीति काव्य में राग-रागनियां शास्त्रीय आधार पर होती हैं पर विषय की दृष्टि से शास्त्रीय आधार से कोई प्रयोजन नहीं । मुक्तक में थोड़े शब्दों में पूर्वापर प्रसंग की कल्पना करानी होती है, अपनी बात भी कहनी होती है इस से काव्य रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है । शास्त्रीय आधार पर अवलंबन लेकर भी कवि अपनी रचना को समझने योग्य बना लेता है । इस में कवि की बुद्धि का विकास अधिक प्रमुख होता है । कहीं कहीं तो अर्थ की अपेक्षा विषय और उक्ति के चमत्कार की ओर अधिक ध्यान देना पड़ता है इसी से अनुभूति की तीव्रता नहीं रहती ।

यह तो हुआ मुक्तक तथा गीति काव्य का अन्तर ।मुक्तक साहित्य का जो रूप है वह किन भावनाओं से प्रेरित होकर बना यह विचारने योग्य है । मानव की मनोवृत्तियों के कारण साहित्य का रूप भिन्न भिन्न पाया जाता है । बड़े बड़े मनोवैज्ञानिक मैकडूगल, फ्रायड आदि का कहना है कि जिज्ञासा, भय, विनीतता, काम प्रवृत्ति, आत्म-प्रकाशन, विकर्षण, तथा दूसरे की चाह आदि मूल प्रवृत्तियां हैं। जिज्ञासा के कारण मानव ने प्रकृति की शक्तियों को निरखा, परखा, भय की प्रवृत्ति से वह प्रार्थना करने लगा, तथा विनीतता की प्रवृत्ति से वह आदि शक्तियों के सम्मुख दैन्यता प्रदर्शन करता है । काम की प्रवृत्ति साहित्य में शृंगारिक वर्णन का उद्गम है । सामान्यतः बनाव, चुनाव, अलंकरण, साज या सजावट के अर्थ 'शृंगार' होते हैं । 'शृंग' शब्द का अर्थ मन्मथोद्भेद होता है[१] ।

१- शृंग हि मन्मथोद्भेदः (साहित्य-दर्पण)

इसी से श्रृंगार शब्द से तात्पर्य काम वासना के उदय से होता है । आत्म-प्रकाशन, विकर्षण तथा दूसरों की चाह की प्रवृत्ति मानव की मनोवृत्ति को ऊंचा कर नीति द्वारा मानव को ऊंचा उठाने का प्रयत्न है ।

<u>मुक्तक काव्य की परम्परा</u> -

आदि युग में मानव अपनी उत्सुकता अथवा जिज्ञासा की प्रवृत्ति के कारण विश्लेषण की ओर उन्मुख रहा होगा । वह प्रकृति की सुन्दरता को भिन्न भिन्न शक्तियों द्वारा संचालित देख कर आश्चर्यान्वित होता होगा । प्रातः में ऊषा का आगमन उसे आत्म-विभोर करता रहा होगा ।वह उसके सौंदर्य के परखने, निरखने में व्यस्त रहता होगा । प्रत्येक अणु अणु में उसे नवीनता दिखाई देती रही होगी । धीरे धीरे वह बाह्य - अलंकृति से चमत्कृत हो उसकी अन्तर्विभूति में भी झांकने लगा होगा, उसे लगा होगा प्रकृति की शक्तियां अग्नि, मरुत, इन्द्र, ऊषा केवल सुन्दर ही नहीं, वरन् उसकी रक्षा भी करते हैं। इन शक्तियों से भय की प्रवृत्ति शान्त होती होगी। धीरे धीरे उसे विश्वास होने लगा होगा कि ये शक्तियां मानव के कल्याण के लिए हैं तब उस में आत्मीयता का अनुभव होता होगा । वह उनकी ओर आकर्षित होकर, रूप सौंदर्य की मन ही मन प्रशंसा करने लगा होगा तथा कृतज्ञता का अनुभव भी करने लगा होगा । धीरे धीरे वह विनीत रहने लगा होगा । धीरे धीरे उसे आत्म-प्रकाशन की इच्छा बढ़ने लगी होगी । उसे अपने मनोभावों को व्यक्त करने की इच्छा उत्पन्न हुई होगी कि वह अपनी वाणी में प्रकट कर सके ।ऐसे प्रभावोत्पादक ढंग से कह सके कि वह रसोत्पादक हो । प्रकृति के सौंदर्य से आत्मविभोर हो दूसरों के सम्मुख काव्य के रूप में अपने भावों को व्यक्त करने लगा होगा । लिपि बद्ध न हो सकने के कारण स्मृति - पटल पर ही काव्य की लड़ियां अठखेलियां करती रही होंगी । धीरे धीरे उनको संजो कर रखने की प्रवृत्ति रही होगी ।यह इच्छा होगी कि भावी पीढ़ी के लिए इसको संचित किया जावे । सम्भव है इसी से आचार्य वामन् ने कहा कि मानव ने पहले मुक्तक का निर्माण

किया, बाद में मुक्तक और प्रबन्ध का विभाजन हुआ । इस मत की पुष्टि हमें मुक्तक की परिभाषा में मिलती है ।

मुक्तक का प्रथम संकलन ऋग्वेद है, जो कि शताब्दियों से बिखरी हुई लड़ियों का संग्रह है । इसके अध्ययन से पता चलता है कि मानव प्राकृतिक सौंदर्य से आविर्भूत था । उषा के स्वरूप से मुग्ध होकर कहता है 'अमर सुभाषित की प्रेरणा करती हुई, सुवर्ण रथवाली है देवि उषा चमको, सुनियंत्रित सुनहले रंग के घोड़े हैं, वह तुम्हें वहन करें[1] । मन की प्रवृत्ति से वह अपने स्वास्थ्य के लिए जल देवता से प्रार्थना करता है । 'हे जलो ' तुम वस्तुतः सुखकारी हो । तुम ठीक से हमें धारण करो, जिस से हम बलवान, महान, आनन्दयुक्त और प्रकाशयुक्त हों[2] । आनन्दमय जीवन हो इसकी कामना करता है । अमर होने की अभिलाषा करता है । शत्रुदमन की शक्ति मांगता है । सूर्य देवता, अग्नि देवता को प्रसन्न करना चाहता है, जिस से आयु बल की वृद्धि हो । विनीतता की प्रवृत्ति से सरस्वती से प्रार्थना करता है 'हे सरस्वती देवी, तू सच्ची वाणियों की प्रेरणा देने वाली है । तू सु-मेधावियों को जगाने वाली है तू सब यज्ञों को धारण करने वाली है[3]। [illegible] मधुर प्रभावशाली जीवन की इच्छा करता है । पवित्र जीवन चाहता है, पापों के नाश होने के लिए प्रार्थना करता है । शतायु जीवन की सफलता चाहता है । उसकी अभिलाषा है 'अदीनाः स्याम शरदः शतम् ', हम सौ वर्ष तक अदीन बन कर रहें[4] । पर एक बात यह भी कि मानव चाहता था ।

१- ऋग्वेद ५, ३, १५ संस्कृत काव्य धारा पृ० ३१

२- ऋग्वेद १०, ९, १ जलदेवतानां शक्तिकारिता ३२२ श्लोक पृ० १५ - वेदसार

३- ऋग्वेद १, ३, १० सरस्वती देवी का प्रसादन श्लोक, ७६ पृ० ३९ - वेदसार (The Vedic essence)

४- य ३६, २४ वेदसार विश्वेश्वरानन्द प्रकाशन, होशियारपुर

सख्य भाव की भक्ति है इसी से वह स्पष्ट शब्दों में कहता है "हे शक्ति के पुत्र और घृत के हवन किए हुए अग्निदेव । यदि तुम मनुष्य होते और मैं मित्र के समान देव होता तो हे वसो न तो होता पाप का पात्र बनता और न वह बुद्धिहीन होता[1] । प्रार्थना के रूप में प्राकृतिक शक्तियों की प्रार्थनाएं मिलती हैं । कुछ प्रार्थनाएं उत्तम पुरुष में हैं कुछ मध्यम पुरुष में । अधिकांश यज्ञ-परक मंत्रों का संकलन है । हिरण्यगर्भ सूक्त की प्रसिद्ध पंक्ति "कस्मै देवाय हविषा विधेम:" में विश्व के धर्म का दर्शन मिलता है । अग्नि देव की प्रार्थना करते हैं "हे अग्नि देव यह समिधा तुम्हारी ईंधन है, तुम इस से बढ़ो और प्रदीप्त होओ तथा हमें भी बढ़ाओ और प्रदीप्त करो । संतान, पशु, ब्रह्म तेज, अन्न आदि के द्वारा हमारी वृद्धि करो । परमात्मा के प्रति उनका विश्वास है ।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।[2]

भूत, वर्तमान और भविष्य कालों में रहने वाला जो विश्व है, वह सब विश्व परमात्मा ही है । वही परमात्मा अमरत्व देने वाला है और वही अमरत्व भोगों से प्राप्त होने वाले सुख से बहुत ही उच्च और श्रेष्ठ आनन्द देने वाला है ।

काम की प्रवृत्ति हमें पुरूरवा और उर्वशी के संवाद सूक्तों से मिलती है । इसके अतिरिक्त सौंदर्य तथा सुन्दर कल्पनायें उषा के प्रसंग में मिलती हैं उसके अंगों के प्रकाश का वर्णन किया है । उषा जलतरंगों के समान नाची दिखाई देती है[3] ।

१- ऋग्वेद ८ - १९ - २५, २६

२- वेद परिचय द्वितीयभाग पुरुष सूक्तम् २ पृ० ७ पा० श्री पाद दामोदर सातवलेकर

३- ऋग्वेद ५/६- ६१-१ पुस्तक काव्य परम्परा और बिहारी पृ० - ३१

जिस प्रकार एक रूपवती रमणी सभी के आनन्ददायक कुतूहल का कारण बनती है, उसी प्रकार उषा भी सभी को आनन्द देती है[1] । अश्विनी सूक्त में भी शृंगार-परक भावनाएं व्यक्त हैं । इस में वियोग पक्ष चित्रित है सूर्या-सूक्त में संयोग पक्ष चित्रित है ।

आत्म-प्रकाशन, विश्लेषण तथा दूसरों कि बात की प्रवृत्ति उसे नीति की ओर उन्मुख करती है । वह हृदय में रहने वाली बुरी भावनाओं के निराकरण के लिए प्रार्थना करता है । 'हे इन्द्र हम लोगों में उलूक के समान मोह, भेड़िये के समान क्रोध, कुत्ते के समान पारस्परिक द्वेष, कोक पक्षी के समान काम वासना, मोर के समान मद और पशु के समान लोभ से पशुतायें निरंतर बनी रहती हैं, आप इन्हें किसी प्रकार नष्ट कर दीजिए, जिस प्रकार पत्थर से कच्चा घड़ा नष्ट कर दिया जाता है[2] । वह अपना कल्याण ही नहीं समाज का कल्याण भी करना चाहता है । केवल देवताओं को ही प्रिय मत करो और न केवल राजाओं को प्रिय करने की चेष्टा करो । अपितु सभी की मंगल कामना करो फिर चाहे वह शूद्र हो[3] । समाज में पति - पत्नी का व्यवहार कैसा हो उस के उदाहरण भी मिलते हैं । जो दंपति एक मन होकर शम अर्थात् उत्तम कार्यों के लिए साथ साथ दौड़ते हैं और नित्य परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं वे देवता हैं[4] । पुत्र पिता का आज्ञाकारी, स्त्री शांत प्रकृति, भाई भाई से प्रीति करने वाला बहन बहन से प्रीति करने वाली अभिव्यक्त है । परिवार में इस के व्यवहार सुन्दर ढंग से पेश करता है ।

१- ऋग्वेद I - ४८ - ५ मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी पृ. ३१

२- ऋग्वेद ७ - १०४ - २२

३- अथर्ववेद - १९, ६२, १

४- अथर्ववेद - ३, ३।३०

ऐसी भावनाएं व्यक्त की हैं कि मानव मानव को समान समझे, संकल्प समान हो, अध्यवसाय समान हो तथा मन और विचार समान हो । समानत्व का व्यवहार समाज में होना चाहिए, वेद में सदाचार पर बड़ा बल दिया गया है। सदाचार के लिए देवताओं को भी पराधीन बताया गया है । विश्वमंगल की भावना और राष्ट्रोन्नति के गीत पाए जाते हैं । राजनीति के प्रति भी विचार मिलते हैं । राजा के लिए कहा है "हे महापुरुष हम तुम को लाए हैं, इसलिए चंचल न होकर स्थिर रह, जिस से तुम्हें समस्त प्रजा चाहती रहे, और तुम से राष्ट्र का पतन न हो । यहां आकर पर्वत के समान स्थिर होकर ठहर जा और इन्द्र के समान स्थिर होकर राष्ट्र को धारण कर, जिस से कभी राष्ट्र का पतन न हो[1] । दानवीर होना भी राजा का गुण है । दान-सूक्त के सूक्तों में इसका वर्णन मिलता है। राजा के सकस्म समितियों में पुरोहित बनाने की सौ मुद्रा, सौ अश्व, सौ गायें देने की प्रशंसा की गई है[2] । युद्ध में वीरता के भी वर्णन मिलते हैं । इनका आश्रय इन्द्र है । युद्ध में विजय का श्रेय इन्द्र को ही मिलता है । जिस से मानव में आत्माभिमान की वृद्धि न हो ।विजय इन्द्र देवता के प्रसाद से ही मिलती है । जब इन्द्र रक्षा करते हैं तब विजय लाभ होता है और इन्द्र के कुपित होने पर पराजय निश्चित है । त्रित्सुओं की जब इन्द्र ने रक्षा की तब वे विजयी हुए और जब इन्द्र ने कोप किया तब वे पराजित हो गए[3]।

वैदिक काव्य से मानव की सहज-प्रवृत्ति के कारण जो धर्म, श्रृंगार परक तथा नीति की भावना उत्पन्न हुई उसे हम ने उपासना-परक श्रृंगार-परक तथा नीति-परक नाम दिया है । उपासना-परक में धर्म के सब अंगों का

१- ऋग्वेद - १, १० । १७३   २- ऋग्वेद - ३, १२६

३- ऋग्वेद ७ - १८ - १९

समावेश है जैसे ब्रह्म की आराधना- पद्धति, उनके प्रति आदर का भाव, उनके प्रति विश्वास तथा आचार विचार आ जाते हैं । श्रृंगार परक में संयोग श्रृंगार तथा वियोग श्रृंगार का विश्लेषण है ।नीति परक में वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, व्यावहारिक, तथा नैसर्गिक नीति का विवेचन है ।किन्हीं काव्यों में सभी अंगों का निरूपण है किन्हीं में किसी एक का ।

<u>संस्कृत के काव्यों में मुक्तक परम्परा</u> -

संस्कृत में मुक्तक काव्य की परम्परा हमें कालिदास रचित "ऋतुसंहार" तथा "श्रृंगार तिलक" में मिलती है । इसमें प्रकृति के सान्निध्य से मानव के मनोभावों का सूक्ष्म चित्रण मिलता है । प्रकृति की सुन्दरता से मानव की भावनाएं कैसे बदलती हैं इसका चित्रण है । इसमें श्रृंगार परक भावनायें अधिक हैं । वैदिक युग के शुद्ध प्रकृति चित्रण के स्थान पर मानव पर प्रकृति के प्रभाव का चित्रण है काव्य में युवक और युवती में ऋतु के परिवर्तन से प्रभाव पड़ता है ऐसा चित्रित है । ग्रीष्म के दिन भार स्वरूप होते हैं पर रात्रियां आनन्दप्रद होती हैं । चन्द्रमा शीतलता प्रदान करता है । वर्षा काल में पर्वत शिखरों का चुम्बन करने के लिए झुकते हुए बादलों के दृश्य से प्रेम का भाव जागरित होता है । शरद एक युवती का वेष धारण करती है, जो गन्ने के वस्त्र पहने , पके हुए धानों की करधनी पहने है । हेमन्त की शीतलता प्रीति को बढ़ाने वाली होती है। अग्नि, गरम वस्त्र तथा प्रिया के प्रगाढ़ परिरंभ का सेवन किया जाता है । पर यही ऋतु बिछुड़ने पर संतापकारिणी है । बसंत कष्टदायी है । इसमें मानसिक प्रवृत्तियों का पूरा चित्रण मिलता है । मानव की सौंदर्य प्रियता पर अधिक बल दिया है । नीति के विषय नहीं हैं । "श्रृंगार तिलक" में सुन्दर चित्रण किए गए हैं ।इस में

एक चित्र कठोर हृदया प्रियतमा का भी है नील कमल सी आँखें, अरुण कमल सा मुख, कुन्दपुष्प से दाँत, नए पल्लव से अधर, चंपक दल से अंग तथा हृदय पत्थर का सा कहा है । इसमें प्रेमिका तिरछी चितवन से सभी को वेधित करती है इस का भी चित्र है । इसी भाव की पुष्टि एक जगह हो जाती है जहाँ नायक - नायिका को शिकारी कहता है भौंहें धनुष, कटाक्ष तीर हैं ।

मानव की श्रृंगार भावना भर्तृहरि के "श्रृंगार शतक"में भी मिलती है । इस में स्त्रियों के सौंदर्य के चित्र हैं । वर्ष की परिवर्तनशील ऋतुओं के साथ बदलने वाले भाव व्यक्त हैं । संभोग सुख की भावनाएं व्यक्त हैं पर अन्त में मानव इस निश्चय पर पहुंचता है कि सौंदर्य एक प्रवंचना है । स्त्रियों का स्वरुप है मुस्कान, प्रेम, लज्जा, भय, मुख फेर कर अर्ध कटाक्ष कर देखना, प्रेमपूर्ण वचन, तथा ईर्ष्यापूर्वक कलह और विलास - इन सभी भावों से स्त्रियाँ बन्धन स्वरुप होती हैं ।नारियाँ - संसार रुपी समुद्र को पार करने में बाधक हैं । ऐसे भावों का चित्र सामने आता है । स्त्रियाँ जीवन के अन्तिम ध्येय शिव स्वरुप को पहुंचने में बाधक होती हैं । भर्तृहरि के दो शतक और हैं " नीतिशतक तथा वैराग्य शतक " । मानव की श्रृंगार भावना श्रृंगार शतक में व्यवहार भावना नीति शतक में तथा धर्म भावना वैराग्य शतक में है ।नीति शतक में है व्यवहार की बातें मिलती हैं;"विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में नम्रता सभाभवन में बोलने की निपुणता , युद्ध में शौर्य, यश में इच्छा, वेदों में (अथवा अध्ययन)में व्यसन, ये महात्माओं की स्वाभाविक सिद्ध बातें हैं ।" "व्यक्ति की आयु का आधा हिस्सा सोने में निकल जाता है आधी में अनजान बाल्यावस्था तथा आश्रित वृद्धावस्था" है । जीवन पानी के बुलबुले के समान है । व्याधि, वियोग तथा दुखों के साथ जीवन कट जाता है । सुख कहाँ मिल सकता है ?" व्यक्ति की चतुरता की प्रशंसा हमें हंस के रुप में मिलती है ।

"हंस पर यदि विधाता कोप करे तो उसका कमल वन में निवास और वहाँ का विलास नष्ट कर सकता है परन्तु उसके दूध और जल बिलगाने की प्रसिद्ध पंडिता (चतुराई) की कीर्ति को विधाता भी नहीं नाश कर सकता[1]"। "तेजस्वी पुरुष अनादर को नहीं सह सकता। द्रव्य से ही सब काम है जिसके पास द्रव्य है वही नर कुलीन, पंडित, गुणज्ञ वक्ता और दर्शन योग्य है"। मानशौर्य प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा, सुजन-प्रशंसा, धर्म प्रशंसा में समाज नीति ही परिलक्षित होती है। "लाभ क्या है गुणियों की संगति, दुख क्या है मूर्खों का संग, हानि क्या है समय पर चूकना, निपुणता क्या है धर्म में रुचि होना, शूर कौन है जिसने इन्द्रियों को वश में किया, स्त्री कौन अच्छी है जो अनुकूल हो, धन क्या है विद्या, सुख क्या है प्रवास न होना, राज्य क्या है अपनी आज्ञा का चलना[2]।"

उपासना-परक वैराग्य शतक में मानव की दैन्य भावना व्यक्त की गई है, इसलिए ऐसे विचार व्यक्त हैं। "भोग में रोग का भय, कुल बढ़ने में उसके क्षय का भय, अधिक धन होने में राज भय, मौन होने में दीनता का भय, संग्राम जीतने में शत्रुभय, सद्गुण में दुर्जन का भय, और शरीर में मृत्यु का भय यों सर्वत्र भय के ही स्थान देख पड़ते हैं, केवल वैराग्य ही निर्भय ठौर है[3]"। इस में कहते हैं कि भोगों का तो नाश होना ही है इससे तो शिव में ही चित्त लगावे। "बड़े खेद की बात है कि ब्रह्म की भी यह मूर्खता है कि गुणों की खान और सम्पूर्ण पृथ्वी के भूषण रत्न रूप पुरुष को पैदा करता है और फिर उसको क्षणभंगुर

१- भर्तृहरि नीति शतक धर्म प्रशंसा - १८ श्लोक - श्री वेंकटेश्वर मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम्

२- भर्तृहरि नीति शतक धर्म प्रशंसा - ४ श्लोक

३- वैराग्य शतक - भोग पद्धति - ३५ श्लोक

कर देता है उसको तो सदैव स्थिर बनाता तो उसकी पंडिताई थी[1]। इन सब शतकत्रय में वैदिक काल की परम्परा का विस्तार हुआ है । वैदिक काल में प्राकृतिक शक्तियाँ ही पूज्य थीं। संस्कृत काल में आकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव की शक्तियाँ मानव के सम्मुख आईं । व्यक्ति तब सांसारिक सुखों में इतना लीन नहीं था वह प्राकृतिक शक्तियों के अधिक निकट अपने को पाता था पर संस्कृत काव्यों का प्रणयन जब हुआ है तब समाज में मानव आदि शक्तियों से दूर हो गया । जीवनयापन के भी कई मार्ग दिखाई देते हैं जैसे श्रृंगार में रहना अथवा बैरागी बन जाना ।जब जब समाज में ~~किस की~~ कमी होती है तभी व्यक्ति के मन में यह भावना उठती है कि वह गुणों अवगुणों का निश्चित रूप, सज्जन, दुर्जन की विशद व्याख्या करे ।

मानव की श्रृंगार भावना -

अमरुक शतक में - अमरुक शतक अमरु कवि का लिखा हुआ है ।इस में मानव वैदिक युग के प्रकृति प्रेमी के स्थान पर नर-प्रेमी है । उसकी श्रृंगार-प्रियता प्रकृति से अधिक नारी के सौंदर्य के प्रति है । इस में जीवन के एक पहलू का चित्रण है प्रेमाभिव्यक्ति।प्रेमी के एक तथ्य मान का वर्णन चित्रित है । इस में कोई व्यक्ति विशेष पुरुष नायक है और स्त्री नायिका,किसी एक विशेष नायिका का चित्रण नहीं है । इनके मान के चित्र किसी पर भी लागू हो सकते हैं । व्यक्ति की प्रसन्नता और उत्साह से युक्त छोटे मोटे झगड़ों और कलहों में आनन्द प्राप्त करने वाला परन्तु स्मितों में पर्यवसित होने वाला प्रेम अच्छा लगता है । मानव में प्रेम का अभाव नहीं होता । मान धारण करने के

१- वैराग्य शतक - १११ श्लोक - ५.६.१९५५

लिए सखियाँ भी सिखाती हैं पर जो युवती अधिक प्रेमी होती है उसे मान धारण करने में भी कठिनाई होती है । एक उदाहरण है " सखि को नायिका सिखाती है कि मान धारण करो " नायिका एक दम घबड़ा जाती है क्योंकि उसके हृदय में नायक का वास है वह उत्तर देती है " सखि धीरे धीरे कहो, " कहीं ऐसा न हो कि मेरे प्रियतम जोकि मेरे अन्तः करण में विद्यमान हैं कहीं इस बात को सुन न लें । सब व्यक्ति मान धारण नहीं कर सकते । एक नायिका मानी तो प्रयत्न कर के रोक भी लेती है पर प्रियतम को देखकर मुस्कराहट आ ही जाती है । मान-धारण का मुख्य कारण था नायिका की अन्य नायिका पर अनुरक्त होना । कभी कभी ऐसे भी प्रसंग मिलते हैं कि मान की इच्छुक नायिका नायक को " जाओ!" कहती है और वह चला जाता है। कहीं कहीं प्रेम की पराकाष्ठा भी दिखाई देती है, जैसे नायक नायिका के विरह में अपनी प्रियतमा को सर्वत्र देखता है । प्रासाद पर प्रत्येक दिशा में, पीछे आगे, पैंडा पर प्रत्येक रास्ते पर । परन्तु उच्च प्रेम का पूर्ण चित्रण इसमें नहीं है । कहीं कहीं परकीया नायिका के रूप का भी चित्रण झलकता है । " हे कपोतों इस प्रगाढ़ अर्ध रात्रि में सखि तुम कहाँ जा रही हो ?" जहाँ मेरे मन का प्यारा प्राणेश्वर रहता है ।" अरे भोली बताओ, तुम्हें अकेले डर नहीं लगता ।" पंचपुष्प बाण धारण करने वाला कामदेव मेरा साथी जो ठहरा ।"

<u>चौरपंचाशिका की शृंगार भावना</u> - बिल्हण कृत चौरपंचाशिका में ऐसे मानव के दर्शन होते हैं जो किसी से पहले प्रेम कर चुका है तथा उसकी स्मृति में ही लीन रहता है । उसे पूर्वकृत प्रेम की पूर्ण स्मृति है । वही उसे सालती है । उसके साथ कैसे दिन कटे थे इसी का वर्णन है " मैं एक बार किवाड़ की आड़ में छिपा खड़ा था (किन्तु मेरी उपस्थिति का उसे पता नहीं था) वह अपने मुख को अपने हाथ पर रखे हुए मेरे ही मार्ग की ओर अपनी दृष्टि लगाये बैठी थी, और

कोमल काकली स्वरों में ऐसे गानों को गुनगुनाती हुई गाने की इच्छा कर रही थी जिस से मेरे नाम के वर्ण आ जाते थे । मैं अपने अन्तःकरण में उसकी दशा का स्मरण कर रहा हूं "इसी तरह प्रेम की स्मृति में वह लीन है । हो सकता है समाज में ऐसे व्यक्ति हों जिनकी ऐसी प्रीति हो । ऐतिहासिक दृष्टि से तो कहा ही जा सकता है कि वह विलास का युग था उसी की छाप साहित्य पर होगी ही । व्यक्ति की श्रृंगार-प्रियता प्रत्येक पद्य में दिखाई पड़ती है । "आज भी मेरे मन में वह दृश्य घूम रहा है जब रात्रि में मेरे छींकने पर राज पुत्री ने "जीव" इस मंगल वचन का क्रोध के कारण उच्चारण न कर के अपने कान से उतार कर कनक पत्र मेरे कान में लगा दिया था । भारतीय संस्कृति का भी उल्लेख इससे मिलता है जिस के अनुसार छींकने वाले व्यक्ति से "शतं जीवेत" कहा जाता है ।

<u>घटकर्पर की श्रृंगार भावना</u> - व्यक्ति की श्रृंगार भावनाओं को लिए हुए घटकर्पर कवि का लिखा हुआ "घटकर्पर" मिलता है । यह मेघदूत की शैली का है पर खंड काव्य की शैली में नहीं रखा जा सकता । नवयुवती पत्नी वर्षा काल के आरम्भ में अपने प्रवासी को मेघ द्वारा संदेश भेजती है । जगह-जगह नारी की श्रृंगारिक भावनाएं ही चित्रित हैं । इसी तरह मयूर का लिखा हुआ मयूराष्टक भी है । इस में नायिका के सौंदर्य का वर्णन है ।

<u>आर्यासप्तशती में श्रृंगार भावना</u> - प्राकृत की गाथासप्तशती के अनुकरण की आचार्य गोवर्धन लिखित आर्यासप्तशती हमें मिलती है । गाथाओं के अनुकरण पर आर्याएं लिखी हैं । जिस व्यक्ति की भावना को गाथा में संकेत मात्र से कहा गया है उसी भाव का गोवर्धनाचार्य जी ने विस्तृत चित्रण किया है । मानव जीवन में प्रेम का ही सर्वश्रेष्ठ स्थान है उसी के ही चित्र मिलते हैं । ऐसे नायक का भी चित्र खींचा है जो ऐसी नायिका से प्रेम करता है जो उससे प्रेम

नहीं करती वरन् दूसरे से करती है और जो उससे प्रेम करता है उसकी ओर वह ध्यान भी नहीं देती । सदाचार की मर्यादा का उलंघन पाया जाता है । व्यक्ति के संयोग और वियोग की दशा में अन्तस्तल में जो ललित कल्पनायें, प्रेमिल उत्कंठायें एवं सुकुमार भाव भंगिमा अठखेलियाँ करती है उनका चित्रण है । इस में नागरिक स्त्रियों की श्रृंगार भावना तथा ग्राम तरुणियों की मुग्ध मंजुल लीला भंगिमा का चित्रण भी मिलता है । इससे उस समय के समाज का रूप भासित होता है कि व्यक्ति कितना चिंतारहित था । सांसारिक कंटों से छुटकारा पाया हुआ था । एक उदाहरण है दूसरे के मुख से जो बात गाली जैसी मालूम पड़ती है प्रिय के मुख से वही परिहास बन जाती है । ईंधन से निकलने वाला धुआँ अगर से उत्पन्न होने पर धूप बन जाता है[१]।

आर्या कि नायिकाओं में नागरिक जीवन की कृत्रिमता आ गई है । नागरिक स्त्रियों की श्रृंगारिक चेष्टाओं का चित्रण जितना चटकदार है, ग्रामीण वधूटियों की रस भरी उक्तियाँ उतनी ही मनोहर हैं । संयोग और वियोग पक्ष में कामनियों के हृदय में जो ललित कल्पनायें, ललित क्रीड़ा करती हैं उसके स्पष्ट चित्र हैं । एक नायिका का चित्र है । वह मलिना सुतनु रात रात अरुन्धत हिम जैसी शीतल शय्या पर, तुम्हारे विरह में हिमालय के पृष्ठ पर औषधि की तरह जल रही है[२] । पर कवि की रुचि संयोग पक्ष पर अधिक है ।

<u>उपासना भावना संबंधी शतक</u> - श्रृंगार भावनायें काव्य में उस समय मुख्य अवश्य थीं पर साथ ही में धार्मिक भावनाओं से पूर्ण कविता भी संस्कृत साहित्य में मिलती है । अब वैदिक युग की धार्मिक अभिव्यक्ति में परिवर्तन हो गया है ।

१- आर्यासप्तशती - ८६
२- आर्यासप्तशती - ६३८

इन्द्र, वरुण की उपासना के स्थान पर शिव, पार्वती, विष्णु की उपासना होने लगी थी । अभिष्ठ के रोग निवारण की प्रार्थना के स्थान बाण का चंडी शतक मिलता है । इस में पार्वती जी की स्तुति है । यह स्तुति प्रार्थना का भी काम देती है, क्योंकि इसमें भवानी से अपने भक्तों की रक्षा करने की प्रार्थना की गई है ।
बाणभट्ट ने अपने हाथ पैर कटवा डाले, फिर चंडी शतक की रचना कर पार्वती जी की आराधना की, उनके हाथ पैर ठीक हो गए । चंडी ने महिषासुर का वध किया था उसी की प्रशंसा की गई है। देवी के प्रसन्नार्थ यह स्तोत्र रचे गए ।
प्रत्येक पद्य में यही प्रार्थना की गईकि पार्वती जी सब की रक्षा करें । लोक कल्याण की भावना निहित है। जब मरुतगण भाग गये, सूर्य कांपने लगा, इन्द्र का वज्र ध्वस्त हो गया, चन्द्रमा आशंका से भर गया, पवन ने बहना बन्द कर दिया, कुबेर ने बैर त्याग दिया और विष्णु का अस्त्र कुंठित हो गया उस समय सर्प की भांति क्रुद्ध और अपने पौरुष पर अभिमान करने वाले महिषासुर को सरलता से निहत करती हुई, भक्तों पर अत्यधिक स्नेह करने लगीं, भवानी आप लोगों के पाप को नष्ट करें ।

<u>सूर्यशतक में उपासना की भावना</u> - बाणभट्ट के श्वसुर मयूर का सूर्यशतक उपासना-परक काव्य की परम्परा में मिलता है । इसमें व्यक्तिगत धार्मिकता अधिक है । मुक्ति के लिए सूर्य की प्रार्थना की गई है । कुष्ट रोग निवारणार्थ यह प्रार्थना रची गई थी । जो पहले पूर्व में प्रकाशित होता है, जिसके उगने से यह (दिशा) पूर्व बनती है, जो दिन के मध्य में दीप्त होता है, जिस विस्तीर्ण किरणों वाले से दिन उत्पन्न होता है जो संसार का जीवन है । विश्व पर अनुग्रह करने वाला विश्वस्रष्टा वह रवि मंडल तुम्हारी मुक्ति के लिए हो[1] । इस में सूर्य के रथ, अश्व, मंडल इत्यादि का वर्णन है । यह काव्य धार्मिकता

१- मयूर शतक - ११। ७४

से ओतप्रोत है । सूर्य भगवान ब्रह्मा विष्णु शिव के प्रतीक हैं । "दह, नदी, सरोवर, निर्झर, कमलिनियों के तीर्थ सब व्यर्थ हैं । पाप रूपी गड्ढे में गिरने के भय को समुद्र नहीं दूर करता । स्वर्ग नदी के पाप नाशक जल भी स्नान करने वालों को दूसरे लोकों में जाने पर जहाँ रक्षा नहीं कर सकते, वह दिन का एक मात्र हेतु सूर्य तुम्हारा हित करें[1] ।" इस में लोक कल्याण की भावना भी है । धार्मिक भावना से युक्त शिवमहिम्नस्तोत्र मिलता है । इस में सांख्य और वैष्णव भक्ति की भावना अभिव्यक्त हुई है । यह श्लोक प्रसिद्ध है, "समुद्र रूपी दवात में काले पहाड़ के समान कज्जल की स्याही बनाई जावे - कल्पवृक्ष की शाखा लेखनी का कार्य करे, यह विशाल भूतल कागज के रूप में हो और सरस्वती स्वयं सदा अपने गुणानुवाद को इस सामग्री से लिखे , तो भी हे भगवान शिव वह अपने गुणों को पार नहीं पा सकते[2] ।"

नीति - ऋग्वेद से ही यह धारा ऐतरेय ब्राह्मण से चली आ रही है । वास्तव में धर्म की भावना से मिश्रित होकर यह धारा बही है । व्यक्ति का बार बार जन्म और मरण होता है इससे मुक्ति पाने के अन्वेषण की इच्छा हुई । सुख और दुख का अध्ययन किया गया तथा जीवन में उसका स्थान निश्चित किया गया । उन्नति के मार्ग पर चलते हुए सद्गुणों और दुर्गुणों का मूल्य निर्धारित किया गया । इस तरह का चाणक्य शतक सर्व प्रथम मिलता है जिस में आचार विचार विषयक बातें हैं । जैसाकि पहले कह चुके हैं, संस्कृत साहित्य में भर्तृहरि के

१- सूर्य शतक - ९५

२- शिवमहिम्न स्तोत्र - पुष्पदंत १९०९ पृ० ६

तीन शतक श्रृंगार, वैराग्य तथा नीति तीनों भावनाओं को व्यक्त करते हैं । इनके विचार नीति में सर्वमान्य हैं । व्यक्ति श्रृंगार के आवेग से आप्लावित होने पर धीरे धीरे उसकी प्रवृत्ति वैराग्य की ओर होती है । इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का निरूपण इन शतकों में किया गया है । श्रृंगार शतक में संयोग के सुन्दर चित्र हैं । वैराग्य शतक में संसार की सारहीनता, कारुण्य तथा संसार से निवृत्ति पाने के उपाय बताए हैं तथा नीति शतक में शिक्षा-प्रद कविताएं हैं । नीति शतक में महापुरुष का लक्षण बताते हुए कहते हैं ।

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मानाम् ।

इसके अतिरिक्त सुन्दर पांडय का नीति द्विषष्टिका प्रसिद्ध है । इसमें उपदेशात्मक ११६ छंद हैं । शंकराचार्य का "मोहमुद्गर" उल्लेखनीय है । शिल्हण (१२०५-ई०) के शांतिशतक में व्यक्ति की मानसिक शांति पर विशेष बल मिलता है । स्त्रियों के संसर्ग से हानि तथा वैराग्य से लाभ का वर्णन हमें सोमप्रभ (१२७६ ई०) की श्रृंगारवैराग्यतरंगिणी में मिलता है ।

उपासना परक - श्रृंगार परक, नीति परक भावनाएं ग्रन्थों के अतिरिक्त संग्रह ग्रन्थों में निरन्तर प्रवाहित रही हैं । पाणिनी के नाम से बहुत से मुक्तक व्यक्ति की प्राकृतिक सौंदर्य प्रियता के उदाहरण रूप मिलते हैं । 'रात्रियों को छोटी बनाकर सरिताओं का जल बलात चुराकर, सारी पृथ्वी को तपाकर और सारे वृक्षों के कुंजों को सुखाकर सूर्य अब कहां चला गया है ? यह सोचते हुए बादल बिजली रूपी दीपक के प्रकाश में उसको ढूंढते हुए प्रत्येक दिशा में घूम रहे हैं'[1] 'सूर्य के साथ पश्चिम दिशा का समागम होने पर राग (लालिमा) अनुराग को देखकर प्राची का मुख श्याम पड़ गया है । ऐसी कौन सी स्त्री है

१ मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी पृ. ८४

जो ईर्ष्या से मुक्त न हो[1] । मानव सदा से ही प्रकृति का मेल नायिका अर्थात् अपनी प्रियतमा से जोड़ता रहा है । वाक्कूट कवि के मुक्तकों में कुछ ऐसे ही उदाहरण मिलते हैं । अपनी प्रियतमा के वियोग में चारों ओर देखता है, उसे वे ही बातें दिखाई पड़ती हैं जो बीते हुए सुखों का स्मरण दिलाती हैं । ____ हे मधुपे चंचलता के कारण भ्रमर कहीं जाकर कन्दली का चुम्बन कर ले किन्तु क्या वह खिली हुई मालती के परिमल को भुला सकता है । बहुत से कवियों का नाम भी नहीं मालूम है । एक कवि ने लिखा है, "हे सखि रुको, नलिनी दल ताल वृन्त से तुम मेरे ऊपर वायु क्यों कर रही हो । मेरे हृदय में जो मन्दाग्नि विद्यमान है वह कहीं प्रज्वलित न हो उठे"। वैद्य और ज्योतिषी का भी वर्णन है जिसमें समाज के व्यक्तियों का पता चल जाता है । "हे वैद्य राज, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं । तुम अनेक मानवों को नष्ट करने में बड़े निपुण हो । तुम्हारे ऊपर भार रखकर यमराज सुख पूर्वक विश्राम करते हैं"। ऐसे ही ज्योतिषी का भी विचित्र चित्र खींचा है । एक विनोद प्रिय व्यक्ति का कथन है "हे रात्रि, पहले जब मैं अपनी प्रियतमा के वियोग रूपी विपत्ति से दुखी था, तब तुम में सैकड़ों दिवस लीन हो जाते थे अब जब भाग्य ने बड़ी कठिनता से मेरा संयोग मेरी प्रिया से कराया, तब हे चांडालि, क्या तुम्हीं दिवस में लीन हो गई"। उसे सुख में अब रात्रि बहुत छोटी लगती है । एक व्यक्ति अपने विचार प्रकट करता है जो महीना उस के चले जाने के बाद बीतता है वह एक वर्ष की तरह प्रतीत होता है और वर्ष उसके आ जाने पर बीतता है, वह एक महीने की तरह मालूम होता है । संयोग और वियोग में व्यक्ति की भावनाओं पर बड़ा प्रभाव पड़ता है । कवीन्द्र-वचन-समुच्चय, सदुक्ति-कर्णामृत, सुभाषिता-वली, सुभाषितमुक्तावली आदि सभी में मानव के ऐसे ही मनोभाव चित्रित हैं । व्यक्ति की भावनाएं, उनके आचार विचार तथा

१. मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी पृ० ८६

प्रकृति की सौंदर्य प्रियता के चित्रण मिलते हैं ।

धार्मिक भावना की परम्परा में भी निरन्तर विकास ही हुआ । मानतुंग का लिखा हुआ "भक्तामरस्तोत्र" है, इसमें इन्होंने अपने को श्रृंखला में बंधवा कर पाठ किया और मुक्त हो गए । इसमें रिषभदेव की प्रशंसा ब्रह्मा, विष्णु महेश कहकर की गई है । "सैकड़ों माताएं सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं परन्तु कोई भी माँ उनके समान पुत्र नहीं उत्पन्न करती, आकाश के प्रत्येक भाग में तारे हैं, परन्तु प्राची दिशा ही सूर्य को जन्म देती है"। कल्याणमंदिर स्तोत्र, अष्टमहाश्री चैत्य स्तोत्र, सुप्रभात स्तोत्र, स्रग्धरा स्तोत्र, वक्रोक्तिपंचाशिका, शिवापराधक्षमापण, स्तोत्र , देव्यापराधक्षमापण स्तोत्र, भवान्यष्टक, आनन्द लहरी, अम्बाष्टक, पंचस्तवी, मंगलाष्टक, पंचशती, देवी शतक, स्तोत्रावली, कृष्णकर्णामृत, पद्यावली, रूपगोस्वामी, की महिम्नस्तव, चंडी-कुचपंचाशिका, भिक्षाटन काव्य मिलते हैं, जिन में धार्मिक भावना प्रमुख है । इन के कुछ उदाहरण हैं । "प्रतिदिन हमारे देखते ही देखते आयु नष्ट होती जाती है, बीते हुए दिवस फिर नहीं लौटते, काल जगत को खाए डालता है । लक्ष्मी पानी की तरंगों की भाँति चंचल है और जीवन बिजली की चमक के सदृश चंचल है । अतः हे शरण देने वाला शिव आप अब शरण में आए हुए मेरी रक्षा कीजिए[१]" "हे मानव अपने धन और यौवन का गर्व मत करो, एक निमेष में ही काल सब कुछ हर लेता है, इस सारे मायामय जगत को त्याग दो, और ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्मपद को प्राप्त करो[२]" । "हे सखि मुरारि को देखती हुई मेरे सारे अंगों को विधाता ने नेत्र नहीं बना दिया, उनके गुणों को सुनती हुई मेरे सारे अंगों को श्रुतमय नहीं बना दिया, निश्चय ही यह

१- शिवापराधक्षमापणस्तोत्र

२- द्वादशमञ्जरिकास्तोत्र

विधाता की घटन परिपाटी की मधुरता नहीं है[१]। आश्चर्य है कि लोग अमृत छोड़ विषपान में लग जाते हैं[२]। आकाश में कितने ही नक्षत्र चमकते रहें तब तक अंधकार का विनाश नहीं होता, जब तक सूर्य भगवान का उदय न हो, उसी प्रकार अविद्यान्धकार भी कितने ही सिद्धान्तों और प्रमाणों के अध्ययन से नष्ट नहीं होता, जब तक सूर्य के समान जन्म विनाशक तेज हृदय में उदित नहीं होता[३]।

नीतिपरक - बहुत से ऐसे काव्य मिलते हैं जिन में केवल राजनीति पर ही विवेचन है तथा बहुत से ऐसे हैं जिन में राजनीति, समाज नीति तथा व्यहार नीति सभी मिल जाते हैं। राजनीति की भावना प्रमुख लिए हुए चाणक्य लिखित राजनीति समुच्चय, चाणक्य नीति, चाणक्य राजनीति, वृद्ध चाणक्य जैसे संग्रह मिलते हैं, जिन में राजा के गुण, उनकी कुशलता आदि का वर्णन है। राजा के धर्मात्मा होने पर प्रजायें धार्मिक होती है, पापी होने पर पापी तथा मध्यम होने पर मध्यम होती है। प्रजा राजा का अनुसरण करती है। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। मनुष्यों के लिए राज सेवा कृपाण की धार के चाटने के, सिंह के आलिंगन के और सर्प के मुख में चुम्बन के समान होती है। चोर स्वर्णकारों के चौर्य के भय से डर कर मेरु पर्वत मनुष्य की भूमि को छोड़कर दूर में स्थित है। इसलिए राजा का कर्तव्य है कि चोर और दस्युओं के अभाव में भी वे सदा सर्वथा स्वर्णकार का निग्रह करें। नीति रत्न, नीतिसार, नीतिप्रदीप, नीतिशतक, सदुक्तिकर्णामृत, अन्योक्तिमुक्तलता शतक, दृष्टान्तशतक, भावशतक, उपदेश शतक, चातकाष्टक, आदि मिलते हैं। उदाहरण स्वरूप लक्ष्मी भार्या वह है

१- अमरूरचित

२- मुकुन्दमाला

३- विवमविक्रमस्तोत्र

जो पवित्र और दक्ष हो । पतिव्रता हो । पति से प्रसन्न रहती हो तथा जो सदा सत्य बोलती हो'। 'सत्य से पृथ्वी धारण की जाती है, सत्य से सूर्य धारण किया जाता है, सत्य से वायु चलती है, सत्य पर सब कुछ प्रतिष्ठित है'। 'एक भी विद्वान साधु चरित्र सुपुत्र से समस्त कुल आल्हादित हो जाता है जैसे चन्द्रमा से रात्रि'। 'सज्जनों के संग से दुष्ट लोगों में साधुता आ जाती है पर दुष्ट लोगों के संग से साधुओं में दुष्टता नहीं आती है। फूलों की सुगन्ध को मिट्टी धारण करती है, मिट्टी की गन्ध को कोई फूल नहीं लेते हैं'। 'जैसी भवितव्यता होती है मनुष्य की बुद्धि भी वैसी हो जाती है । व्यवसाय भी वैसा होता है और साथी भी वैसे ही मिल जाते हैं'। केवल व्यवहार नीति के भी बहुत से काव्य हैं ।बोधि-चर्यावतार शान्तिदेव का, शतश्लोकी, शंकराचार्य कृत मोह-मुद्गर, शृंगार ज्ञान निर्णय, कुट्टनीमत, समयमातृका, कलाविलास, दर्पदलन, सुभाषित रत्न संदोह, धर्मपरीक्षा, हेम चन्द्र कृत योग शास्त्र, शृंगार वैराग्य तरंगिनी है । 'ये सांसारिक विषय तभी तक सुख देते हैं जब तक हमारे हृदय में मूढ़ता रहती है, परन्तु तत्ववेत्ताओं के विवेकयुक्त मन में न तो विषय, न सुख और न पदार्थों की ममता ही श्रेष्ठ है'। 'उत्तम मनुष्य ही विक्षोभ को सहने में समर्थ होता है, साधारण मनुष्य नहीं, मणि ही शान-घर्षण को सह सकती है मिट्टी का कण नहीं'। 'चातक अकेला मानी वन में बसता है । वह प्यासा होकर या तो मर जाता है या केवल इन्द्र से स्वाति याचना करता है'। संस्कृत के साथ ही साथ पालि में भी मुक्तक की परम्परा मिलती है ।

पालि में मुक्तक की परम्परा - पालि भाषा में बौद्ध धर्म पनपा है । वैसे तो इन में सभी काव्यों में धार्मिक भावना प्रमुख है पर 'थेर गाथा' और 'थेरी गाथा' में व्यक्ति का रूप बहुत निखरा है । वैसे तो इन काव्यों में आत्माभिव्यंजना

बड़ी उच्चकोटि की है इसी से यह गीतिकाव्य की श्रेणी में है पर इन में बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों की शृंगार-प्रियता तथा प्रकृति सौंदर्य-प्रियता के चित्र बहुत से मिलते हैं। जिनका परवर्ती साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ता है। थेर गाथा में बौद्ध सन्यासी बड़े सौम्य, गंभीर, आन्तरिक सन्तोष और शांति से पूर्ण दिखते हैं। भिक्षु और भिक्षुणी दोनों का अन्तिम "ध्येय" उच्चावस्था को प्राप्त करना है जिसे निर्वाण कहते हैं। भिक्षु प्राकृतिक सौंदर्य के प्रेमी हैं भिक्षुणियां भी शृंगार प्रिय हैं पर दोनों के काव्यों में धर्म की भावना प्रमुख है। वैराग्यमूलक एवं उपदेशात्मक विचार हैं। इसमें धर्म तथा लोकमय विचार हैं। 'धम्मपद' को बौद्ध धर्म की गीता कहा गया है। इसमें व्यवहार नीति का वर्णन है पर प्रमुख भावना धर्म है। पंडित लक्षण, काल-क्षमा, शान्ति, अक्रोध, अवैर, कंजूसी, संतोष, सत्संग, प्रेम, तृष्णा, चंचलता, वाणी, निन्दा, मित्र आदि का वर्णन है। बौद्ध धर्म के व्यक्ति तथा समाज के बारे में भी वर्णन है। बौद्ध धर्म का उपदेश भी मिलता है। भगवान बुद्ध ने मन, वाणी तथा शरीर तीनों प्रकार की चंचलता बुरी बताई है। "जिस प्रकार लोहे से उत्पन्न मोर्चा उस लोहे को ही खा जाता है उसी प्रकार अति चंचल मनुष्य की चंचलता उसकी दुर्दशा कर डालती है"। "पाप कर्म ताजे दूध की तरह तुरन्त विकार नहीं लाता। वह भस्म से ढकी हुई आग की तरह जलता हुआ मूर्ख आदमी का पीछा करता है"। व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी है। "जैसा मन होगा वैसा कार्य होगा, वैर से कभी वैर शान्त नहीं होता। चित्त चंचल होता है पर मेधावी इसे सीधा कर लेते हैं जैसे बाण बनाने वाला बाण को"। मुनि के लिए उपदेश देते हैं कि वह भ्रमर के समान रहे, फूलों का रस लेकर किसी को हानि न पहुंचाएं। दूसरों के दोष को न देखें। दूसरों को जीतने के बजाय अपने को जीतना उचित

श्रेयस्कर है । कहते हैं किसी से कठोर वचन मत बोलो, जिस से दूसरे तुम से कठोर वचन न बोलें । दुर्वचन दुखदायी होते हैं । बोलने के बदले में तुम दंड पाओगे । संसार को बुलबुले के समान देखो । पालि साहित्य अधिकतर प्रबन्ध साहित्य है । मुक्तक के रूप का निखार सबसे अधिक प्राकृत भाषा में हुआ ।

<u>प्राकृत में मुक्तक परम्परा</u> - प्राकृत भाषा के मुक्तकों में मानव का बहुत कुछ रूप बदला हुआ मिलता है । वैदिक युग के मानव के समान वह प्रकृति की सुन्दरता में नहीं रमा वरन् प्रकृति के सुन्दरता को वरण किए हुए जो नारी का रूप है उसमें अपनी सौंदर्य-प्रियता की झाँकी पाई है । इस में व्यक्ति का बहुत उभार हुआ है। हाल की 'गाथासप्तशती' संस्कृत काव्यों से बहुत पहले की रचना है । इस में हाल कवि ने उन्हीं मुक्तकों का चयन किया है जो मानव की शृंगार-प्रियता के द्योतक हैं । ऐसा प्रतीत होता है मुक्तक काव्य सभी भावनाओं से रंजित रचा गया होगा पर वह काल के गर्भ में विलीन हो गया होगा । 'गाथासप्तशती' के अनुकरण में ही संस्कृत में अमरुशतक तथा आर्यासप्तशती रची गई । इस में नायक नायिका का प्रेमी है । अनुरक्त है तथा उसके सौंदर्य का निरखने वाला है । नायिका के मनाने के लिए पैरों पर गिर कर याचना करने वाला है । "नायिका के पानी पिलाने पर वह उसके सौंदर्य को ही निरखता रहता है अधिक से अधिक वह शोभा देख सके इससे पानी अंगुली के बीच से गिराता जाता है" । रसोई बनाते समय कहीं पत्नी के कालिख लगे हाथ से मुंह पर कालिख का धब्बा लग जाता है । उसे देखकर मुस्कराता हुआ बोल उठता है - वाह अब तो तुम्हारे मुख और चन्द्रमा में जरा भी अन्तर नहीं रहा ।

नायिका भी पति के प्रेम में अनुरक्त है । उसका वियोग उसे

असह्य है । उसे पता चला कि उसका पति प्रातः चला जायेगा वह निशा देवी से प्रार्थना करती है कि प्रातः हीं न हो । "प्रातः होने पर वह पति से कहती है कि कृष्णसार मृग का यात्रा के समय दिख जाना अशुभ है उसके तो आँसुओं से भरे काले नेत्र सामने हैं वह अशुभ है" । प्रियतम के चले जाने पर वह यही कहती रह जाती है 'प्रियतम आज ही गया है' साथ ही गृहभित्ति पर रेखांकन द्वारा चिन्हित करती जाती है । प्रथम दिनार्ध में ही भित्ति भर जाती है । प्रियतम के प्रेम में इतनी विह्वल रहती है कि वह कम्पनशील और स्वेदयुक्त अंगुली के कारण स्वस्ति भी नहीं लिख पाती । वह रोती है कि हाथ और पैर की अंगुलियों को गिन गिन कर दिन काटे हैं अब कैसे गणना करूँ । संयोग में नायिका मान प्रिय भी है पर गाथा की नायिका का मान अधिक देर टिकने वाला नहीं है वह बालुकाभित्ति की भाँति भुर भुर कर गिरने वाला है ।

<u>नीति पक्ष</u> - अहीर, अहीरिनियाँ, ग्राम वधुओं, चक्की पीसती हुई स्त्रियों, ग्रामीण जनों का चित्रण है । इस में नगर की शोभा नहीं वरन् सरल ग्राम्य जीवन चित्रित है । समाज में बहरे और अंधों का ही समय सुख से बीतता है क्योंकि बहरे कटुशब्द नहीं सुन सकते और अन्धे दुष्टों की समृद्धि नहीं देख सकते । पुष्पमालायें गूँथती हुई मालिन का भी चित्र है । धान की रखवाली करने वाली, कृषिजीवी समाज चित्रित है । पामर - पामरी, हालिक - हालिक - पत्नी, नन्दन दुहिता गृहिणी, गृहपति तथा शिष्ट समाज का चित्रण है सामान्य नीति का भी वर्णन है । वही वास्तविक अर्थ है जो हस्तगत हो गया है, वही मित्र है जो व्यसन में निरन्तर समीप ही रहे । वही रूप है जिस में गुणों का संयोग भी हो एवं वही विज्ञान है, जिस में धर्म भी रहे । "अन्तिम दशा में भी मनस्वी का मन उन्नत रहता है अस्तगमन के समय भी सूर्य की किरणें ऊपर ही स्फुटित होती हैं"[१] ।

१- गाथासप्तशती - ३/८४ - साहित्याचार्य मथुरानाथ शास्त्री

धार्मिक भावनाएं पार्वती शंकर के प्रेम तथा राधा कृष्ण और गोपियों के प्रेम में चित्रित हैं । लक्ष्मी नारायण का भी एक गाथा में चित्रण है । बुद्ध का नाम भी एक गाथा में आया है । उच्च भावनाएं वहां लक्षित हैं, जहां नायिका पति के लौटने की प्रसन्नता में भी शृंगार करने में यह सोचकर हिचकती है कि कहीं बेचारी पड़ोसिन का विरह दुख बढ़ न जाए ।

व्यवहार नीति - जयवल्लभ द्वारा संकलित 'वज्जालग्ग' में हमें त्रिवर्ग आचरण, व्यवहारिक ज्ञान तथा प्रेम के उदाहरण भी मिलते हैं । 'कुलीन के लिए वचन का बन्धन सब से बड़ा है । सज्जन डिग जाते हैं, सागर अपनी मर्यादा छोड़ देते हैं पर सुजन कष्ट के अवसर पर भी शिथिल नहीं होते'। 'दुर्जन बाण के समान बेधने वाले होते हैं'। 'मित्रता पानी और दूध के समान होनी चाहिए'। 'विधि के बारे में कहा है समुद्र मंथन के समय विष्णु महेश दोनों ही थे पर शिव को विष मिला और विष्णु को लक्ष्मी'। पहले अपना हित करना चाहिए सम्भव हो तो दूसरों का हित करना चाहिए ।अपने और दूसरों के हित में अपना ही हित प्रमुख है । इस में हमें प्रभु, सेवक, दूती, कुट्टिनी, सती, असती, ज्योतिषी, लेखक, वैद्य, यांत्रिक, धार्मिक, मुसल, वैश्या आदि समाज के प्रत्येक वर्ग का चित्र मिलता है । पशु पक्षी के भी चित्र हैं । हंस की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि एक हंस से जो सरोवर की शोभा है वह अनेकों मेंढकों से नहीं । हरिण, गज, सिंह का भी वर्णन है , चातक का वर्णन है, हे जलधर तुम बरसोगे और समस्त भुवनांतरों को जल से भर दोगे, लेकिन कब, जब कि चातक का कुटुम्ब तृष्णा से शोषित हो कर परलोक पहुंच जाएगा । नारी के प्रेम का भी चित्रण है । माता के चरणों पर गिरने को गंगा के पवित्र जल में स्नान करने के तुल्य समझते हैं । प्रीति की

पराकाष्ठा वहीं पता चलती है जब पति के चले जाने पर नायिका पथिक से कहती है कि उस पथ से वह न जावे क्योंकि उस के जाने से प्रेमी के पदचिन्ह मिट जायेंगे । वह उन पदचिन्हों को अंकित देखकर ही सन्तोष कर लेती है ।

गाथा सप्तशती , गाथा कोष, वज्जालग्ग, रयणावली तथा साहित्य श्लोक प्राकृत के काव्य मिलते हैं, जिन में जन जीवन प्रेम में आप्लावित मिलता है । 'प्राकृत पैंगलम्' एक व्याकरण का ग्रंथ है इस में उदाहरण में बहुत से कवियों की रचना मिलती है । इस में श्रृंगार, वीर, नीति, देवादि स्तुति सम्बन्धी बहुत से उदाहरण मिलते हैं। एक नायिका का वर्णन है जो प्रिय से कलह करने पर भी प्रिय को बुलाने की इच्छा करती है, कौन ऐसा है जो नगर पर आग लगने पर भी आग को न चाहता हो । ऋतु के सौंदर्य से नायिका को प्रीतम के बिना दुःख होता है । "जल बरस रहा है, बादल आकाश में मंडरा रहे हैं, शीतल पवन मन को हरने वाला बह रहा है ।सोने के समान पीली बिजली नाच रही है, कदंब के फूल फूल गए हैं । पत्थर के समान निष्ठुर (एवं कठोर) हृदय वाला प्रिय निकट ही नहीं आता[1]"। इस में नायिका प्रेमी ही नहीं है वह वीर पत्नी भी है ।"हे सुंदरि पाँव छोड़ दो, हे सुमुखि, हँसकर मेरे लिए खड्ग दो । म्लेच्छों के शरीर को काट कर हम्मीर निश्चित तुम्हारे मुख के दर्शन करेगा"। नीति के विचार भी पाए जाते हैं। "वही पुण्यवान समझा जाता है जिस का पुत्र भक्त तथा विद्वान हो, जिस की पत्नी गुणवती हो, वह पृथ्वी में भी स्वर्ग में निवास करने वाला है"।धार्मिक अभिव्यक्ति भी मिलती है । कृष्ण, शिव, तथा विष्णु स्तुति मिलती है । "जिनके हाथ में सर्प का कंकण है, शरीर में पत्नी सुशोभित है, नेत्र में अग्नि

१- गाथा १६६ प्राकृत पैंगलम्

है, गले में जहर है, सिर पर निर्मल चन्द्र निवास करता है, सिर पर गंगा रहती है। जो सब लोगों के दुख का दमन करने वाले हैं। वे शशिधर अभय का वर प्रदान करें।" इस में आदि काल की रूढ़ियाँ, परम्परा तथा प्रकृति का दर्शन होता है। "कल्पवृक्ष, सुरभि, पारस मणि तीनों पदार्थ वीर की समानता नहीं कर सकते। एक वल्कल युक्त और कठोर शरीर वाला, दूसरा पशु और तीसरा पाषाण है।" "पावस में बिजली चमकती है वियोगिनी के लिए मानो कामदेव मेघ रूपी सान पर तलवार तेज़ कर रहा है"। प्राकृत के बाद अपभ्रंश में इस धारा का रूप बदला है।

<u>अपभ्रंश में मुक्तक काव्य की परम्परा</u> - अपभ्रंश में संस्कृत प्राकृत की परम्परा बनी न रह सकी : संस्कृत में मानव देवी देवताओं को मानता था, प्रकृति से प्रेम था। प्राकृत काल में व्यक्ति जन जीवन का प्रेमी हो गया। गौण रूप से धर्म, व्यवहार नीति तथा समाज नीति का विकास है। पर अपभ्रंश काल में प्रधानतः धर्म प्रचार की है। धार्मिक भावनाओं में उपदेश तथा नीति मुख्य है। कुछ में आत्म ज्ञान, आत्म स्वरूप, संसार नश्वरता, विषय त्याग, वैराग्य भावना प्रमुख है। ये भाव जोगीन्द्र के " परमात्म प्रकाश" और "योगसार", मुनि राम सिंह का " पाहुड दोहा", सुप्रभाचार्य के"वैराग्य सार" में है। परमात्म प्रकाश में आत्मा के लिए कहते हैं, "न तो आत्मा ब्राह्मण है न वैश्य, न गोरी है न काली न सूक्ष्म है न स्थूल[१]"। बिना ज्ञान के शास्त्र पढ़ने में कोई लाभ नहीं, तीर्थों का सेवन करने का कोई फल नहीं। पाहुड दोहा में जिस ने आत्म ज्ञान रूपी माणिक्य को पा लिया वह संसार के जंजाल से पृथक हो आत्मानुभूति में रमण करता है। बाह्य कर्म कलाप से यदि आन्तरिक शुद्धि न हो तो उसे भी व्यर्थ ही समझो। "आपत्तियों से मूर्छित नर चुल्लू भर पानी से होश में आ जाता है प्राण नाश हो

१- आत्मा - परमात्मप्रकाश - ८० हिन्दी काव्य धारा पृ० २४।

जाने पर हजारों घड़ों पानी से भी क्या[1]। अपनी आत्मा के लिए ही उन्नति का उपाय करो, दूसरे के दुख की चिन्ता करने से दुख नहीं कम होगा, पढ़ते पढ़ते तालू सूख गया, पर बिना एक अक्षर प्रेम के पढ़े शिवपुर नहीं जा सकते ।

कुछ मुक्तक ऐसे मिलते हैं जिन में व्यक्ति के कर्तव्यों और धर्म के पालन करने का विवरण है । इस में सदाचार जीवन प्रतिपादन करने के लिए व्यवहारिक बातें बताई हैं । देवसेन की " सावयधम्मदोहा", जिनदत्त सूरि के " उपदेश रसायन रास", और "काल स्वरूप कुलक", जयदेव मुनि की "भावना - संधि प्रकरण" और महेश्वर सूरि की " संयममंजरी " आदि रचनाएं हैं ।"सावयधम्म-दोहा " में धर्म का लक्षण बताया है बहुत कहने से क्या, जो अपने को प्रतिकूल लगे उसे दूसरों के लिए मीनकरे । रूप पर रति मत कर । उधर जाते हुए नयनों को रोक । रूप में आसक्त पतंगा को दीपक पर पड़ते हुए देख[2]। दया ही धर्म वृक्ष का मूल है । थोड़े मद का आस्वादन भी बहुत पुन्यों का नाश करता है, आग की एक चिनगारी भी वन को जला देती है ।

इन्हीं भावों को लिए हुए बौद्ध सिद्धों की भी रचना मिलती है । दोहा कोष, बौद्धगान दोहा तथा चर्यापद में इसी धार्मिक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । धार्मिक प्रवृत्ति में एक परिवर्तन हुआ है कि इस में रूढ़ियों का पालन नहीं हुआ है । लौकिक जीवन इन में अधिक परिलक्षित होता है । समाज के ग्राम्य जीवन का भी चित्रण हुआ है । गौण रूप से शृंगारिक भावना, प्रेम की भावना तथा वीर भावों का चित्रण भी मिलता है। उदाहरणों से इसका

१- पाहुड़ दोहा- पद्य सं० प० ९५।३१- संतसुधा-सार
२- सावयधम्मदोहा -१२६

स्पष्टीकरण हो सकता है । हेम चन्द्र के काव्य में मिलता है,"ज्यों ज्यों वह श्यामा लोचनों की बंकुरा-कटाक्ष-पात सीखती है त्यों त्यों काम देव अपने बाणों को कठोर पत्थर पर तेज करता है[1]"। एक नायिका का चित्र है,"न तो प्रिय संगम में निद्रा है और न प्रिय के परोक्ष होने पर । मेरी दोनों प्रकार की निद्रा विनष्ट हो गई, न इस प्रकार से नींद है न उस प्रकार से[2]"। एक वीर युवती का भी चित्रण है"हे गोरी, मुझ को इस जन्म में और अन्य जन्मों में ऐसा ही पति देना जो हंसता हंसता निरंकुश मत्त गजों के साथ भिड़ने वाला हो[3]।""खलों के दुष्ट वचनों के कान में पड़ने की अपेक्षा वन में वृक्षों के फल खाकर संतुष्ट रहना अच्छा है[4]"। बाह्य कर्म कांड का निषेध, गुरु की महत्ता ही इन काव्यों में मिलती है । बिना छाना हुआ पानी, मूली, लहसुन तथा मूल वस्तुओं को न खाय । सूर्यास्त के पश्चात् भोजन न करे । काले सांप को बलवान बनाने के समान इन्द्रियों को बलवान बनाना है । पात्र का दिया हुआ थोड़ा भी दान बहुत होता है । जिन प्रतिमा के ध्यान से चतुर्गति का पाश टूटता है । गुणवंतों का संग उत्तम है । मधुरता, त्याग, पौरुष ही आवश्यक है । ब्राह्मण हो या शूद्र इसी धर्म का पालन कर सकते हैं । गौ का दूध और आक का दूध दोनों श्वेत वर्ण होते हैं किन्तु उस के पान करने में परिणाम भिन्न भिन्न होते हैं यही सुगुरु और कुगुरु में भेद है । अपभ्रंश काल में ग्रामीण संस्कृति का चित्रण मिलता है । इन जातियों के लोग अपनी स्त्रियों से और इन की पत्नियाँ अपने पतियों से द्विविधा रहित, मुक्त

१- हे० प्रा० व्या० ८, ४, ३४४
२- हे० प्रा० व्या० ८, ४, ४१८
३- हे० प्रा० व्या० ८, ४, ३८३
४- हे० प्रा० व्या० ८, ४, ३२८

मनोभाव से प्रेम करती है । अपभ्रंश की प्रेम की कविता के पीछे युद्ध की टंकार और शस्त्र का व्यवसाय है । वह ज्वलन्त भाव से कहती है, "तेरे और मेरे दोनों के रण में जाने पर जयश्री को कौन ताक सकता है । यम की घरणी को पकड़ कर कहो कौन सुख से रह सकता है[1]।" वह कहती है प्रिये उस देश में चलो, जहाँ खड्ग का व्यापार होता हो[2]। "जिस के घर चार बैल हों, दो गायें और मीठा बोलने वाली स्त्री हो उस कुटुम्बी को अपने घर हाथी बांधने की क्या जरूरत[2]।"

__सिद्ध साहित्य में मुक्तक की परम्परा__ - सिद्ध साहित्य धार्मिक साहित्य है जिस में सिद्धों द्वारा व्यक्ति को उपदेश है । सिद्ध साहित्य में सुख-दुख और दुनिया की सभी समस्याओं को केवल व्यक्ति के रूप में देखा गया है । समाज की बुराइयों को, सामाजिक रूप से दूर करने में सफलता मिल सकती है, ऐसा सिद्धों का विचार न था । इस में निराशावाद, योग वैराग्य से लोगों का पिंड छुड़ाने का प्रयत्न किया गया है । इस में आत्मावलम्बन को अधिक पसन्द किया गया है । गुरु की महिमा को ही केवल माना है । हेमचन्द्र के संग्रहीत पदों में शृंगारिक तथा वीरता की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं । इस में समाज और राजनीति को कुछ भी महत्ता नहीं मिली है। परम्परागत संस्कृत में व्यवहारनीति के जो उपदेश हैं उन में सामाजिक व्यवहार पर बल दिया गया है । समाज का गठन कैसे हो, किस वर्ग का क्या स्थान हो, परिवार में पिता, पुत्र, स्त्री का स्थान तथा कर्तव्य आदि पर सिद्धों के साहित्य में इन सामाजिक अनुशासन की उपेक्षा की गई है । उस में व्यक्ति को ही साधना पथ में अग्रसर होने के विचार मिलते हैं ।

१- प्रा० व्या० ४, ३७०, ३   २- प्रा० व्या० ४।३८६।१

२- प्रा० पि० - पृ० २४

जो व्यक्ति के साधना पथ में बाधक होउती का खंडन करते हैं । इसीलिए इस साहित्य में हमें शून्य, सहज, महानिर्वाण, चित्त आदि का विवेचन मिलता है, पुरानी रीति परम्पराओं, व्यक्ति के लिए अन्य अनुशासनों का खंडन मिलता है तथा बाह्य जगत का परित्याग कर केवल आन्तरिक शुद्धि करने की चेतावनी मिलती है । इस साहित्य में व्यक्ति निरुपित धर्म है । ऋगवेद में धर्म तथा व्यक्ति अलग अलग थे सिद्धों में व्यक्ति ही धर्म है और धर्म ही व्यक्ति है ।

सिद्धों की कविता का आरम्भ सरहपाद है । इन्हों ने अन्तःसाधना पर जोर दिया है । पंडितों को फटकारा है । सरह के काव्य में मिलता है कि धर्म में ही महासुख है । पाखंड का खंडन किया है । मिट्टी, पानी और कुश लेकर संकल्प करने वाले, घर में बैठ कर अग्निहोत्र करने वाले, होम के कडुए धुएं से आंख को कष्ट देने वाले, घर में बैठ कर दिया जलाने वाले, घूर घूराने वाले मिथ्या साधकों का उल्लेख करते हैं[1]। बाह्य अनुष्ठानों को निरर्थक कहा है उन का उपहास उड़ाया है । कहते हैं कि चित्त में निरंजन को धारण करने से ही मुक्ति मिल सकती है । उस निरन्जन में जिस ने मन को लीन कर लिया है उस के लिए तंत्र और मंत्र सब व्यर्थ है[2]। व्यक्ति के लिए आदेश है ।

जिमि लवण विलीजै पानिऐ, तिमि घरिणी लइ चित्त विचार[3]
आपहिं दीसै परहिं सम, तन्थ समाधि में काह ।

गोरखनाथ के काव्य में वेदशास्त्र का अध्ययन व्यर्थ ठहराया गया है । तीर्थाटन निष्फल कहा गया है । जाति पांति का खंडन किया गया है । सहज मार्ग का चित्रण है ।

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरै धरिबा पांव ।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरख रांव ।[1]

योगी हो तो योग रखे । जीभ का स्वाद करे । जैसे लोहा के लिए

1-2 हिंदी काव्यधारा - राहुल सांकृत्यायन पृ. सं. २/५, २३/७ । ३- ~~सिद्ध साहित्य~~
४- संत-सुधा-सार - गोरखनाथ - पद सं. पृ. सं. १०/३ ।
३- दोहा कोष (कलकत्ता सं. सी. २५) दोहा ३२ पृ. ४६

अग्नि पानी है समान, वैसे ही योगी के लिए राजा प्रजा सम होवे । जो दूसरों के दोष नहीं देखते हैं दूसरों के गुणों से सन्तोष होता है वही संसार में महानु-भाव हैं, वही सरल स्वभाव के हैं । दूसरों के दोष न देखे, अपने दोषों का प्रकाशन करे, मीठे शब्द बोले, बैरी तथा उपकारी दोनों के प्रति उपकार करे, ऐसी पद्धति सुजन की होती है । ऐसे नीति वचन हेमचन्द्र सूरि के काव्य में मिलते हैं । राजा की प्रशंसा, वीरता के चित्र, श्रृंगारिक भावना के चित्र तथा प्राकृतिक चित्र मिलते हैं । संयोग और वियोग दोनों पक्षों के चित्र हैं । बसन्त ऋतु का एक चित्र है । "भौंरे घूम रहे हैं, कमल खिल रहे हैं नवीन किंशुकों के वन आच्छादमान हो रहे हैं, सर्वत्र कोयल का मधुर स्वर सुनाई दे रहा है[१]। शीतल वायु धीरे धीरे बह रही है । मलय पर्वत की बुहार और नवीन बेलें प्रेरणा दे रही हैं । चित्त में बाण लग रहे हैं, और पति देव दूर देश चले गए हैं । मैं अपने को किस भाँति धैर्य बंधाऊं । मुझे अत्यंत पीड़ा हो रही है । यह कष्ट अत्यन्त दुखदायी हो रहा है[१]"। अकबर के काव्य का एक और चित्र है, जो गरीब जीवन से सम्बन्धित है । "तभी तक बुद्धि है तभी तक बुद्धि है तभी तक दान है तभी तक मान है तभी तक गर्व है जब तक हाथ में द्रव्य है[२]।"

धार्मिक काव्यों में स्तोत्र परम्परा में अभयदेव सूरि का " जय तिहुअण" छन्द पाया जाता है । रोग निवारण के लिए प्रार्थना की है । "तुम्हीं स्वामी हो, तुम्हीं माता पिता हो, तुम्हीं प्रिय मित्र हो । तुम्हीं गति, तुम्हीं मति और तुम्हीं त्राण करने और क्षेम करने वाले गुरु हो । मैं कठिन दुख से भरा हुआ अकिंचन अभागियों में प्रथम हूं । तुम्हारे चरण कमल में लीन हूं[३]"। धीरे धीरे

१-हिन्दी काव्य धारा पृ० [illegible] । बसंत वर्णन पद्य सं. पृ.सं. २१/३८९
२- " " " - अकबर - पद्य सं. पृ.सं. १७७/३९५ - गरीबी जीवन - कुलकुमोरतनक
३- जय तिहुअण स्तोत्र छंद । २० ।

वीरता के चित्रों की बहुलता हो गई । मेरुतुंग अभयदेव सूरि, जज्जल, राजशेखर के काव्यों में इसके उदाहरण मिलते हैं ।

नीति तत्व की परम्परा में भी विकास हुआ है।

बौद्ध और जैन नीतिकार शरीर की निन्दा करते हैं पर सरहपा ने संहिताकाल ऋषियों के समान इसे अनुपमतीर्थ माना है । परोपकार तथा दान को जीवन में मुख्य स्थान दिया है ।"न तो परोपकार ही किया और न दान ही दिया । फिर इस संसार में जीने का लाभ ही क्या । इस से तो स्वदेह त्याग ही भला[१]"। इन कवियों ने गुरु को परम्परा गत स्थान दिया ।साधु संगति पर बल दिया । इन्होंने धर्म-क्षमा, दया भक्ति, विश्वास, शौच आदि की प्रशंसा की है । जाति पांति रीति रिवाजों का भी उल्लेख किया है । सन्तों ने इसी परम्परा को आगे बढ़ाया है । हम आगे के परिच्छेद में इसी का अवलोकन करेंगे कि मुक्तक साहित्य किन किन का ऋणी है तथा परम्परा का निर्वाह कैसा हुआ है ।

१- जे० डी० एल० कलकत्ता भाग २८ पृ०सं० दोहा सं० २३ । ११२-सरहपा

<u>संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश का हिन्दी मुक्तक काव्य पर प्रभाव</u> -

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं कि संस्कृत का आदि ग्रन्थ वेद है । उस में मानव प्रवृत्ति के अनुसार सभी विचार धाराओं का आरम्भ हुआ है । इस में उस का प्रभाव सभी काव्यों पर पाया जाता है । हिन्दी में मुक्तक काव्य की उपासना-परक, शृंगार-परक, नीतिपरक तथा वीरता-परक प्रवृत्ति पायी जाती है ।

<u>उपासनापरक काव्य पर प्रभाव</u> - हिन्दी साहित्य में उपासना-परक काव्य का आरम्भ सन्तों ने किया जिस के आदि प्रवर्तक कबीर हैं । कबीर पढ़े लिखे न थे । उन्हों ने स्वयं वेदान्त का अध्ययन तो नहीं किया था पर वे बहुश्रुत थे । इस से काव्य की प्राचीन परम्परा का प्रभाव उन पर पूर्णतया दिखाई देता है । उपासना-परक काव्य में कबीर ने आराधना-पद्धति की विवेचना की है । उन के दर्शन का मूल स्रोत वेद ही है । कबीर की आराधना भक्ति मार्ग की है । भक्ति मार्ग का आरम्भ आरण्यकों और उपनिषदों के उपासना खंड से आरम्भ हुआ है । उन की आराधना पर नारद सूत्र का पूरा प्रभाव है । कबीर की भक्ति पर सूफी मत का भी प्रभाव था, इस से प्रेम का आलम्बन सगुण और व्यक्ति के स्थान पर निर्गुण एवं अव्यक्त रूप में मिलता है । कबीर में अद्वैत भावना का पाया जाना वेदानुकूल ही है । वेदों के अनुसार विद्वान लोग उस एक ही को अग्नि, यम, वायु आदि नामों से पुकारते हैं । उपासना करते हैं । कबीर ने सर्वत्र ब्रह्म का प्रयोग किया है । उपनिषद् को ज्ञान की चरम सीमा कहा जाता है इस के अतिरिक्त उस में योग की भी चर्चा है, कबीर की योग साधना भी उसी से प्रभावित है । आराधना-पद्धति में नाम की महिमा भागवत से प्रभावित

है । विष्णु सहस्त्र नाम इस का प्रमाण है ।

पूजनीय व्यक्तियों में कबीर ने सन्त और गुरु को स्थान दिया है । गीता के स्थितप्रज्ञ को कबीर ने सन्त कहा है । गीता में ~~कहा गया~~ ~~है~~ सुख दुख में समान रहने वाले , निर्विषय को स्थितप्रज्ञ कहा है[1] । इसी तरह कबीर ने कहा है

निर्वैरी निहकामता साईं सेती नेह ।
विषया सूं न्यारा रहै, संतन का अंग एह[2] ।।

भागवत में कहा गया है कि भव जाल में भटकता हुआ जीव भगवान के पावन नाम के स्मरण से तुरन्त ही मुक्त हो जाता है - (भागवत- १, ११४) विष्णु पुराण में भी कृष्ण स्मरण को तपस्यात्मक और कर्मात्मक समस्त सब प्रायश्चितों में सर्व श्रेष्ठ कहा है । कबीर ने भी नाम को भव सागर तरने के लिए पोत कहा है ।

गुरु की आवश्यकता और कृपा का वर्णन उपनिषदों में भी किया गया है । शंकर श्वेताश्वतर उपनिषद् के भाष्य में गुरु महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं, "जैसे तपे हुए मस्तक वाले पुरुष के लिए जलाशय के खोजने के सिवा और कोई उपाय नहीं है तथा क्षुधातुर पुरुष को भोजन के बिना कोई शान्ति का साधन नहीं है, उसी प्रकार गुरु की कृपा के बिना ब्रह्म विद्या प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है[3]।" गीता में गुरु पूजा शारीरिक तपों में

१- अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः -- गीता - २।२४.

२- कबीर ग्रन्थावली पृ० ५० पद ६१

३- श्वे० उप० ६, २३ शंकर भाष्य

परिचित की गई है[१]। शिव संहिता में गुरू को माता पिता और साक्षात् देवता माना गया है तथा मन, वाणी और कर्म से गुरू की सेवा करने का उपदेश दिया गया है।

यस्य देवे परिभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ[२]

श्वेताश्वतर उपनिषद् ने प्राचीन काल में ही गुरू को देव समता प्रदान की थी, इसी तरह कबीर ने गुरू गोविन्द को एक कहा है। इन सन्तों ने ब्रह्म तथा आत्मा को वेद तथा गीता के अनुसार ही माना है। भूत, वर्तमान और भविष्य कालों में रहने वाला जो विश्व है, वह सब विश्व परमात्मा ही है। यही परमात्मा अमरत्व देने वाला है। और यही अमरत्व भोगों से प्राप्त होने वाले सुख से बहुत ही उच्च और श्रेष्ठ आनन्द देने वाला है[३]। गीता में ब्रह्म का वर्णन है। परम अक्षर, जिस का कभी नाश न हो, ऐसा सच्चिदानन्द परमात्मा ब्रह्म है और अपना स्वरूप अर्थात् जीवात्मा अध्यात्म नाम से कहा जाता है[४]। कबीर ने ब्रह्म को अजर अमर, शाश्वत, अलख, अकथ, अवर्ण, सर्वव्यापी, अनन्त तथा सर्वोपरि कहा है। आत्मा को अविनाशी संपूर्ण जगत में व्याप्त अजर, अमर, शाश्वत, अच्छेद्य, अक्लेद्य गीता में कहा है[५]। इसी भाव

१- गीता अध्याय १४/२६ अध्याय १६

२- श्वेताश्वतर उपनिषद् ६, २३

३- वेद परिचय - द्वितीय भाग श्लोक पृ० २१७ - पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

४- गीता - ८।३

५- गीता - २।२४

को कबीर ने भी व्यक्त किया है -

पारब्रह्म के तेज का कैसा है उनमान ।

कहिबे कूं सोभा नहीं, देख्या ही परवान[1] ।।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है । आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही आगे है, आत्मा ही दाईं ओर है, आत्मा ही बाईं ओर है, यह सब कुछ आत्मा ही है[2] । कबीर ने भी ऐसा ही कहा है न वह हल्की, न भारी, न छोटी, न बड़ी, उसका कोई तोल नहीं है[3] । काल के परिवर्तन भी आत्मा में नहीं होते । गीता का श्लोक प्रसिद्ध ही है -

नैनं छिन्दान्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः

न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः[4]

कबीर भी कहते हैं वह जलाने से जल नहीं सकती[5] । नानक कहते हैं, वह न पवन से सूख सकती है, न अग्नि से जल सकती है, न पानी में डूब सकती है और न पकड़ी ही जा सकती है[6]। माया का निरूपण शंकराचार्य के मत के आधार पर हुआ है । जगत की उत्पत्ति के लिए आचार्य ने मायातत्व की कल्पना की है ।इन के मत के अनुसार माया और अविद्या एक है ।माया की दो शक्तियाँ

१- कबीर ग्रन्थावली पद सं० पृ० सं० ३।१२

२- छां० उप० ७, २५, २

३- क० ग्रं० पृ० सं० ३४० पद नं. १७।१

४- गीता - २/२३

५- क० ग्रं० पृ० - १३९

६- प्रा० सं० पृ० - १०४ पद २

है आवरण तथा विक्षेप शक्ति[1] कबीर भी जगत को व्यवहारिक सत्ता के रूप में मानते हैं। माया की विक्षेप शक्ति तथा आवरण शक्ति को स्वीकार करते हैं। जीव तथा ब्रह्म के सम्बन्ध को "बूंद समानी समुद्र में सो कत हेरी जाइ[2]" कहा है। जीव को भ्रम में डालकर माया नाच नचाती है। इस को सभी सन्तों ने माना है रामानुजाचार्य ने जीवन का परम लक्ष्य मुक्ति माना है कबीर आदि सन्तों पर इसका प्रभाव दिखाई देता है। वैष्णव मत का पूरा प्रभाव कबीर पर पड़ा है। वर्ण व्यवस्था की उपेक्षा उत्तर-मध्य काल में वैष्णव में आ गई थी। रामानुज तथा रामानन्द ने इस विचार को माना है। इस का प्रभाव कबीर पर पड़ा। उन्होंने वर्ण व्यवस्था से सन्तप्त जनता को आशा दिलाई।

सन्तों द्वारा निरूपित आचार शास्त्र पर भी संस्कृत काव्य का प्रभाव दिखाई देता है। भागवत, नारद सूत्र, विष्णु पुराण तथा गीता के सोलहवें अध्याय में आचार विचार पर पूरा विश्लेषण किया गया है। इन सब शास्त्रों में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्संग, सहनशीलता, सन्तोष, अस्तेय, मौन, परोपकार, परनिन्दा, त्याग, धार्मिक जीवन के लिए मौलिक आवश्यकताएं बताई हैं। वेद में सत्य आचार पर काफी बल दिया गया है।

सत्य :- पतंजलि योग दर्शन में कहा गया है यथार्थानुकूल वाणी और मन का व्यवहार सत्य का लक्षण है। "जैसा देखा हो, अनुमान किया हो, वैसा ही वाणी से कहना और अपने बोध के अनुसार दूसरे को ज्ञान कराना सत्य है[3]"। कबीर नानक आदि सन्त भी इस की शिक्षा देते हैं। कबीर ने कहा है

१- शंकर भाष्य प्रदीप शारीरिक - १।२०

२- कबीर ग्रं० पृ० - १७ प. सं २

३- पातंजलि योगदर्शन - शिवनारायण द्वारा अनुदित तथा दि फाइन प्रिंटिंग प्रेस अजमेर द्वारा मुद्रित : प्रथमावृत्ति पृ० १४१।

और मुख से कहो वैसी चाल भी चलो ।

अहिंसा - महाभारत में अनुशासन पर्व में कहा है अहिंसा में सभी धर्मों का समावेश है । कबीर ने दुर्बल को सताना भी हिंसा माना है ।

दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय ।
मुई खाल की सांस सो, लोह भसम ह्वै जाय[1] ।।

ब्रह्मचर्य - नारद भक्ति सूत्र में कहा है कि स्त्री के चरित्र को सुनना भी नहीं चाहिए[2] । इसी से प्रभावित होकर सभी सन्तों ने नारी की निन्दा की है । सत्संगति की महिमा सन्तों के गुण के साथ ही वर्णित है । सहनशीलता भी आदि काल से मान्य गुण समझा जाता है । गीता में कहा है कि सन्तोष महात्माओं का अनुपम धन है[3] । दूसरों का धन लेना स्तेय कहलाता है वह शास्त्रों में मना है[4] ।

कबीर भी कहते हैं कि बोलने से विकार बढ़ जाता है[5] । गीता ने परोपकार को दैवी गुण माना है[6] । मार्कण्डेयपुराण में कहते हैं पर निन्दा एक बड़ा पाप है[7] । इसी से प्रभावित होकर कबीर भी कहते हैं अकामी ही निन्दा करते हैं । गोस्वामी तुलसी दास जी भी पर निन्दा को बहुत बुरा समझते हैं ।

१- संत बानी संग्रह कबीरसाहिब पद सं० पृ० सं० २।४४
2 नारद भक्ति सूत्र - ६३
३- गीता - १२/१४,
४- कबीर दर्शन पृ. ३३४
५- कबीर ग्रन्थावली पृ० १०९
६- गीता - १६/२
७- मारकण्डेयपुराण (कल्याण पृ० ७९)
८- कबीर ग्रन्थावली पृ० ८२- पद ७१

हिन्दी शृंगार-परक काव्य लिखने वाले कवियों पर भी संस्कृत साहित्य का प्रभाव पड़ा है । ये कवि सगुणोपासक हैं इन्होंने गणेश जी की स्तुति मंगलाचरण में इसी साहित्य से प्रभावित होकर की है । विष्णु, शिव पार्वती, गंगा जी की आराधना संस्कृत साहित्य के अनुसार की गई है ।

अति वसनं विना वस्त्रं प्रार्थिमान निरस्य दुन्मानम ।

स्मावति गाहो पैशावशानो श्रीयते स हरिः [१] ।

जिन विष्णु ने शीघ्रता के कारण सवारी को तिरस्कार कर नंगे पैर जाकर गजेन्द्र की रक्षा की उन को प्रणाम है । अपनी देह के आधे बायें भाग में पार्वती को रखने वाले सांपों का कुंडल बना कर पहनने वाले कल्याणमय भस्म लपेटे हुए तथा आकाश रूपी वस्त्र वाले शिव प्रत्यक्ष प्रकट हों[२] । देव कवि ने सरस्वती की आराधना इन्हीं संस्कृत सूत्रों से प्रभावित होकर की है । मैं उन सब से बड़ी सरस्वती देवी की उपासना करता हूं जो वाणी की अकेली ही स्वामिनी हैं जिन की कृपा न मिलने से किसी की वाणी नहीं खुल सकती[३] । पद्माकर आदि कवियों ने गंगा वर्णन किया है । सूक्ति सागर में कहा है -

गौरी विमयधानार्थं संकीर्णं हर मूर्धनि[३] ।

अम्ब त्रिगुण गंभीरे भागारथि नमोऽस्तु ते ।

अर्थात् पार्वती की कुपारा आधे बटाए हुए शिव जी के मस्तक की संधि में रहने वाली, आपकी गंभीरता (इतनी अद्भुत) है । माँ गंगे तुम को प्रणाम है ।

१- संस्कृत सूक्ति सागर विष्णु श्लोक १० पृ० ६०

२- " " " सरस्वती श्लोक १० पृ० ३

३- संस्कृत सूक्ति सागर सरस्वती श्लोक ३ पृ० ७१

अपभ्रंश साहित्य में जैन साहित्य तथा बौद्ध साहित्य है । कबीर जैनों के आत्म ज्ञान तथा निज स्वरूप पहिचानने के विचार से प्रभावित हुए । जैसा कि योगीन्द्र ने आत्मा को सर्व गत कहा है आत्मा को छोड़कर किसी तीर्थ में जाने की आवश्यकता नहीं, वे कहते हैं, यह अनन्त देव न देवालय में, न शिला में, न लिपि में है वह अक्षय है तथा ज्ञानमय, निरन्जन समचित्त को प्राप्त योगियों के मन में रहता है । बौद्ध साहित्य में बुद्धिवादिता पाई जाती है उस से कबीर प्रभावित हुए । लोक और वेद के प्रति अन्धानुकरण इन को इसी से मान्य न था ।

पीछे लागा जाइ था लोक वेद के साथ ।
आगे थे सद्गुरु मिल्या, दीपक दीया हाथ[1] ।

इसी से प्रभावित होकर इन्होंने कर्म कांड के मानने वाले पंडित तथा मुल्लाओं का विरोध किया । बौद्ध साहित्य में सिद्धों की प्रमुख प्रवृत्ति खंडन मंडन की है। वर्ण व्यवस्था का पूरा विरोध किया है । तीर्थाटन, गंगास्नान, मूर्तिपूजा पर अविश्वास प्रगट किया है । इस का प्रभाव कबीर आदि संतों पर दिखाई देता है । सहज ज्ञानियों की सहज शब्द कबीर ने अपना लिया । इन की उल्टबासियों पर संध्या भाषा का प्रभाव है ।

वैराग्य की भावना मन की पवित्रता, वेद, स्मृति, ब्राह्मण मूर्ति पूजा विरोध, विकार रहित होना मध्य मार्ग का अनुसरण, मद्य मांस आदि का निषेध आदि विचार कबीर में जैनों की अपभ्रंश रचना के कारण ही आए ।

१- कबीर ग्रन्थावली- पृ० २ पद८ ११

२- परमात्म प्रकाश - दो० - १२३

कबीर ने कनक कामिनी की निन्दा गोरखनाथ से प्रभावित होकर की । सरह पाद कहते हैं मंत्र जाप करने से शान्ति नहीं मिलती । अपने को जानने की जरूरत है ।

" जावण अप्पा जाणिज्जइ तावण सिस्स करेइ[1] ।
अन्ध अन्ध कढाव तिम बेठा विकूव पड़ेई " ।

कबीर भी इसी से प्रभावित होकर कहते हैं -

"अन्धे अन्धा ठेलिया, दून्यू कूप पड़ंत"।

ऐसे ही सरह पाद कहते हैं -

"भला ध्यान करने से कहीं मुक्ति मिलती है, दीपक दिखाने और नैवेद्य चढ़ाने, तथा मंत्र पाठ से क्या मुक्ति मिलती है । तीर्थ सेवन और तपोवन जाने से और पानी में नहाने से कहीं मोक्ष प्राप्त होता है"। कबीर आदि सन्त इसी से प्रभावित हैं ।

शृंगार-परक काव्य पर प्रभाव - शृंगार-परक काव्य पर प्राकृत की गाथा सप्तशती का सब से ज्यादा प्रभाव पाया जाता है शृंगार-परक काव्य वेद में उस रूप में नहीं पाया जाता जैसा हिन्दी में है । संस्कृत की आर्यासप्तशती तथा अमरुकशतक पर गाथासप्तशती का प्रभाव है । वास्तव में इस प्रकार की परम्परा का आरम्भ ही गाथासप्तशती से हुआ है । शृंगारपरक काव्य में मानव की प्रवृत्तियों के कारण कवियों का मन रूप वर्णन, संयोग वर्णन तथा वियोग वर्णन में सब से अधिक लगा है । वैसे तो संस्कृत के काव्य शास्त्रों का प्रभाव सभी कवियों पर पड़ा है । इसी से प्रभावित होकर बहुत से कवियों ने नायक-नायिका भेद के ग्रंथ रचे हैं । केशवदास

१- सन्त सुधासार पृ० - ३ पद सं. ३ - सरहपाद

पर अलंकारवादी भामह, उद्भट और दंडी का प्रभाव है । चिन्तामणि पर काव्य प्रकाशकार मम्मट का तथा चन्द्रलोक का पद्माकर पर प्रभाव पड़ा है । रहीम ने बरवै नायिका भेद इन्हीं काव्य शास्त्रों से प्रभावित होकर लिखी है । रूप वर्णन का बिहारी का प्रसिद्ध पद है -

नहिं पराग नहिं, मधुर मधु नहिं बिकास यहि काल ।
अली कली ही सो बंध्यों, आगे कौन हवाल । (बि.र.३८)

इस दोहे पर गाथासप्तशती का प्रभाव पड़ा है -

जाव ण कोस विकास पावइ ईसीस मालई कलिआ ।
मअरंदपानलोहिल्ल भमर ताव च्चिअ मलेसि[१]

गाथासप्तशती में लिखा है उत्सव के दिन सोत्साह स्नान तथा प्रसन्न किए हुए सपत्नी वर्ग के बीच में नायिका ने स्नान के प्रति अनादर द्वारा अपना सौभाग्य प्रकट किया[२]। इसी से प्रभावित होकर बिहारी ने कहा है और सहेलियां श्रृंगार प्रसाधन करती हैं पर नायिका को अपने पति पर विश्वास है इससे वह उसी वेष में रहती है कहते हैं -

तीज परब सौतिनु सजे भूषनु बसन सरीर ।
सबै मरगजे-मुंह करी इन्हीं मरगजै चीर ।। (बि.र.३७२)

इन कवियों पर कालिदास की उपमानों का प्रभाव पड़ा है । कालिदास ने इन्दुमती को "संचारिणी दीपशिखा" के रूप में देखा है । यह विशेषण

१- गाथासप्तशती , ५ - ४४

२- गाथासप्तशती , १ - ७९

३- संस्कृत सुकवि समीक्षा - बलदेव उपाध्याय पृ० ७८

शारीरिक लावण्य का द्योतक है । इसका प्रभाव गोस्वामी तुलसी दास पर भी पड़ा । दीप सिखा सम जुबती तन, मन जनि होसि पतंग पर इस में भाव में भेद है । गोस्वामी जी युवती से बचने का उपदेश देते हैं, इसके विपरीत अन्य कवि नारी के सौंदर्य का चित्रण करते हैं । इसी को बिहारी ने कहा है नायिका दीपसिखा के समान है जो रात्रि में नीले वस्त्र में छिप नहीं सकती[1] । इसी तरह -

अंग अंग नग जगमगत दीप सिखा सी देह । ([illegible])

कालिदास ने एक नायिका का चित्र खींचा है "झरोखे की ओर जाती हुई किसी रमणी के हाथ थामे हुए भी उस केश पाश को बाँधने की परवाह नहीं की, जिस के खुल जाने से उस में गूँथी हुई मालायें गिर रही हैं[2] । इसी से प्रभावित होकर बिहारी ने लिखा है -

'छटपटाति सी ससिमुखी मुख घूँघट पट ढाँकि ।
पावक झर सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि । (बि.र.५८६)

आर्यासप्तशती का प्रभाव रूप वर्णन पर पड़ा है -

चिकुर विसारणतिर्यङ्‌नत कंठी विमुख वृत्तिरपि बाला
त्वमियं अंगुलि कल्पितकचावकाशा विलोकयति[3] ।

अर्थात् केश प्रसाधन में लगी हुई, तिरछी और झुकी हुई ग्रीवा किए हुए पीठ फेरे बैठी हुई नायिका अंगुलियों से बालों के मध्य में जगह बनाकर तुम्हें देख रही है । बिहारी ने भी ऐसा कहा है -

---

१- बिहारी सतसई - २०७ पृ. ७६
२- संस्कृत साहित्य का इतिहास कीथ पृ० १२८
३- आर्यासप्तशती २३१ -

कंजनयनि मज्जनु किए बैठी ब्योरति बार ।

कच अँगुरिनु बिच दीठि दै, चितवति नन्दकुमार । (बि. ५८२)

आर्यासप्तशती से मतिराम भी कहीं कहीं प्रभावित दिखाई देते हैं । एक आर्या का भाव है -

परमोह नाम कुरुतो निष्करुणे सर्वथ तव कटाक्षोयम्

विशिख इव कलित कर्णः प्रविशति हृदयं न निःसरति[1] ।

मतिराम ने लिखा है -

बालक बलित औरे कायर कलित, 'मतिराम' वे ललित अति पानिपधरनु हैं[2]

सरस सरस सो हैं सलज सहास, सरस सविलास हैं सुगीन निदरत हैं

बरुनी सघन अंक तीछन कटाछ बड़े, लोचन रसाल उर पीर की करत हैं

गाढ़े ह्वै गड़े हैं न निकारे निकरत, मैन-बान से निहारे न निहारे निहरत हैं

संस्कृत की सूक्तियों का प्रभाव जब तब इन कवियों पर दिखाई देता है । नवोढा का जैसा चित्रण मिलता है वैसे हिन्दी में भी पाया जाता है । जब बचपन बीत गया, और तरुणाई ने आने का विचार किया, भोलापन चला गया और चतुराई ने उसे गले लगाया उस बालापन और यौवन की संधि की अवस्था के समय कामदेव का वह धर्म कोई नहीं समझ सका, जिस के कारण वह कमल के समान नेत्र वाली नायिका का शरीर संसार को जीतने लगा[3] । इसी को बिहारी ने कहा है छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग[4]।

१- आर्यासप्तशती पद्य - ३५५
२- मतिराम ग्रंथावली पद सं. पृ. ४०७/ ३५५
३- संस्कृत सूक्ति सागर ९ । १०३

४- बिहारी सतसई आदि. पृ. ६६

संयोग वर्णन - गाथासप्तशती का इस वर्णन पर भी प्रभाव हुआ है । बिहारी ने गाथा से प्रभावित होकर ही कहा है -

छिनकु उघारत छिन छुवत राखत छिनक छिपाय ।

सब दिन पिय खंडित अधर दरपन देखत जाय । (बि. र. ५५५)

गाथा में नायिका का वर्णन है -

पुसई खर्व धुवई ऊणं नकुप्पेइ तम्मणं आ आणंति

मुद्धयवहू अवन्हे दिण्णं दड्पण जहखवंजा[१] ।

अमरुकशतक से प्रभावित होकर बिहारी ने लिखा है -

मैं मिसहा सोयो समुझि, मुँह चूम्यो ढिग जाय ।

हँस्यो, खिसानी, गर गह्यो रही गरे लपटाय ।। (बि. र. ५५२)

अमरुक ने लिखा है : इन्होंने भावों को थोड़ा विस्तार पूर्वक लिखा है -

शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनैः ।

निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम् ।

विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं ।

लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता[२] ।

इन कवियों के मान-वर्णन पर भी प्रभाव पड़ा है । अमरुक की नायिका मान विधि सिखाती है नायिका कहती है धीरे कहो, क्यों कि हमारे प्राणपति कहीं सुन न लें । इसी भाव को बिहारी ने कहा है कि नायिका को सखी मान विधि सिखाती है नायिका उस को इशारे से मना करती है कि हमारे हृदय में बिहारीलाल बसे हैं, कहीं सुन न लें ।

१- गाथासप्तशती - ५ - ११

२- अमरुक शतक - ६९ पृ. सं. १४० मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

<u>वियोग श्रृंगार</u> - वियोग जनित दुख के कारण नायिका श्रृंगार आदि प्रसाधनों से अलग है । पति के जाने से वह बालों को सुलझाने लगी थी पर श्रृंगार भी अधूरा ही हो पाया कि प्रियतम फिर से जाने की तैयारी करने लगा[1] । गाथासप्तशती की नायिका चतुर है, वह अपना विरह सह कर दर्शाती है ।बिहारी ने भी इसी भाव को लिया है -

कर्यौ न आप सहज रंग विरह दूबरे गात ।

अबहीं कहा चलाइयत ललन चलन की बात । (बि.स. २०२)

बिहारी ने कहीं कहीं गाथा के भावों को विपरीत ढंग से प्रयोग किया है । गाथा में कहा है "फाग खेलते समय नायिका ने मुट्ठी में गुलाल लेकर ज्यों ही यह सोचा कि प्रियतम के मुख पर लगाए त्यों ही (स्वेद के कारण) वह सुगन्धित द्रव्य के रूप में परिणत हो गया[2]"। इसी को बिहारी ने दूसरे भाव में लिया 'दूती' ने ज्यों ही नायक के द्वारा भेजा हुआ पिष्टातक वियोगिनी नायिका के हाथ में दिया त्यों ही तापाधिक्य के कारण उस का जलांश उस से जल गया और वह शुष्क होकर अबीर जैसा हो गया । बिहारी ने वियोगिनी के अश्रुओं का वर्णन कालिदास से प्रभावित होकर किया है । कालिदास ने कहा है -

स्थिता: क्षणं पक्ष्मसु ताडिताधरा: पयोधरोत्सेध निपातचूर्णिता,

वलीषु तस्या: स्खलिता प्रपेदिरे चिरेण नाभि प्रथमोदबिन्दव:[3] ।

बिहारी ने इसी का वर्णन करने के लिए वियोगिनी के वक्ष को जलता हुआ तवा बना दिया है जिस पर पड़ते ही आंसू छनछना कर छिप

१- गाथासप्तशती ३।७३, ४ - १२ २- गाथासप्तशती ३।७३, ४ - १२

३- कुमारसंभव सर्ग - ५

जाता है -

पलनु प्रकटि बरनीनु बढ़ि नहिं कपोल ठहरात ।

अंसुवा परि छतियाँ छिनकु छनछनाय छिपि जात ।। (बि. स. ५५८)

'छनछना कर जलने' की कल्पना अमरूशतक से प्रभावित होकर लिखी ।

कहा है 'दीन दृष्टि से मेरी बाट जोहती हुई प्रियतमा के विरहानल की महान

लपटों से तप्त, पाण्डुर कुचतट वाले हृदय पर बाष्पकण छन छन की ध्वनि करते हुए

गिरते होंगे'। नैषधीय चरित के वर्णनों से भी प्रभावित दिखते हैं । कहा है -

दहनजा न पृथुर्दवथुर्व्यथा विरहजैव पृथुर्यदि नेदृशम् ।

दहनमाशु विशन्ति कथं स्त्रियः प्रियमपासुमुपासितुमुद्धुराः[1] ।

अर्थात् अग्नि के जलने से उत्पन्न व्यथा इतनी असह्य नहीं होती

जितनी वियोग में जलने की, अन्यथा प्रिय के निधन पर स्त्रियाँ अग्नि में क्यों

जलतीं । बिहारी ने इसी भाव को कहा है -

मरनु भली बरु बिरह तै यह निश्चय करि जोय[2] ।

सूक्तियों का प्रभाव इन सभी कवियों पर पड़ा है । एक सूक्ति

में विरह वर्णन है उस मूर्छित वियोगिनी को ठंडक पहुंचाने के लिए सखियाँ जब कमल

के पत्ते डुलाती हैं तो उसका शरीर खिलने लगता है और उसके शरीर से लगकर

कमलों का बिछौना सूख जाता है । ____ है विरह में उष्णता का वर्णन तो सभी

ने किया है पर गंग ने प्रतीत होता है इसी से प्रभावित होकर वर्णन किया है ।

1- नैषधीय चरित सर्ग ४

2- बिहारी सतसई पद्य १४८ पृ. ७२

3- संस्कृत सूक्तिसागर १३।३१५

बैठी ही सखिन संग पिय को गवन सुन्यो
सुख के समूह में वियोग आग भरकी ।
गंग कहै त्रिविध सुगंध लै पवन बह्यो
लागत ही ताके तन भई बिथा जुरकी ।
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर
यहै लागत कि औरै गति भई मानसरकी ।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो
जल जरि गयो पंक सूख्यो भूमि दरकी[1] ।

<u>विरह सन्देश</u> - गाथासप्तशती का प्रभाव इस पर भी है कहा है वाणी से क्या कहा जाए और लेख में कितना लिखा जा सकता है । तुम्हारे दुख में जितना दुख है वह तुम ही जानते हो[2] । बिहारी ने कहा है -

कागद पर लिखत न बनै कहत सन्देश लजात ।
कहिहै सब तेरो हियो मेरे हिय की बात । (बि.र. ५०)

बिल्हण के एक श्लोक से प्रभावित होकर बिहारी ने नायिका की कृशता का वर्णन किया है । बिल्हण ने कहा है तुम्हारे वियोग में उस मृगनयनी की शरीर लतिका इतनी कृश हो गई है घर के खंभे से टकराकर लौटी हुई श्वास वायु से भी काँपने लगती है । बिहारी ने इसी को कहा है -

इति आवति चलि जाति उत चली छ सातक हाथ ।
चढ़ी हिंडोरै से रहै, लगी उसासनु साथ ।(बि.र. ३४

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग गंग पद सं० पृ० ५९।४२७

२- गाथासप्तशती - ६ / ७१

<u>वियोग में प्रकृति वर्णन</u> - कालिदास के ऋतुसंहार का इन कवियों पर प्रभाव पड़ा । उद्दीपन रूप में प्रकृति का वर्णन संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में ऋतुसंहार की ही देन है । सूक्तियों में भी इसका संकलन है । उस का प्रभाव इन कवियों पर पड़ा है । वसंत में सारे पहाड़ और बन को लाल लाल बना देने वाली, वियोगिनी को निरन्तर तपाने वाली और खिले हुए टेसुओं से लदी पलास की डालियाँ आग ऐसी लग रही हैं[१] । बिहारी की वियोगिनी के वे फूल दावाग्नि जैसे प्रतीत होते हैं। अतएव वे अपने घर को भागे जा रहे हैं केवल प्रवासी ही नहीं घरों की नायिका भी पलाश को अग्नि समझ रही है[२]। कहते हैं -

दिसि कुसुमित देखियत उपवन विपिन समाज ।

मनहुं वियोगिन को कियो सर पिंजर ऋतुराज[३]।

वर्षा ऋतु के वर्णन से प्रभावित हैं नैषधचरित में कहा है 'पिकेन रोषारुण- चक्षुषा मुहुः कुहूरुताहुमत चन्द्र वैरिणी[४]। बिहारी ने इसी को कहा है -

बन-बाटुन पिक बट-परा लखि बिरहिनु मत मैन ।

कुहौ कुहौ कहि कहि उठै, करि करि राते नैन[५]।

जुगनुओं के प्रसंग में सूक्तियों में एक सूक्ति है उदयाचल की चट्टान पर बादल रूपी लोहे के घन से जो यह तपे हुए लोहे के समान लाल सूर्य पीटा

१- संस्कृत सूक्तिसागर पद सं० पृ० सं० ८। २३३

२-३ बिहारी सतसई - ५९६/१०८, ४०६/८०

४- नैषधचरित १ - १००

५- बिहारी सतसई - ४७१/८

गया, उसी की उड़ी हुई चिन्गारियां जुगनू बन कर चमक रही हैं । बिहारी ने इसी को कहा है -

बिरह जरी लखि जीगनुनु, कह्यौ न उहि कै बार ।
अरी , आउ भजि भीतरी, बरसत आजु अंगार ।

नीति-परक मुक्तक पर प्रभाव - वेदों से ही नीति की परम्परा आ रही है पर समाज के साथ साथ उस रूप में बड़ा परिवर्तन हो गया । जो तथ्य संस्कृत काल में मान्य थे वे समय के परिवर्तन के कारण अमान्य हो गये । नीति के मौलिक तत्वों में तो परिवर्तन नहीं हुआ पर सामाजिक, तथा वैयक्तिक नीति अपभ्रंश काल तक आते आते बदल गई । कवियों का पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित होना स्वाभाविक ही है। इस से सन्त काव्य जितना अपभ्रंश साहित्य से प्रभावित हुआ, उतना संस्कृत काव्य से नहीं । समय के अनुसार मानव की मनोवृत्ति बदल गई । अपभ्रंश साहित्य में व्यक्ति की परिस्थितियां बदल गई थीं, वही परिस्थितियां सन्त काव्य के समय में भी थीं इसी से सन्त काव्य अपभ्रंश का ऋणी है । शृंगार काव्य के समय की परिस्थितियां संस्कृत काव्य के समय की थीं । दरबार की प्रथा एक समान दोनों की है इसी से संस्कृत काव्य का ऋणी शृंगार साहित्य है ।

नीति-परक ~~सन्त~~ मुक्तक साहित्य पर प्रभाव - वैयक्तिक नीति में कबीर अपभ्रंश से प्रभावित हैं । आध्यात्मिक नीति में सरहपा ने लिखा है -

जहि मण पवण ण संचरई, रविससि नाह पवेस
तहि बढ़ चित्त बिसाम करु, सरहें कहिअ उवेस[1]

1- सरहपा - हिंदी काव्य धारा पद सं. पृ.सं. २५२ ।

इसी से प्रभावित होकर कबीर कहते हैं -

जिहि बन सीह न संचरै, पंषि उड़ै नहिं जाय ।
रैनि दिवस का गम नहीं, तहं कबीर रहा ल्यौलाय[1]।

अपभ्रंश के कवियों ने वेद पुराण को मान्यता नहीं दी है, तीव्र तथा कटु आलोचना की है । कबीर भी उस से प्रभावित हैं । पाहुड़ दोहा में कहा है -

मुंडिय मुंडिय मुंडिया। सिर मुंडिउ चित्तु न मुंडिया ।
चित्तहं मुंडणु जिं कियउ। संसारहं खंडणु तिं कियउ[2] ।

इसी को कबीर कहते हैं -

केसन कहा बिगारिया जो मूंडो सौ बार ।
मन को क्यों नहिं मूंडिये जामे विषै विकार[3]।

पाहुड़ दोहा में कहा है -

बहुयइं पढियइं मूढ पर तालू सुक्कइ जेण ।
एक्कु जि अक्खरु तं पढहु सिव पुरि गम्मइ जेण[4] ।

कबीर ने कहा है -

पढ़ि पढ़ि के सब जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
एकौ आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय[5] ।

१- कबीर ग्रंथावली पद सं० पृ० सं० - १।१८
२- पाहुड़ दोहा - डा० रामसिंह - संत ... पद सं. पृ.सं: २२, २३
३- कबीर ग्रंथावली पद सं० पृ० सं० १२।४५
४- संत ... - डा० रामसिंह पद सं० पृ० सं० १५।२१

कहीं कहीं मनुस्मृति से भी कवि प्रभावित हो गए हैं । मनुस्मृति में लिखा है, गृहस्थ घर में चूल्हा, चक्की, बुहारी, उलूखल, मूसल, और जलघट ये पांच पदार्थ ऐसे होते हैं जिनसे कीट पतंगों की हत्या होती है[1] । रज्जब कवि ने प्रभावित होकर लिखा है -

चींटी कुछ चौके में मारैं, कुछ दब हांडी मांही ।
जाकी चूल्है जीव मारै जो, सो समुझै कछु नाहीं[2]।

गोरखबानी में मूर्तिपूजा का खंडन किया गया है। कहा है

पाते ब्रह्मा, कली विसना, फल भये स्वयं देवा ।
तीनि देव का छेद किया, तुम्हें करहु कौन की सेवा[3] ।

कबीर आदि सन्तों ने भी इसी से प्रभावित होकर मूर्तिपूजा का खंडन किया है -

पाहन को क्या पूजिये, जो नहिं देइ जवाब ।
अन्धा नर आशा मुखी, यों ही खोइ सराब[4] ।

सावयधम्म दोहा में जीव हिन्सा को घोर पाप तथा जीव दया को महत्तम पुण्य माना है[5] । कबीर ने कहा है -

---

1- मनुस्मृति चौखम्बा संस्कृत सीरीज बनारस - १९३५ । अध्याय ३।६८
2- रज्जब सन्त सुधासार खंड ४ पृ० ५१४
3- गोरखबानी १६२।१
4- सन्तबानी संग्रह पद सं० पृ० सं० ४।६५ कबीर साखी
5- सावयधम्म दोहा ६० हि० का० धा० पृ० १६८ पर उद्धृत।

दया कौन पर कीजिए, कापर निर्दय होय ।

साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय[1] ।

<u>सामाजिक</u>-रामचरितमानस दोहा में ग्रंथ के आरम्भ में ही निंदक का स्मरण किया गया है -

सुजनु सुहृदयउ होउ जगि सुजनु पयसिउ बेन ।

अमिउ सिरैं आपहु ।बिष जिम परगउ कबीस[2] ।

कबीर ने इसी से कहा है कि निन्दक को निकट ही राखिए क्यों कि वह बिना साबुन पानी के ही मन का मैल साफ कर देता है । सज्जनों की प्रशंसा गाई गई है । यह तथ्य अपरिवर्तनशील है अतः संस्कृत साहित्य का प्रभाव कबीर पर है । कहते हैं कुसंगति के दोष से सज्जनों में विकार नहीं उत्पन्न होता, जैसे बड़े बड़े सर्पों से आवेष्टित चन्दन का वृक्ष विषैला नहीं होता[3] । इसी को कबीर ने कहा है -

सन्त न छोड़ै सन्तई, कोटिक मिलै असन्त ।

मलय भुवंगहि बेधिया सीतलता न तजन्त[4] ।

संस्कृत में कवियों ने कहा है । बुद्धिमान मनुष्य को दुर्जन से न मैत्री करनी चाहिए न बैर । कुत्ता चाहे चाटे और चाहे काटे, दोनों प्रकार से अपकार ही करता है[5] । कबीर ने इसी को इन शब्दों में कहा है -

---

१- सन्तबानी संग्रह पद सं० पृ० सं० २।५५

२- रामचरितमानस दोहा - ५

३- शार्ङ्गधर सुभाषित रत्नाकार - ११।३

४- कबीर वचनावली - १२३।३३८

५- सुभाषित रत्नभंडागार पृ० ५४ ।९८

मान बड़ाई जगत में कूकर की पहिचान ।
मीत किए मुख चाटही, बैर किए तन हानि[1] ।

निर्गुण धारा में श्री बैजनाथ जी का कथन है कि कबीर को हम गोरखनाथ का संशोधित और परिवर्धित संस्करण कह सकते हैं[2]।

<u>सगुण भक्ति साहित्य पर प्रभाव</u> - गोस्वामी तुलसीदास जी भक्ति साहित्य के प्रवर्तक हैं । इन का ज्ञान उच्च कोटि का था इस से इन पर संस्कृत साहित्य का पूर्णतया प्रभाव पड़ा है । संस्कृत साहित्य में सामाजिक तथा राजनैतिक नीति का प्रस्फुटन अधिक हुआ है ।पुराण में स्त्रियों की प्रशंसा की है पर स्वभाव से निन्दा भी की है । कहते हैं कि मुख मंडल शरद् ऋतु के कमल के समान प्रफुल्लित होता है । उन की वाणी कानों के लिए अमृत तुल्य होती है । परन्तु हृदय छुरे की धार के समान कटीला होता है । उनकी चेष्टाओं को कौन जान सकता है[3]। गोस्वामी जी ने भी इसी भाव को लिया है -

दीपशिखा सम जुवती तन मन जनि होसि पतंग ।
भजहिं राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग[4] ।

सुभाषित में कहा है मृग, गौ, घोड़ा, मूर्ख और विद्वान सभी अपने वर्ग के व्यक्तियों से प्रेम करते हैं । सत्य है मैत्री उन्हीं में होती है जिनके शील व्यसन आदि सदृश होते हैं[5]।

१- कबीर वचनावली पृ० - १३० ।५१४

२- निर्गुणधारा - बैजनाथ विश्वनाथ पृ० ४३

३- भागवत पुराण ६।१८।४१

४- तुलसी दोहावली पद सं० पृ० २६९।९३

५- सुभाषितरत्नभाण्डागार पृ० ५७१।८६

गोस्वामी जी ने इसी को दूसरे भाव में लिखा है -

कै लघु कै बड़ मीत भल सम सनेह दुख सोय ।

तुलसी ज्यों घृत मधुसरिस, मिले महाविष होय[1] ।

संस्कृत के सभी काव्यों का गोस्वामी जी ने अध्ययन किया था इसी से सभी काव्यों से कुछ न कुछ लिया है ।

माघ कवि ने लिखा है -

तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेणयत् ।

हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुट फलम्[2] ।

अर्थात् सूर्य और चन्द्र ने समान अपराध किया परन्तु राहु सूर्य को तो देर से हड़पता है चन्द्रमा को शीघ्र ही । इसी भाव से प्रभावित होकर गोस्वामी जी ने इसे और विस्तृत किया है -

टेढ़ जानि शंका सब काहू ।

बक्र चन्द्रमहि ग्रसहि न राहू[3] ।

सबै सहायक सबल के निबल न कोऊ सहाय ।

पवन जगावत पावकहिं, दीपक देहु बुझाय[4]।

नीति शतक से प्रभावित होकर रहीम ने दुर्जन निन्दा की है । नीति शतक में लिखा है -

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीति चापि न कारयेत्

उष्णो दहति चाम्गारः शीतः कृष्णायते करम् ।

१- तुलसी दोहावली पृ० ११० ।३२३ २- माघ २।४९ .

३- गोस्वामी तुलसीदास -रामचरितमानस ४- वृंद-सतसई पद सं.प्र.सं. ५६।२५१

इसी से रहीम ने ओछे मनुष्यों का सत्संग अंगार के समान छोड़ने को कहा है[१]। हनुमान्नाटक में एक श्लोक है कि बुरी संगति से कल्याण नहीं होता है ।रावण के समीप सिंधु के रहने के कारण रावण ने सीता हरी थी तब उसको बंधना पड़ा था[२] । रहीम ने इसी भाव को लिया है -

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोच ।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस[३] ।

इसी तरह रहीम ने नीच के प्रसंग से लाभ के स्थान के स्थान पर हानि होती है ऐसा कहा है जैसे घटी जल का अपहरण करती है और झल्लरी को ताड़ना मिलती है । संस्कृत की शार्ङ्गधर का इस पर प्रभाव है -

[illegible]निकटे वासो न कर्तव्यः कदाचन ।
घटी पिबति पानीयं ताड्यते झल्लरी यथा[४] ।

रहीम के काव्य पर अमरुकशतक का प्रभाव है -

उत्तुङ्गेऽपि, चपलेत्यपवादं नैव नूनमिदं कमलायाः
नूनं जलनिधेर्हिंधेयमत्पुराण पुरुषाय ददौ ताम्[५]।

इसी भाव को रहीम ने लिया है कि लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती । विष्णु की वधू होने के कारण इसका चंचल होना स्वाभाविक है[६]।

१- रहीम रत्नावली २६ / २०१   २- हनुमन्नाटक ६, ५७
३- रहीम रत्नावली - १३/ १७७   ४- शार्ङ्गधर पु०र०का० १६७,६३२ पर उद्धृत
५- अमरुक पु० र० भा० ६३-२२ पर उद्धृत

चाणक्य नीति का प्रभाव गोस्वामी तुलसीदास जी पर है जैसी बुद्धि होती है वैसा ही काम होता है । वैसी ही भवितव्यता सहायता करती है[1] ।

तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय ।
आपुन आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय[2] ।

सावयधम्म दोहा में एक जगह कहा है शरीर वही समझो जो व्रतों का भाजन हो, अन्य शरीर से क्या लाभ । वही सिर सिर है जो भक्ति भार से सुशोभित हो । जिन मुनि के आगे नमे । रसखान ने इसी से प्रभावित होकर लिखा है -

बैन वही उनको गुन गाइ, औरु कान वही उन बैन सो सानी[2] ।
हाथ वही उन गात सरै, अरु पाइ वही जु वही अनुजानी ।।

वृन्द कवि ने चाणक्य नीति के भावों की अभिव्यक्ति इस प्रकार उतारी है -

माता शत्रु: पिता वैरी येन बालो न पाठित: ।
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये बको यथा[3] [4] ।।

इसी को वृन्द कहते हैं -

चतुर सभा में कूर नर सोभा पावत नाहिं ।
जैसे बक सोभित नहीं, हंस मंडली माहिं[5] ।

भर्तृहरि का एक श्लोक है जिस में लिखा है एक सर्प पिटारे के नीचे बन्द हो जाने के कारण अत्यन्त निराश और भूख से दुर्बल पड़ा था । रात्रि

१- चाणक्यनीति ६।६

२- तुलसी दोहावली पद सं० ४५० पृ. २८५ - तुलसी रचनावली
३ - नीति [illegible] [illegible]
३- हितोपदेश पृ० - ८।१८ - [illegible]

४- वृन्द सतसई सप्तक पृ० ३०४ ।२३१

को एक चूहा उस पिटारे में छिद्र कर स्वयंएव उस के मुंह में आ पड़ा । चूहे के मांस से तृप्त होकर सांप उसी मार्ग से बाहर निकल गया । हे मनुष्यों सन्तोष पूर्वक बैठे रहो क्योंकि वृद्धि या क्षय का मुख्य कारण दैव ही है[1]। इसीको वृन्द ने कहा है -

दुख-सुख दीबे कौं दई है आतुर इहिं ठाट ।
अहि-करंड मूसा पर्यौ यहि निकस्यो उहि बाट[2] ।

सूक्ति मुक्तावली की अन्योक्तियों का प्रभाव दीनदयाल गिरि की अन्योक्तियों पर पड़ा । उस में कहा है जिसकी किरणों को सभी पर्वतों ने सिर पर धारण किया था उस त्रिलोकी के नेत्र रूप सूर्य के राहुग्रस्त होने पर अन्धकार सितारे, जुगनू, उल्लू आदि स्वच्छन्द विहार करने लगे[3] । दीनदयाल गिरि ने लिखा है -

लीने आभा आपनी है अम्बक आधार ।
होवै दरशन प्रगटि के सम सुख दशौ अपार ।
सम सुख दशौ अपार निशाचर गाजि रहे हैं ।
भूत दीप खद्योत उलूक बिराजि रहे हैं ।
बरनै दीन दयाल कोकनद कोकहु दीने ।
कब सूझै हो हरि उदय सुमै बिन लोक मलीने[4] ।

संस्कृत कवि के सूक्ति का प्रभाव केशवदास जी पर है -

1- शतकत्रयम् - भर्तृहरिशतक पृ० ४१ छपय नं. ८५, दैवप्रशंसा
2- वृन्द सतसई सम्पादक पृ० ३१४।३६१
3- भगवद्दत्त सम्पादन : सूक्ति मुक्तावली बड़ौदा, १९३८ ई० पृ० ६३-मुंज
4- दीनदयाल ग्रंथावली, अन्योक्ति कल्पद्रुम पृ० १९८ ।२०

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
धर्मो न वै यत्र न सत्यमस्ति सत्यं न तद्यच्छलमभ्युपैति[1] ।

अर्थात् वह सभा ही नहीं जिस में वृद्ध न हों, वे वृद्ध ही नहीं जो धर्म का उपदेश न दें, वह धर्म ही नहीं जिस में सत्य न हो और वह सत्य ही नहीं जिस में छल विद्यमान / हो । केशवदास जी ने इसी को कहा है -

सोभति सो न सभा जहं वृद्ध न, वृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं ।
ते न पढ़े जिन साधु न साधित, दीह दया न दिपै जिन माहीं ।
सो न दया जु न धर्म धरै धर, धर्म न सो जहं दान वृथा हीं ।
दान न सो जहं साँच न केशव, साँच न सो जु बसै छल माहीं[2] ।

राजनैतिक - गोस्वामी तुलसीदास जी संस्कृत की पंच-तंत्र से प्रभावित हैं । पंच-तंत्र में राजा को दीपक के समान कहा है -

नृपदीपो धनस्नेहं प्रजाभ्यः संहरन्नपि ।
आन्तरस्थैर्गुणैः शुभ्रैर्लक्ष्यते न च केनचित्[3]

इसी भाव को दोहावली में कहा है नृप को भानु के समान होना चाहिए । जिस प्रकार सूर्य द्वारा किए हुए जलकर्षण की किसी को प्रतीति नहीं होती, किन्तु जब वह वर्षा के रूप में गिरता है तो सब लोग प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार नृप को करना चाहिए[4] इसी तरह पंच-तंत्र में लिखा है राजा माली के समान फल के लिए पौधों का सिंचन करता है, उसी प्रकार नीति निपुण राजा

१- म० भा० उ० ३५।८८४
२- केशवग्रंथावली खंड १ कविप्रिया पृ० ११०।३
३- पंच-तंत्र १ - १९३
४- तुलसी दोहावली ~~---~~ पद सं. पृ. सं. ५०८। ३७१ - तुलसी रचनावली

को कर लेना चाहिए[1] । गोस्वामी जी ने कहा है -

पाली पालु किसान सम, नीति निपुन नरपाल ।

प्रजा भागबस होहिंगे, कबहुं कबहुं कलिकाल[2] ।

नैसर्गिक नीति - गिरधर कविराय संस्कृत कवियों से प्रभावित हैं । एक अज्ञात कवि का कहना है -

दैवं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम् ।

समुद्रमंथनाल्लेभे हरिर्लक्ष्मी हरो विषम्[3] ।

गिरधर कविराय का कहना है -

भाग्य सर्वत्र फलत है, न च विद्या पौरुष सकल ।

हरि हर मिल सागर मथ्यो, हरको मिल्यो गरल।

संस्कृत के माघ कवि का प्रभाव वृन्द पर पड़ा है । मिट्टी को भी पांव से ठुकराओ तो सिर पर सवार हो जाती है । अपमान को चुपचाप सह लेने वाले से तो मिट्टी ही श्रेष्ठ है[5] । वृन्द ने कहा है -

हीन जानि न विरोधिये, वह तो सम दुखदाय ।

रजहू ठोकर मारिये, चढ़ै सीस पर आय[6] ।

जनपद में संसार की क्षण - भंगुरता तथा जरा मरण की प्रबल

1- पंचतंत्र १, १९२

2- दोहावली पद्य:५०७ पृ. ३०१ - तुलसी रचनावली

3- सु० र० भा० पृ० ९१।१० - अज्ञात कवि

4- गिरधर कविराय कुंडलियाँ पृ० ३९ । १०५

5- शिशुपाल वध, सर्ग २।४६

6- सतसई सप्तक वृन्द सतसई पृ० ३२१।५९१

दिखाते हुए अत्यन्त पुण्योपार्जन की प्रेरणा इस प्रकार की गई है जो इस लोक को बुलबुले और मृग मरीचिका के समान समझता है, उसे यमराज नहीं देख पाते[१] । रहीम इसी से प्रभावित होकर कहते हैं -

कागद को सो पूतरा, सहजहिं में घुलि जाय ।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खैंचत बाय[२] ।

दैव चन्द्र को भी खंडित कर देता है, सूर्य को भी अस्त कर देता है । हा ऐसा कौन है जो दैव के प्रभाव के कारण काल-कवलित नहीं हो जाता[३] । रहीम ने कहा है -

निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भावि के हाथ ।
पांसे अपने हाथ में, दांव न अपने हाथ[४] ।

अपभ्रंश काव्य से भी ये कवि प्रभावित हुए हैं 'जिमड़ा संकुडि सिरिय जिम, ईदिम पसरु निहारि । जिहिउ पुज्जइ पंगुरण, तिहिउ पाउ पसारि[५] ।

अपनी पहुंच बिचारि कै, करतब करिये दौर ।
तेते पांव पसारिये, जेती लम्बी सौर[६] ।

१- धम्मपद लोक दसवों गाथा ४
२- रहीम कवितावली पद्य सं. पृ.सं. ३९।४
३- सूक्तिसरोज पृ० १९९।१२
४- रहिमन विलास स० अमररत्नागार प्रयाग १९८७ पृ० १२। ११६
५- हि० का० धा० पृ० ४१०।१११ - सोमप्रभ
६- सतसई सप्तक वृन्द सतसई पृ० २२८।१९

पल्लाइंमि सहंति गुण, जइं संगुण सोहिं ।
महसामड़ लोहइं मिलिउ, ते पिट्टियइ घणेहिं[1] ।

नीच संग ते सुजन की मानि हानि ह्वै जाइ ।
लोह कुटिल के संग ते, सहै अगिन घन घाय[2] ।

निष्कर्ष यह निकलता है कि वैयक्तिक नीति की दृष्टि से हिन्दी साहित्य कुछ संस्कृत तथा कुछ अपभ्रंश से प्रभावित है । पारिवारिक नीति पाली से प्रभावित है । सामाजिक नीति में जन्म-मूलक भेद भाव का खंडन करने की प्रवृत्ति नाथ-साहित्य में पाई जाती है । समाज में नारी को सन्त साहित्य में निकृष्ट माना है, श्रृंगार काव्य में रूप लावण्य की प्रशंसा की गई है । गुरु को विशेष स्थान प्राप्त हुआ । जीव दया विशेष कर्तव्य अपभ्रंश के प्रभाव से माना । सदुपयोग की प्रेरणा पालि के काव्य से पाई गई है ।

हिन्दी साहित्य पर विचारों के अतिरिक्त छन्दों के रूपों का प्रभाव अधिकतर अपभ्रंश का ही हुआ । संस्कृत में श्लोक, तथा सूक्तियां थीं, प्राकृत में गाथा है पर अपभ्रंश के दोहा के अनुसार सन्त साहित्य तथा रीति-साहित्य तथा नीति साहित्य में दोहा छन्द को अपनाया गया । अपभ्रंश की

१- हिन्दी काव्य धारा पृ० ३४८ जपज. २३३

२- दीन दयाल गिरि ग्रंथावली पृ० ७४।१०

छप्पय पद्धति, कुंडलियाँ तथा सोरठा अपभ्रंश की ही देन है । हिन्दी में 'कहै कबीर' तथा 'कह गिरधर कविराय' आदि कवि के नाम की प्रणाली अपभ्रंश से आई । पूर्ववर्ती काव्यों द्वारा प्रवाहित परम्परा को हिन्दी कवियों ने कहीं भी विशृंखलित नहीं होने दिया । आगे के परिच्छेदों में इसी का विवेचन है ।

अध्याय - ३

उपासनापरक

दोहे की परम्परा -

वैराग्य के दोहे की परम्परा अपभ्रंश से होती हुई नाथ साहित्य और नाथ साहित्य से हिन्दी साहित्य में आई । उत्तर भारत में भक्ति स्रोत को प्रवाहित करने का श्रेय रामानन्द (१५वीं शताब्दी) को मिला। स्वामी रामानन्द और नामदेव दोनों ने इस भाव का सूत्रपात किया इस दृष्टि से नामदेव ने सर्वत्र ईश्वर की विद्यमानता का प्रचार किया था ।

'जल से तरंग तरंग ते है जल कहन सुनन को दूजा'

इस प्रकार सन्तों के निर्गुण पन्थ का बीजारोपण नामदेव ने किया था । सन्त साहित्य के पहले नाथ सम्प्रदाय में अपने को जानना, संसार मिथ्या है आदि बातें प्रस्फुटित थीं । यौगिक क्रियाओं से ब्रह्म की प्राप्ति के साधन होते थे । पर अहं-भाव का पूर्ण रूप से तिरोभाव, निपट दीनता अपने आप को पूर्णतया उस के हाथ सौंप देना स्वामी रामानन्द से ही आया। रामानन्द के एक शिष्य पीपा जी का प्राथमिक सन्तों में एक विशेष स्थान है । इन के अनुसार अपने से बाहर किसी वस्तु को खोजने की आवश्यकता नहीं है, सब कुछ अपने ही अन्दर है । हिन्दी में सन्त साहित्य के प्रवर्तक कबीर माने जाते हैं । सन्त साहित्य में ज्ञान, भक्ति और योग का समन्वय किया है, उस में अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म भक्ति भावना के प्रभाव से व्यक्त सगुण हो गया है । इन सन्तों का लक्ष्य तो वही आत्मा और परमात्मा का तादात्म्य स्थापित करना ही था । कबीर ने ज्ञान, भक्ति और योग का समन्वय करके सहज साधना को लक्ष्य प्राप्ति का साधन बनाया है ।"सहज साधना से प्रवृत्ति बाधक सान्सारिक व्यवहार या पारस्परिक व्यवहार में सहज को ही

दृष्टि में रखता है । संसार में वह 'पद्मपत्रमिवाम्भसः' रहते हुए वाद विवाद तथा तर्क प्रमाण से कोसों दूर रहता और आत्मा विचार करके समदृष्टि को ग्रहण करता है । साधक को विश्व में एक के ज्ञान और समदृष्टि प्राप्त हो जाने के अनन्तर उसे अपने में सहज स्वरूप प्रभु के दर्शन प्राप्त होते हैं ।

कबीर की साधना क्रमानुसार एवं व्यवस्थित है उन्हों ने ज्ञान विचार से जीवन को सफल बनाना आवश्यक समझा -

दीपक जोया ज्ञान का काम जरे ज्यों तेल[1]

ज्ञान बिना बुद्धि के नहीं हो सकता । जो किसी कसौटी पर वस्तु को नहीं कसता वह अज्ञानी है[2]। बुद्धि विकास के साथ ही साथ स्वानुभव भी होना चाहिए । स्वानुभव को परिपक्व करने के लिए गुरु की सहायता अनिवार्य है -

सन्त गुरु तत्व कह्यो विचार, मूल कह्यो अनमै विस्तार[3]

कबीर के विचार से -

'सत गुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार[4]'

लोचन अनन्त उघारिया, अनन्त दिखावन हार ।

दादू भी इसी विचार के हैं कि सद्गुरु शब्दों से चोट करते हैं[5]। सद्गुरु के उपदेश से बिना कुछ कष्ट उठाए हुए मन से मन मिल जाता है[6] ।

१- कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० १२।२९

२- कबीर ग्रंथावली पृ० १४०, पृ०

३- " " २९ - कबीर दर्शन पृ.२५३

४- " " पृ० १

५-६ दादू दयाल जी की बानी पद सं० पृ० सं० २५।३, ७४।८

जगजीवन साहब लिखते हैं कि गुरु के शरण से ही अजपाजप की प्रतीत होजाती है[१]। सद्गुरु ही सुरत की डोर लगाता है । परमात्मा और आत्मा एक ही है यह गुरु ने बताया[२] । दरिया साहब (मा० वाले) का कहना है कि गुरुदेव शब्द के बाणों से भ्रम को काटते हैं[३] । पलटू कहते हैं सद्-गुरु ज्ञान के धनुष से शब्द के बाण चलाते हैं[४]। गोस्वामी तुलसी दास जी इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति करते हैं । 'गुरु बिन होय न ज्ञान, ज्ञान न होय विराग बिन'। डा० त्रिलोकी नाथ का कथन है कि कबीर के अनुसार ज्ञान वही है जो हमारे हृदय और मस्तिष्क, चित्त से भिन्नवृत्तियों, कलुषित भावनाओं और सभी वासनाओं को हटा कर हम में वह ज्योति जागृत कर दे जो ब्रह्म का स्वरूप प्रदर्शित करती है, जो जीवन को माया की परिधि से ऊपर उठा देती है वही ज्ञान ज्ञान है जो आत्म ज्ञान ब्रह्म ज्ञान करा सके[५] ।

ज्ञान का भूषण ध्यान है, ध्यान का भूषण त्याग[६]
त्याग का भूषण शान्तिपद, तुलसी अमल अदाग ।

गोस्वामी तुलसीदास जी के यह वचन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस तथ्य को बताते हैं कि वास्तव में वैराग्य भावना की उत्पत्ति ज्ञान से होती है । पर ज्ञान विचार से ही मन की चंचलता दूर नहीं होती है । इसी से इन

१- व २- जगजीवन साहब की बानी पद सं० पृ० सं० ७।१२७, १६।१२८
३- दरिया साहब (मारवाड़ वाले) की बानी पद सं० पृ० सं० ४।१२
४- संत बानी संग्रह पलटूदास- पद्य. पृ. ८/२२६
५- मलूकदास चरणदास का दार्शनिक दृष्टिकोण - डा० त्रिलोकी नाथ पृ. ४०४
६- गोस्वामी तुलसीदास कृत वैराग्य संदीपनी पद्य पृ. ४४

सन्तों ने योग साधना को अपनाया । मन ज्ञानवान होता हुआ भी अपने स्वभाव से चंचल होने के कारण अवगुणों की ओर उन्मुख होता है, हाथ में प्रकाश लेते हुए भी कुएं में गिर पड़ता है अर्थात् सब कुछ जानता हुआ भी माया में फंस जाता है[१]। जैसे मलूकदास जी कहते हैं कि मन को ज्ञान के द्वारा बांधा जा सकता है[२] । पर मन केन्द्रीभूत होकर विश्व के महान केन्द्र ब्रह्म अथवा आत्मा में संकुचित रहे और सत्य स्वरूप में अवस्थित हो जाय इस विचार से कबीर ने भक्ति की साधना की[३]। जैसे कबीर का कहना है कि योग मार्ग, भक्ति मार्ग के आश्रित है भक्ति के बिना योग मार्ग वृथा है[४] । इसी प्रकार ज्ञान भी भक्ति के बिना निरर्थक है[५] ।

भक्ति साधना में भक्त कबीर ने भगवान के गुणातीत निराकार भाव को ही भक्ति के लिए स्वीकार किया । प्रपत्ति के द्वारा भक्ति साधना की है । प्रपत्ति का अर्थ है आत्म-निवेदन, भक्ति क्षेत्र में प्रपत्ति शब्द का अर्थ शरणागति के लिए प्रयुक्त होता है । प्रपत्ति की भावना ही इन सन्तों की भक्ति भावना के प्राण हैं इस में जाति पाँति बाधक नहीं होती ।

जाति पाति पूछे नहिं कोई, हरि का भजै सो हरि का होई ।

कबीर की भक्ति कृपा साध्य अधिक है क्रिया साध्य कम, जैसे भागवत में तो भक्ति के 9 भेद होते हैं, पर नारद भेद में ११ भेद होते हैं । कबीर की भक्ति पर नारदीय

१- कबीर ग्रंथावली पृ० - २८ पद 56

२- सन्त बानी संग्रह भाग १, मलूकदास २।१०२

३- कबीर दर्शन पृ० - ४०६ - डा० रामजीलाल सहायक

४- कबीर ग्रंथावली पृ० - १८२

५- " " पृ० - २७५,

भक्ति का प्रभाव है । इस से कबीर तथा और संतों की भक्ति साधना में शरणागत भाव, कान्ताभाव, पतिव्रता भाव, नव्योढा भाव, चातक भाव, अनन्याभाव, मधुरा भाव, विशुद्ध प्रतीतभाव, तथा तन्मयता भाव आदि पाए जाते हैं भक्ति के ६ अंग भी होते हैं[1]। वायु पुराण में उल्लेख है श्री उपास्यदेव की इच्छानुकूल संकल्प और व्यवहार करना भगवान के विरुद्ध कर्म का वर्जन करना, भगवान में अटल विश्वास, भगवान को सम्बन्धी समझना और उनके गुणों का वर्णन करना अपने आप को भगवान के आधीन करना, तथा विनय भावना दिखाना, यह आवश्यक अंग है[2]। इन्हीं से शरणागति का भाव उत्पन्न होता है । इन सन्तों की भक्ति निर्गुण भक्ति है । कबीर कहते हैं कि निष्काम भक्ति से जीवन काल में जीवन मुक्ति और शरीर त्यागने पर मुक्ति मिलती है[3]। निर्गुण भक्ति के सम्बन्ध में नारद भक्ति सूत्र में कहा है कि वह वेदों की भी उपेक्षा कर केवल अखंड भगवत प्रेम का ही लाभ उठा लेता है वह स्वयं तर जाता है और लोगों को भी तार देता है[4]। सन्तों की भक्ति नारद भक्ति की तरह है । जीव जीवन मुक्ति तभी पा सकता है जबकि वह अहंकार शून्य हो गया हो, अहंकार शून्य होने के बाद वह शरणागत होता है, शरणागत तभी होगा जब उसे भगवान की सामर्थ्य का पूर्ण विश्वास होगा इसी से गोस्वामी जी का कहना है कि -

जाने बिन न होय प्रतीती, बिन प्रतीति होय नहिं प्रीती ।
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई जिमि खगपति जल के चिकनाई ॥

हरी की शरण लेने के बाद सब तरफ से निश्चिन्त हो जाते हैं । मलूकदास भी कहते

१-२- कबीर दर्शन पृ. ३५५, पृ. ३५२
३- कबीर ग्रंथावली पृ० - पृ० - ३०६
४- नारदभक्ति सूत्र - ४९, ५०

हैं जब से हरि की शरण ली है तब से शान्ति की निद्रा सोते हैं[1] । पल्टू को तीनों लोकों की आशीषें शरणागत होने से मिलीं[2]। पल्टू जैसे मैं राम का वैसे राम हमारे[3] सिर पर उन के भगवान हैं इससे उन्हें कोई चिन्ता नहीं । धरणी दास भी अपने आत्म-अभिमान को खोकर हरि की शरण में रहते हैं[4] ।कबीरदास भी चाहते हैं अनन्यभाव एवं निष्ठा से भगवान का भरोसा करते हुए उन्हें आँखों में बन्द कर लें जिस से वे किसी को न देख सकें और न कोई दूसरा ही भगवान को देख सके[5]। धरणी दास को प्रिय की झलक इतनी सुहाती है कि परम रस पीने पर भी प्यास नहीं जाती है -

धरनी पलक परै नहीं, पी की झलक सोहाय ।
पुनि पुनि पीवत परम रस तबहुं प्यास न जाय[6]।

कबीर भगवत प्रेम में अपने मन बुद्धि अहंकार अन्तरात्मा एवं शरीर को पूर्णतया रंग देते हैं वे पिय को रिझाने का भी उपाय करते हैं -

नैनों की कर कोठरी , पुतली पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय[7]।

धरनीदास जी छवि को देखकर घबरा जाते हैं इस तरह पिय को

१- सन्तबानी संग्रह - मलूकदास पद सं० पृ० सं० २।१००
२-३ पल्टूदास की बानी - पद सं० पृ० सं० १५२।१०२, ३०।४१ बेल्वेडियर प्रेस
४- धरनीदास की बानी पद सं० पृ० सं० ४८।५० बेल्वेडियर प्रेस
५- कबीर ग्रंथावली पृ० - १२५
६- धरनीदास की बानी पद सं० पृ० सं० १।११२ संत बानी संग्रह बेल्वेडियर
७- कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ५०।४१

रिझाना तो बड़ा कठिन है । 'कबहुंक पैर जो डिगमिगि पावै कबहूं न ठांव'[1] पर कबीर अपने चिंतन मनन और श्रवण का एक मात्र लक्ष्य अपने को प्रीतम को अर्पण करना ही मानते हैं, वे अपने शरीर का दिया, जीव की बत्ती बनाकर अपने रक्त के तेल से जलाकर प्रीतम के मुख को देखना चाहते हैं[2]। वे कहते हैं कि मैं तुम्ही को देखूं, तुम्ही को सुनूं, तुम्हारा ही नाम उच्चारण करूं, तुम्हारे ही चरण कमल में मेरा ध्यान रहे । वास्तव में यह अनन्यता उच्चकोटि की है वे यहाँ तक सोचते हैं कि 'मरूं तो तुम सुमरित मरूं, जिऊं तो सुमिरो नित्य'[3]। इसी विशुद्ध प्रीति भाव से निष्काम भाव का प्रादुर्भाव होता है, भक्त आत्म दर्शन में ही तल्लीन होने की इच्छा करता है । यह तन्मयता भाव भक्ति की अन्तिम सीढ़ी है । इस में भक्त के भाव से भेद भाव नष्ट हो जाता है अर्थात् अपने उपास्य में अपने भावों को लीन कर देता है, उस में और हरि में कोई भेद भाव नहीं रहता है, फिर इस में कोई कामना भी नहीं रहती है, भक्ति करना उसका स्वभाव बन जाता है, वह निष्काम भाव से सेवा करता है -

भक्ति के पांच साधन माने जाते हैं :-

१- आत्म समर्पण

२- गुरु देव की सेवा

३- भगवान की कृपा

४- नाम जप

५- कीर्तनादि सत्संगति

१- धरनीदास की बानी पद सं० पृ० सं० ११।५४

२-३ कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० १५।३९, ७९।४४

सन्तों की साधना में नाम जप स्मरण तथा कीर्तन का ही मुख्य स्थान है, सुमिरन को ही भक्ति और धर्म का सार समझा है । इसी से भगवत् नाम का महात्म सब ने गाया है । कबीर ने राम नाम को अतुल- मूल्य माना है नाम अग्नि के समान है सब जीवों में व्याप्त है । नाम कसौटी है जो इस कसौटी पर खरा उतरता है वह जीता ही मर जाता है[१]। जीता ही तभी मर सकता है जब संसार से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता है जब वह नाम के सुमिरन में इतना व्यस्त होगा कि संसार के प्रति न तो उसे राग होगा न द्वेष, तो वह जीवन मृत के समान ही होगा । नाम की कसौटी ही सभी की वास्तविकता को निर्धारित करती है । राम का नाम सर्वव्यापी है उसका भेद अगम्य है, वह सर्वातीत है, सर्वान्तरात्माओं का साक्षी है उसका स्मरण करना चाहिए[२]। नाम जप से ही मन विकार शून्य होता है इसी से यह सभी साधनाओं में परम उत्कृष्ट और उत्तम माना जाता है[३]। इसी से साधक और साध्य का भेद लुप्त होता है सन्तों के नाम को पारस की संज्ञा भी दी है पारस वह पदार्थ है जिस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है । कबीर कहते हैं -

आदि नाम पारस अहै मन है मैला लोह[४]
परसत ही कंचन भया छूटा बन्धन मोह ।

इन्हीं विचारों को भी दादू जी ने भी व्यक्त किया है जीव

१- कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ५२।४२
२- कबीर ग्रंथावली पृ० १६२ पृ. ५
३- " " " ५ पदा.२
४- कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं०१।८९

बन्धन में बंधा हुआ है, यम जाल से छूटना कठिन है केवल नाम से ही फन्दों को काटा जा सकता है[१]। राम नाम औषधि है जिस से सब विकार कट जाते हैं नाम के स्मरण से ही विषय व्याधि से उबर सकता है[२] ।

नाम लिया तब जानिये जे तन मन रहे समाइ[३]
आदि अन्त मध्य एक रस कबहुं भूलि न जाइ ।

नाम स्मरण में भक्त इतना तल्लीन हो जाता है कि उस के कर्म भावना रहित हो जाते हैं इस से प्रारब्ध कर्म नहीं बन पाते । सुन्दरदास कहते हैं कि राम का नाम मिश्री के समान है जिस से सभी रोग दूर हो जाते हैं[४]। नाम जप को समस्त धर्मों में श्रेष्ठ माना है ।

नाम बराबर तोलिये तुलि न कोई धर्म[५]

नाम रूपी पारस के स्पर्श से काया स्वर्णवत् हो जाती है जिस के हृदय में राम है उसके सामने सभी झुकते हैं[६] । सब सन्तों ने मिलकर सार वस्तु नाम ग्रहण कर लिया है[७] । माया मोह छोड़कर राम भजन करने का विचार भला लगता है । पारस के बिना लोहा छिन छिन क्षीण हो जाता है जिस से पारस का पाना

१- दादू जी की बानी पद सं० पृ० सं० ~~११।५५~~ १२४/१२
२- " " ७०।२३
३- " " ~~१२४।१३~~ ८१/२५
४- सुन्दरदास की बानी साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ४।१०८
५- " " " १३/८०६ सुंदर ग्रंथावली सं. पुरोहित नारायण शर्मा
६- " " " ५।१०८
७- " " " ६।१०८

आवश्यक है[१] । धरणी दास के विचार से संसार रूपी वन को छोड़ने के लिए राम नाम की ओट आवश्यक है[२]। जीवन में सुख तो है ही नहीं विपत्तियां आती रहती हैं, व्याकुल जीव के लिए नाम का ही केवल सहारा है । पल्टू साहब को जड़ी बूटी खोजते खोजते नाम रूपी पारस मिल गया । तब से निश्चिन्त हो गए[३]। जगजीवन साहब सब तरह की गफलत छोड़कर नाम की ही आशा करने को कहते हैं[४]। इस संसार में तो किसी को रहना ही नहीं अन्त काल में दुख मिलना है इस से नाम से ही प्रीत करे उसी में भला है[५] । भीखा साहब का विचार है कि सब जीवों में नाम का धागा पिरोया हुआ है पर कोई सन्त जन ही इस को फेर पाते हैं[६] । चरण दास ने सब धर्मों में नाम को ही शिरोमणि माना है[७]। मलूकदास जी को अपने जी से ज्यादा प्रिय राम लगते हैं और किसी से उन्हें कोई काम नहीं[८] । हरि की शरण लेने के बाद वे आराम से सोते हैं । दास मलूका कह गए 'सब के दाता राम'। इन के विचार से एक रत्ती राम नाम करोड़ों पापों को नष्ट कर देता है[९]।

१- सुन्दर दास की बानी साखी संग्रह सब सं० पृ० सं० ९।१०८
२- धरनीदास की बानी पद सं० पृ० सं० ४७।५७
३- पल्टू साहब की बानी पद सं० पृ० सं० ९।८९
४- जगजीवन साहब की बानी पद सं० पृ० सं० १।१२७
५- " " " " ६।१२७
६- भीखा साहिब की बानी पद सं० पृ० सं० १।१४४
७- सन्त बानी संग्रह चरनदास पद सं० पृ० सं० १।१४४
८- मलूकदास की बानी पद सं० पृ० सं० १०।३३
९- " " " १६।३३

सहजो बाई पारस रूपी नाम को अमूल्य समझती हैं वह धनवान के ही घर होता है कंगाल को उस की पहचान नहीं होती है[१]। उन्हें भवसागर में बहते हुए नाम रूपी जहाज मिल गया[२]। दरिया साहिब (बिहार वाले) का कहना है कि नाम के बिना मनुष्य यम के हाथ में बिक जाता है नाम की पूंजी से कभी हानि नहीं होती[३] । दरिया साहब (मारवाड़ वाले) का दृष्टिकोण है कि पूर्ण ब्रह्म का नाम निर्मल है केवल कहने सुनने से कुछ नहीं होता, निरन्तर स्मरण से ही स्वाद आता है और उस का लाभ भी होता है केवल कथनी निरर्थक है[४] । राम के सुमिरण से समस्त भ्रमों का नाश होता है जिस तरह सूर्य निकलने से सारे तारों की ज्योति नष्ट हो जाती है[५] । नाम रूपी पारस जीव रूपी लोहे को सोना बना देता है[६]। नाम स्मरण से काम, क्रोध, लोभ, मोह, दुर्गुण नष्ट हो जाते हैं क्योंकि जब जीव निरन्तर स्मरण करने में ही व्यस्त रहेगा तो इन भावनाओं के लिए अवकाश ही नहीं मिलेगा[७]। जीभ से नाम स्मरण तथा मन से सुमिरण करने से लाभ हो सकेगा । नाम स्मरण करने से जीव निश्चिन्त हो जाता है[८]। गुलाल साहब

१- सहजो बाई की बानी पद सं० पृ० सं० १।५५

२- " " " ३।१५५

३- सं० बा० सं० दरिया साहिब (बिहार वाले) पद सं० पृ० सं० २।१४२

४- सं० बा० सं० दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) पद सं० पृ० सं० २।१२८

५- दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी पद सं० पृ० सं० ४।६

६- " " " ३१।९

७- " " " ३।६

८- " " " ३५।९

का विचार है कि ब्रह्म की ज्योति सदैव सुमिरन से ही चमकती है[१] । बुल्ला साहब संसार में आकर नाम स्मरण करने को कहते हैं । शरीर तथा घर को ध्यान देने के पक्ष में नहीं हैं[२]। यारी साहब बताते हैं कि ज्योति स्वरूप आत्मा सब के शरीरों में व्याप्त है वही मन को आनन्द देने वाली है[३]। दूलनदास का विचार है कि जिस की चितवन ऊंची है अर्थात् ब्रह्म के दर्शन कर रहा है, मन नीचा है अर्थात् आत्माभिमान नष्ट हो गया है तथा नाम में ध्यान लगा है उसे परम पद दिखाई देता है तथा अंधकार मिट जाता है[४]। नाम के स्नेह से आठों पहर आनन्दित रहता है नाम को पारस मणि माना है । राम नाम दीपक की लौ है, जिस में सांसारिक कर्म पतंगे के समान जल जाते हैं । इसी से मन में विश्वास दृढ़ होता है[५]। गरीब दास ने नाम को पारस और जीव को लोहा समझा[६]। तन मन छोड़ कर सुमरन करने से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है । तुलसी साहिब का कहना है कि ब्रह्म का निरन्तर स्मरण करने से आत्म रूप दिखाई देता है[७] । गोस्वामी तुलसी दास जी का विचार है -

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरीं द्वार
तुलसी भीतर बाहरेहुं, जौ चाहसि उजियार

१- सन्तबानी संग्रह - गुलाल साहिब पद सं० पृ० सं० १६।२१०
२- " " - बुल्ला साहिब " १।१४०
३- " " - यारी साहिब " १।१२०
४- " " - दूलन दास " ७।१३४
५- " " " " ८।१३५
६- " " - गरीब दास " १।१८४
७- " " " " ४।१८६
८- गोस्वामी तुलसीदास जी रचित दोहावली - अनु. हनुमानप्रसाद पोद्दार पद सं. पृ. सं. ६।१५

इन सन्तों के स्मरण में एक विशेषता भी है, इन का कहना है कि ऐसी अमूल्य वस्तु का प्रयोग शान्ति-पूर्वक करना चाहिए । कबीर कहते हैं कि -

नाम न रटा तो क्या हुआ जो अन्तर है हेत
पतिव्रता पति को भजै मुख सो नाम न लेय[1]।

सुन्दरदास का दृष्टिकोण है कि राम नाम की वस्तु किसी को दिखलाइए नहीं तथा जैसे अपने धन को छिपा कर रखा जाता है वैसे ही छिपा कर मन में सुमिरन कीजिए[2]। राम का भजन परिश्रम बिना ही करे, मन में केवल प्रीति हो, न तो हाथ से माला, न जीभ से नाम, पर मन निरन्तर सुमिरन किया करे[3] । मलूक दास भी प्रेम को गोपनीय रखने में ही उसकी पवित्रता एवं महत्ता समझते हैं[4]। सहजो बाई कहती हैं कि हृदय में छिपा कर सुमिरन कीजिए ओठ भी न हिले[5]। चरन दास का विचार है कि मन ही मन में जाप करे जिस से कि मन रूपी दर्पण स्वच्छ हो जावे । तम अन्धकार मिट जावे और राम का दर्शन हो जावे[6]।

कबीर दास भी सुमिरन को रात दिन करने को कहते हैं एक पल को भी न भूलें । जैसे कामी काम में लीन रहता है[7]। पनिहारिन का ध्यान चलते हुए

१- कबीर साखी संग्रह १८।३०

२-३ सन्त बानी संग्रह - सुन्दरदास पद सं० पृ० सं० २।१०८, १२।१०८

४- मलूकदास की बानी पद सं० पृ० सं० १।१०० - बे० प्रे० प्र०

५- सहजो बाई की बानी पद सं० पृ० सं० २।१५६ - बे० प्रे० प्र०

६- सन्त बानी संग्रह - चरनदास पद सं० पृ० सं० २।१४४

७- कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ९।६४

हर घर उसके घड़े की ओर रहता है वैसा ही ध्यान सुमिरन में रहे । काम सब करता जावे, पर ध्यान वहीं रहे[1] । दादू भी कहते हैं कि प्रति स्वास में राम का जाप हो, निरन्तर स्मरण होता रहे[2]। दादू को चिन्ता है कि सुमरिन एक बार बता नहीं कब होगा[3]। रैदास का विचार है न तो रात को सोवो और न दिन में स्वाद करो, रात दिन हरि का स्मरण करो और सब तरह की बकवाद छोड़ दो[4]। धरनीदास कहते हैं कि रात दिन ध्यान करो जिस पर संसार जो कि कर्म-भूमि है जहाँ कीचड़ ही कीचड़ है उस में सोने की गलीचा बिछ जावे, कीचड़ के बीच गलीचा बनने से चलने में सरलता होगी अर्थात् जीवन यापन सरल हो जाएगा, जब निरन्तर ही स्मरण होगा तो कर्म कलापों का प्रभाव कम पड़ेगा[5]। पल्टू कहते हैं आठों पहर भजन की धार लगी रहे । ऐसे भक्त का कोई पार नहीं पा सकता है, सब कुछ छोड़ कर भजन करने को ही महत्व दिया है[6]। कबीर का विचार है कि सुमिरन का बीज एक बार पड़ जाने के बाद चाहे जितने सांसारिक कष्ट पड़ें कष्ट नहीं होता है[7]। भक्ति जेठ मास की नदी के समान होनी चाहिए[8]। ऐसा देखी भक्ति का रंग नहीं ठहरता[9]। भक्ति में भेद, वर्णाश्रम का कोई स्थान नहीं रहता तथा भक्ति मुक्ति देने वाली होती है[10]। गोस्वामी तुलसी दास जी का

१- कबीर साखी-संग्रह, पद सं० पृ० सं० ७/१९४

२-३ दादू जी की बानी पद सं० पृ० सं० ७४/३५, ६०/३३

४- सन्त बानी संग्रह - रैदास जी पद सं० पृ० सं० ४/१५

५- " " धरनीदास " ४०/५७

६- " " पल्टूदास पद सं० पृ० सं० ५३/१९

७-८-९ कबीर साखी संग्रह पद० सं० पृ० सं० २/३३, २५/३५, १०/३४

१०- " " " ३७/३६

गुरू नानक के विचार से वही गुनी है जिस के हृदय में ब्रह्म का निवास है अहं को सौ सौ बार काट कर अहं को पूर्णतया नष्ट कर देता है वही वास्तविक स्थान पर पहुंच पाता है[1]। दादू कहते हैं कि अगम वस्तु मिली है। उसे छिपा कर रखना चाहिए, उस को छण छण संभालिए जिस से उसे भूल न जाया जाय[2]। राम की बराबरी कोई नहीं कर सकता है सुमिरन ही में सुख होता है यदि एक बार प्रीति लग गई तो कभी नहीं छूटती जीवन भर लगी रहती है मरने पर उसी में लीन हो जाती है[3]। अपने अहं भाव, मद को छोड़ना पड़ता है, दीन बन कर सेवा करनी पड़ती है[4]। सब शरीरों में राम का वास है वही जानता है जो राम का स्नेही होता है[5]। सुन्दरदास जी आपा खोने को कहते हैं[6]। धरनी दास जी कहते हैं भगवान की आराधना मन, वचन, कर्म से करी जावे[7]। सब के शरीरों में शब्द व्याप्त है जो अपने शब्द को जानता है अर्थात् आत्मा को जानता है उसी का शब्द सच्चा है[8]। धरनी दास का विचार है शब्द सीढ़ी के बिना कैसा भी काम हो नहीं हो सकता। आकाश के झरोखे में चढ़ना अर्थात् ब्रह्म तक पहुंचने का प्रयत्न बिना अपनी आत्मा को जाने नहीं हो सकता है[9]। शरीर रूपी तख्त पर सुल्तान अर्थात् ब्रह्म सभी जीवों का मुजरा लेता है अर्थात् सभी की देख भाल करता है[10]। पल्टू साहब का कहना है कि हम से राम से व्यवहार हो गया कोई कितनी ही

१- सन्त बानी संग्रह - नानक पद सं० पृ० सं० ३।६९

२-३-४-५ दादू दयाल की बानी पद सं० पृ० सं० ५८।२२, ९१।३५, ६१।३५, ७४/२२

६- सन्त बानी संग्रह - सुन्दरदास पद सं० पृ० सं० ७।१०८

७-८-९ धरनी दास जी की बानी पद सं० पृ० सं० ७१।६०, ६९।५९, २२।५६

१०- सन्त बानी संग्रह - धरनी दास पद सं० पृ० सं० ६।११५

बुराई करे वैसे हम राम के वैसे ही राम हमारे हैं[1]। जैसी जिस की भावना होती है वैसा ही उस का व्यवहार होता है[2]। बिना खोजे ब्रह्म नहीं मिलते जैसे बिना मथे घी नहीं मिलता[3]। इन्द्रियों को जीत कर जो कार्य करता है वही सांसारिक दुखों से बचा रहता है[4]। जिस घर अगिन में भीगने से बच जाता है। जगजीवन साहब का विचार है कि भिन्न-भिन्न सब त्याग कर अपने अन्दर ब्रह्म में ही लीन रहो उन्हीं से प्रीति करो[5]। ब्रह्म की सूरत में स्नेह लगाने से जीव आगे बढ़ता है। भीखा साहिब कहते हैं -

काया कुण्ड बनाय के सुमिरि घोटना देइ[6]
विजया जीव मिलाय के निरमल घोटा लेइ।

इन्होंने भांग की मस्ती का रूपक बांध कर ब्रह्म की आराधना की है। चरन दास का विचार है कि माया का मिटाना पहला काम है[7]। ध्यान निरन्तर परमेश्वर का ही रहे और शरीर संसार में रहे[8]। मलूकदास का कहना है कि जिन के हृदय में हरि बसे हैं उन के पास ही सब तीर्थ हैं[9]। प्रभुता सभी चाहते हैं पर जो प्रभु चाहते हैं उन की दासी प्रभुता होती है[10]। दया बाई तो अजपाजाप को ही महत्ता देती हैं। पद्मासन लगा कर अन्दर में हरि रस कर अजपा जाप जपे, सोते जागते हरि का स्मरण ही करता रहे सुख की चाह नहीं

१,२,३,४ - पल्टू साहिब की बानी पद सं० पृ० सं० ३९।९१, ३०।९१, १०२।९८, १५१।१

५- जगजीवन साहिब की बानी पद सं० पृ० सं० ११।१२८

६- भीखा साहिब की बानी पद सं० पृ० सं० १।४८ 211

७- सन्त बानी संग्रह - चरनदास पद सं० पृ० सं० १।१४४ १४८

८, ९ - " मलूकदास " ४।१०५ मिश्रित ४।१०५

१०- " दया बाई " १।१६९

सहजो बाई कहती हैं कि अपनत्व को नष्ट कर दो रत्ती भर भी अभिमान न रहे अपने को छोटा कर लो तो सारे जंजाल छूट जायें[1]। अजपाजाप सब के शरीर में है सुरत को वहीं लगाए जाया होने से ही ब्रह्म मिलते हैं[2]। दरिया साहब (बिहार वाले) का विचार है कि जैसे तिलों में फूलों की सुगन्ध भर जाती है वैसे ही सब शरीरों में राम व्याप्त है[3]। दरिया साहब (मारवाड़ वाले) कहते हैं कि जो ब्रह्म में लीन है वही वास्तविक तत्व को पाता है[4]। गुलाल साहब का विचार है कि मन रूपी पवन की जब जीत हो तब यहां शून्य तक पहुंच सकते हो तन मन अर्पण करने में अर्थात् अहन्ता पूर्णतया नष्ट करने में ब्रह्म की प्राप्ति सम्भव है[5]। बुल्ले शाह का कहना है कि अहंकार को जला कर अहंभाव को कुंए में डाल दो, तन मन को भूल जा, तो प्रीतम आकर मिलेगा[6]। जैसे सुनार तरह तरह के गहने गढ़ता है पर कहलाते सब सोने के ही हैं शरीर वैसे ही सब के भिन्न होते हैं आत्मा सब की एक होती है[7]। यारी साहिब कहते हैं ज्योति स्वरूपी आत्मा सब जीवों में व्याप्त है, मन को आनन्द देने वाला परम तत्व इधर उधर नहीं जाता[8]। नैनों के आगे जगदीश सब के शरीर में व्याप्त है[9]। दूलनदास का विचार है कि जो चरणों से

1-2 संत बानी संग्रह - सहजो बाई पद सं० १५०, ७/१५२

3- सन्तबानी संग्रह दरिया साहिब (बिहार वाले) पद सं० पृ० सं० १।१२२

4- " दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) पद सं० पृ० सं० ९।१३१

5- " गुलाल साहिब " ७।२०९

6,7- " बुल्ले शाह " १।१५३, २।१५२

8,9- " यारी साहिब " १।१२०, ३।१२०

स्नेह कर लेता है वह कुशल से स्थान पर पहुँच जाता है जहाँ काल तथा कर्म की गति नहीं होती तथा वहाँ भ्रम के बाण भी नहीं पहुँचते[1]। ज्ञानी को ज्ञान की रीति मालूम है पर हम तो अज्ञान बालक हैं हम तो विश्वास करके मन से भजन करते हैं[2]। गरीब दास का कहना है कि नाम ध्यान ही सार वस्तु है इस के अतिरिक्त परम तत्व ब्रह्म है तन मन को छोड़ कर सुमिरन में प्रीति लगी तभी ब्रह्म की प्राप्ति होती है[3]। जैसे तिल में तेल होता है वैसे ही शरीर में राम होते हैं, पर बिना परिश्रम के नहीं मिलते[4]। तुलसी साहब कहते हैं सुरत अर्थात् ब्रह्म का निरन्तर ध्यान ही आवश्यक है सुरति शब्द के भेद के बिना कोई काम पूरा नहीं होता -

सुरत सिखर अन्दर चढ़ी चढ़ी जौ दीपक बार[5] ।
आतम रूप आकाश का देखहिं विमल बहार ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि मेरे समान कोई दीन तथा तुम्हारे समान कोई दाता नहीं है, तुलसीदास को तो केवल राम का ही भरोसा है ।

नहिं विद्या नहिं बुद्धि बल नहिं खरचन को दाम[6] ।
मोसम पतित अपंग की तुम पति राखो राम ॥

भक्ति द्वारा मन उसकी वृत्तियाँ और बाह्य दशाओं की शुद्धि होती है । ऐसी दशा के अनन्तर ही प्रेम की वृद्धि होती है । नारद भक्ति

१-२ सन्तबानी संग्रह मलूकदास पद ख० पृ० स० १।१२९, २।१२८
३-४ " गरीबदास " ४।१८८, ४।२०६
५- " तुलसी साहिब " ७।२२१
६- " गोस्वामी तुलसीदास " ७।२४१

सूत्र में ईश्वर के प्रति प्रेम रूपा भक्ति को उत्तम कहा है[१] । प्रेम भक्ति की सिद्धि कठिनता से होती है । साधक को अपना सर्वस्व निछावर करना पड़ता है । छान्दोग्योपनिषद् में कहा है कि अखंड ब्रह्माण्ड में आनन्द है, परिछिन्न में आनन्द का अभाव है । ब्रह्म आनन्द रूप ही है, अतएव उसी की सेवा रूप जिज्ञासा करनी चाहिए[२] । भगवान की पराशक्ति ब्रह्म का प्रेम भाव है । इसे आनन्द भाव कहते हैं । प्रेम तथा आनन्द एक ही है । भगवान स्वयं प्रेम रूप होकर प्रेम से सृष्टि करते हैं । प्रेम के सम्बन्ध में नारद भक्ति सूत्र का कथन है, प्रेम गुण रहित, कामना रहित होता है । प्रतिक्षण बढ़ता रहता है । यह विच्छेद रहित है, सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है तथा अनुभव रूप है[३] । प्रेम साधना के मार्ग पर चलने वाले साधक को व्यग्रता, व्याकुलता का पग पग पर सामना करना पड़ता है । कबीर ने प्रेम की साधना में सर्वस्व स्वाहा करने को कहा है -

> कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं,
> सीस उतारै भुइं धरे सो पैठे घर माहिं[४] ।

प्रेम की कहानी अकथनीय है वह गूंगे के गुड़ के समान है । यह अनुभव की वस्तु है[५] । प्रेम की साधना कठिन होती है । प्रेम सम्पूर्ण आत्म-समर्पण चाहता है । इस की साधना सूर वीर ही कर सकते हैं । यह सती और सूर वीर की भाँति सर्वस्व निछावर करने की भावना से होता है । प्रिय मिलन की तड़पन

१- सात्वास्मिन परम प्रेम रूपा - नारद भक्ति सूत्र २

२- छान्दोग्योपनिषद - ७।२३

३- गुणरहितं कामना रहितं प्रतिक्षणं-वर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपकं ना०भ०सू० ५४

४-५ कबीर ग्रंथावली पृ० ६९, १३९ पद १७, पद १५५

भी अतुलनीय होती है । कबीर ने व्यग्रता की उपमा चकवी से दी है -

चकवी बिछुड़ी रैन की आय मिली प्रभात[१],
जो जन बिछुड़े राम सों, ते दिन न मिले न रात ।

जब पूर्णतया प्रेम हो जाता है तब सब जगह परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं, ऐसी अवस्था होने पर विषय वासना ख़तम हो जाती है । प्रेम की उत्कटतामें आत्माभिमान नष्ट हो जाता है । प्रेम शरीर भर में व्याप्त हो जाता है[२] । क्षण क्षण में उतरने चढ़ने वाले को प्रेम नहीं कहते[३] । इस से दुबैत भाव भी ख़तम हो जाता है । एक म्यान में दो खड़ग की तरह प्रेम और मान नहीं रहता[४] । प्रेम छिपाया नहीं जा सकता, मुंह से न कहे तो आंसू तो हृदय खोल ही देते हैं[५] । यह किसी बगीचे में नहीं होता शीश देकर जो चाहे तो लेले[६] । कबीर अपने में ही मगन हैं । उन्हें तो अन्तरयामी सभी जगह दिखाई देते हैं -

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल[७]
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ॥

प्रेम की पराकाष्ठा में कबीर ने चकोर को माना है । एक बार प्रीति लग जाने पर छूटती नहीं, चकोर चन्द्रमा के धोखे अंगारों तक को पकड़ लेता है चाहे चोंच और जीभ क्यों न जल जाए[८] । गोस्वामी तुलसीदास जी ने चातक के प्रेम को प्रेम का आदर्श माना है । चाहे प्यास से सारा शरीर सूख जावे, पर निरन्तर प्रेम बढ़ता ही जाता है[९] । चातक केवल स्वाति का जल ही बारहों महीने मांगता है उसकी प्यास निरन्तर बढ़ती ही रहती है[१०] । सन्त मानवेश ने

१- कबीर ग्रंथावली पृ० ५८.१

२,३,४- सन्तवाणी संग्रह कबीर साहिब भ० सं० पृ० सं० ७।१९, ५।१९, २१।२०

५,६,७,८- " " " " १९।२०, ३।१९, २।४३, १२।१९

९,१०- " गोस्वामी तुलसीदास " १२।७८, १।७९

प्रभु से प्रीति करने का उपदेश दिया है -

> जैसी प्रीति बारिक अरु माता। ऐसा हरि से तो मन राता[१]
>
> प्रभ जैं नाम देव लागी प्रीति। गोविन्दु बसै हमारै चीति ।

गुरु नानक कहते हैं जिस को एक बार प्रेम हो जाता है वह अन्त तक निभाता है[२]। रैदास का विचार है कि प्रेम भक्ति जब तक नहीं होती तब तक भ्रम की फाँस नहीं कटती[३]। दादू का कहना है कि राम में लीन होकर प्रेम का रस पीकर मुक्ति की भी इच्छा नहीं[४]-

> ज्यूँ अमली में चित अमल है, सूरे के संग्राम[५] ।
>
> निरधन के चित धन बसै यूँ दादू के राम ।।

कबीर की भाँति दादू भी प्रेम के लिए सिर सौंपने के लिए कहते हैं, बिना आत्माभिमान मिटाए इश्क नहीं होता । प्रेमी को मरने का भी डर नहीं, सारे शरीर में प्रीति व्याप्त हो जाने के बाद रोम रोम में 'पिउ पिउ' का ही शब्द सुनाई देता है[६]। राम और मैं दोनों एक ही जगह नहीं रह सकते । क्योंकि प्रेम का महल बारीक है[७] ।आपा को पूर्णतया तल्लीन करना पड़ता है जैसे पाला पानी हो जाता है वैसे ही जमाल से दिल मिलने पर कोई अन्तर नहीं रह जाता हरिजन ऐसे ही हरि में मिल जाते हैं[८] । जिसका मन रूपी दर्पण काम, क्रोध,

---

१- सन्तकाव्यदेश - श्री परशुराम चतुर्वेदी पृ० - १४८

२- सन्तबानी संग्रह गुरु नानक भाग द० पृ०सं० २।११

३- " रैदास " ५।११

४,५,) " दादू " २।८३, ३।८३, ६।८३, ३।११
६,७)

८- " दादू जमाल " ५।९९

मोह, लोभ आदि विकारों से दूषित नहीं है वह अपने में ब्रह्म को देख सकता है । जिस की आरसी गंदी है अर्थात् विकारों सहित है वह अपने को नहीं देख पाता[1]।

सुन्दर दास का भी विचार आत्म विचार की ओर है अपने दिल में गोता लगा कर देखो वहीं प्रीतम मिलेंगे[2]। प्रीति सहित हरि का भजन आवश्यक बताया है जैसे बिना लून के अन्न का स्वाद अच्छा नहीं लगता वैसे ही प्रीति के बिना भजन निरर्थक है[3] । धरनीदास के हृदय रूपी पलंग पर प्रीतम लेटे हैं । एक बार उन की आवाज सुन कर फिर किसी पर कैसे विश्वास हो सकता है[4]। धरनीदास को जिस पर्वत पर प्रीतम है उस पर चढ़ने से डर लगता है । प्रीतम तक पहुंचना बहुत कठिन प्रतीत होता है[5]। प्रीतम की झलक इतनी सुन्दर है कि पलक नहीं गिरती है बार बार प्रीतम की मूर्ति देखने पर भी प्यास नहीं जाती[6]।पल्टू साहब का विचार है, जैसे कपड़े पर से मजीठ का रंग नहीं छूटता वैसे ही प्रीति का रंग चढ़ जाने पर कभी नहीं जाता, ऐसी ही प्रीति होनी चाहिए[7]। प्रीति करने से पल्टू निर्भय पद पा जाते हैं[8]। हरि के कारण हम तो फकीर हो गए, हरि के मिल जाने के बाद तो तीनों लोकों की जागीर मिल गई[9]। यदि सिर पर भगवान हैं तो संसार के रूठने से भला ही होता है । संसार के रूठने से प्रति मोह कम हो जाता है[10]। भ्रम के परदे फट जाते हैं बाद हमें प्रीतम मिल गए ।हम तो अब उसी

१- सन्त बानी संग्रह दादूदयाल पद स० पु० स० ७।९६

२-३ " सुन्दरदास " १।१०९, १०।१०८

४-५-६ " धरनीदास " ५।११५, ३।११३, १।११३

४।२१५, ४।२२८

७-८-९-१० " पल्टूदास " ११।२२४, ~~४।२२५~~, ३।२२६

में निमग्न हो गए सारा संसार उस के आगे बेकार है[१] । जगजीवन साहिब कहते हैं कि सामर्थवान में अपने चित्त को लगाकर सब कार्य करते जाओ । मन तो प्रीतम में लगा रहे काम शरीर से होता रहे । यही सुख पाने का मंत्र है[२]। भीखा साहब का विचार है कि जब तक प्राण हैं प्रीति सहित भजन करो[३] ।

चरणदास का विचार है जो हरि के रस में तल्लीन है उसका प्रेम आँखों से झलकने लगता है, जाप करे तो प्रीतम का ध्यान करे तो प्रीतम का[४]। मलूकदास तो प्रेम का प्याला पीकर मतवाले रहते हैं । प्रेम का पखावज निरन्तर हृदय के तार को बजाता है, मगन होकर वह उसी में लीन रहते हैं[५]। दया बाई भी इन्हीं विचारों को मानती हैं कि सोते जागते हरि का स्मरण करता रहे[६]। सहजो बाई भी अपनत्व को नष्ट कर अपने को छोटा करके सारे जंजाल से छुटकारा पाने को कहती हैं[७] । गुलाल साहब कहते हैं तन मन अर्पण करने पर ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है[८] । बुल्ले शाह का कथन है कि अहंकार को जला कर कुएं में डाल दो, तन मन भूल जाओ तो प्रीतम आकर मिलेंगे[९] । केशवदास भी प्रेम को आवश्यक मानते हैं[१०]। बुल्लादास कहते हैं जिसके हृदय में प्रेम का वृक्ष लग गया उस वृक्ष की छाया में सारे मन के विकार थक जाते हैं अर्थात् पांच और पचीसों विकार नष्ट हो जाते हैं[११]। गरीबदास का विचार है कि तन मन से लगा कर ब्रह्म की

१- पल्टू साहिब की बानी पद सं० पृ०सं० ३२।९१

२- सन्तबानी संग्रह जगजीवन साहिब पद०सं०पृ०सं० २।११८
३- " भीखा साहिब " २।१११
४- " चरणदास " २।१४४
५- " मलूकदास " २।१०१
६- " दया बाई " ८।१६८
७- " सहजोबाई " १।१६०
८- " गुलाल साहेब " २०।२१०
९- " बुल्ले शाह " ६।१५३
१०- " केशवदास " ७।१४१
११- " बुल्लादास " ३।१३७

प्राप्ति में लग जाओ तभी ब्रह्म की प्राप्ति होगी[1]।

कबीर के समान दादू भी ब्रह्म को व्यापक मानते हैं, जैसे दूध में जल प्रविष्ट हो कर अपना अस्तित्व खो देता है पानी में नमक मिल जाता है वैसे ही राम सब जगह व्याप्त हैं। परिश्रम कर के उन्हें पाया जा सकता है । दादू कहते हैं कि जैसे दूध में घी व्याप्त है, वैसे ब्रह्म भी व्यापक है जो निकाल सके वही पुरुषार्थी है[2]। फूल में सुगन्ध तिल में तेल इसी तरह ब्रह्म व्याप्त है । सन्त तुका राम का कहना है -

गुड़ का मीठा है भगवान बाहर भीतर एक समान[3]

किसका ध्यान करूं सविवेक जल तरंग हैं हैं हम एक ।

गरीबदास जी कहते हैं कि जैसे तिल में तेल होता है वैसे शरीर में राम रहते हैं[4] । प्रेम की साधना में विरह का प्रमुख स्थान है प्रेम के साधन में विरह होना अनिवार्य है । नारद भक्ति में विरह तत्व को भी विशेष महत्व दिया है, साधन को साध्य से मिलने वाला प्रमुख साधन भी यही है -

कबीर हंसना दूर कर , रोने से कर चीत[5]।

बिन रोये क्यों पाइए, प्रेम पियारा मीत ।

विरह की दशा का वर्णन करते हुए सन्त नाम देव ने कहा है -

मोहि लागति तालाबेली, बछरे बिन गाइ अकेली[6] ।

पनिया बिनु मीनु तलफै जैसे राम नाम बिनु बपुरो नामा कलपै।

विरह का मारा हुआ प्रेमी सदा व्याकुल रहता है उसे ताला

१- सन्त बानी संग्रह गरीबदास पद सं० पृ० सं० ११।१८६
२- " दादू " ३।६५
३- " सन्त तुका राम श्री परशुराम चतुर्वेदी पृ० १५३
४- संत बानी संग्रह गरीबदास पद सं० पृ० सं० ४।२०६
५- " कबीर " १६।१५
६- सन्त काव्य(संग्रह) श्री परशुराम चतुर्वेदी पृ० १५३

बेली लगी रहती है । बिना बछड़े की गाय बिना पानी के मछली जैसे व्याकुल रहती है वैसे ही राम के दर्शन किए बिना साधक ।

कबीर भक्त प्रेमी तथा विरही भी हैं, कबीर कहते हैं कि ... प्रीति की आग से विरहिन रात दिन जला करती है। सारे शरीर को विरह झकझोरती रहती है सारा शरीर विरह में गल गया, रात दिन नींद नहीं आती[१]। ऐसी अवस्था हो गई है इससे तो अच्छी मृत्यु ही होती। पर जीव तो चीव मैंगता है शरीर सूना है मृत्यु भी लौट जाती है[२]। अब तो विरहिन को मरने का डर ही नहीं है अब स्थित बड़ आ गई है -

अँखियाँ तो झाँई परी पंथ निहार निहार[३] ।
जिह्वा तो छाला पड़या नाम पुकार पुकार ।

हृदय में धीरज तब तक नहीं होता जब तक स्नेही नहीं मिलता, साथ ही साथ कबीर यह भी कहते हैं बिना देह के शरीर निरर्थक है -

जो घट बिरहन संचरै सो घट जान मसान[४]

कबीर ने विरह की प्रत्येक दशा का वर्णन किया है । विरह की प्रथम अवस्था चिन्ता दूसरी दशा व्यग्रता तीसरी आंसू चौथी मन का उद्वेग पांचवीं दशा विस्मृति छठी दशा जागरण, सातवीं दशा उन्माद, तथा आठवीं दशा मृत्यु है । साधना की पराकाष्ठा पर पहुंच कर भक्त का प्रेम सात्विक

१- कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० स० ३३।४७
२- " " २।४८
३- " " ४।१५
४- " " २९।१८

एवं सार्वभौमिक हो जाता है जब भक्त में समदर्शिता के भाव आ जाते हैं गीता में कृष्ण जी ने कहा है -

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति,
तस्याहम् प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति[1] ।

भक्त इस स्थिति में अपने ध्येय पर अडिग है परम सन्तोषी सदा सर्वदा साधना पथ में जागरूक तथा सावधान रहता है वह निज निरीक्षण में रत विरत रहता है । सब के साथ मधुर वचनों का उच्चारण करता है । सत्य वचन का पालन करने वाला और सद्-गुरु का अनन्य भक्त होता है । ऐसे भक्त की वृत्ति सहज रूप ब्रह्म हो जाती है[2]। दादू का कहना है कि विरह से दुख उमड़ता है । दुख से जीव जागता है[3]। इस से प्रभु के प्रति सुमिरन होता है तथा जीव पीव को पुकारता है[4]। गुरु देव का बिना तीर-कमान का मारा हुआ बाण शरीर में चोट करता है । शरीर में दुख व्याप्त हो जाता है[5]। विरह व्यापने से सांसारिक काम कड़वे लगने लगे तथा नाम से प्रीति बढ़ी[6]। विरहिन कहती है हम भीख मांगती हैं हमें दर्शन दीजिए, हम अपने तन मन को सौंप करती हैं आप हमें दर्शन दें[7]।

मलूक दास कहते हैं हमारा जीव थर थर कांपता है हमें रात दिन नींद नहीं आती, पता नहीं हमारा प्रीतम क्या करेगा[8]। एक घड़ी चैन नहीं

१- गीता - ६।३०

२- कबीर दर्शन - डा० राम जी लाल सहायक पृ० ३८५

३,४,५,६,७- दादू जी की बानी पद सं० पृ० सं० १२५।४२, १३४।४३, २२।३३, १४३।४४, ८८।१८

८- सन्तबानी संग्रह मलूकदास पद सं० पृ० सं० ४।१०१

दिन रात आंसू बहते रहते हैं -

जिय बिकूल पिय मिलन को परी रही न चैन[१],
निशि दिन आंसू बह चले नींद न आवै रैन ।

दिन रात उसे चैन नहीं

सुन्दर दास की विरहिन विलख कर तड़फड़ाती है । ~~बनचलों के~~
पड़ती. प्रीतम की ओर ही देखा करती
~~जल के उन्मत्त नेत्रों से उड़ता बहती~~ है[२]। दुख के कारण बावली हो गई है । जल कर भस्म हो रही है पर धुंआं नहीं निकल पाता, क्योंकि मिलने की आशा अभी भी लगी है[३] । इनके विचार से इसी से विरहिन चाहती है राम जी प्रगट हो जावें, जिस से सारे शरीर में आनन्द आ जावे[४]। चरणीदास की विरहिन को धीरज नहीं होता वह विकल तथा विह्वल है उस का शरीर दुर्बल है[५]। उसका हृदय धड़कता है कलेजे में कसक है नैनों से आंसू की धारा बहती है[६]। दरिया साहब (मारवाड़ वाले) कहते हैं विरहिन के शरीर में न तो लहू है न मांस[७] । अपने साहब के लिए सिसकती है -

विरह बियापी देह में किया निरन्तर वास,
तालाबेली जीव में सिसके सांस उसांस[८] ।

विरहिन का मन सीधा है पर शरीर पीला हो गया है रात में नींद नहीं आती और दिन में भूख नहीं लगती[९]। चरन दास कहते हैं कि विरहिन का मुंह पीला, अधर सूखे हुए, आंखों में उदासी, दुख भरी आहें, गहरी सांस लेती है[१०] । हृदय में आग बलती रहती है जैसे लकड़ी को घुन नष्ट कर देते हैं वैसे ही

१- शब्द संग्रह- अज्ञात...

१-	सन्त बानी संग्रह	मलूकदास	पद-सं० पृ० सं०	४/१०७
२,३,४-	"	सुन्दरदास	"	१/१०९, २/१०९, ५/१०९
५,६-	"	चरणीदास	"	१/११३, ३/११३
७,८,९-	बानी	दरिया साहिब	"	६/११९, २/११९, ४/११९
१०-	"	चरनदास	"	६/१३५

विरह विरहिन को क्षीण कर देती है । दिन दिन पीली पड़ती जाती है[1]। उसके मन में तो पीव ही बस गए हैं -

जाप करे तो पीव का ध्यान करे तो पीव,
पीव विरहिन का जीव है, जिव विरहिन का पीव[2]।

राम के विरह में बावरी भई भई है । नैनों में आंसू हैं, दिन रात तड़पती है, ऐसा कौन दिन आवेगा जब दर्शन होवेंगे[3]। बुल्ले शाह का विचार है कि विरह में ही हमें सुख है नहीं हमें दीजिए[4]। दया बाई की विरहिन व्यथा से विकल है दर्शन के लिए दया की भीख मांगती है, जन्म जन्म के बिछुड़े हैं अब रहा नहीं जाता[5]। विरह से तप्त कर के मन को दुख क्यों देते हो वह पागल होकर चारों ओर देखती है तड़प कर उठती है, गिरती है[6]। राम के बिना मन दुखी है सोते जागते एक पल के लिए भी नहीं भूलती[7]। सहजो बाई की भी विरहिन कभी हंसती है और कभी रोती है उन्माद की दशा है लोग उसे पागल कहते हैं[8]। प्रेम में दिवानी है, इस के पैर कहीं के कहीं पड़ते हैं प्रेम दिवानी है । आंखें बन्द हैं सुध खो जाती है[9]। मन में तो आनन्द रहता है पर शरीर पागलों की तरह रहता है[10]। सन्त रज्जब जी कहते हैं -

तन मन बौलिज्यूं गलहिं, विरह सूर की ताप[11]
रज्जब पिघले देह यूं यूं आपापहि जप जाप ।

१,२,३- सन्तबानी संग्रह चरनदास पद सं० पृ० सं० ८।१४५, १२।१४५, ३।१४४

४- " बुल्ले शाह " १।१५२

५,६- " दया बाई " २/१६१, ५।१७१, ३।१७१

७,८-)
९,१०-) " सहजो बाई " ३।१५८, ६/१५८, ५।१५८, ४।१५८

सुधा: सार

११- सन्त ~~काव्य संग्रह~~ रज्जब पृ० ~~[illegible]~~ ५२८ पद ८.२५

शेख फरीद की विरहिन कहती है कि शरीर का मांस तो विरह ने भस्म कर दिया पर नैनों को छोड़ देना क्यों कि उन्हीं से प्रीतम को देखने की आशा है[1] -

बिरहा बिरहा आखीऐ, बिरहा तू सुल्तान[2],
फरीदा जिसु तनि बिरह न उपजै सो तनु जाणमसाण ।

तुलसी साहब कहते हैं कि विरहिन आठू पर रोती है पिया परदेश में है[3]।

अन्तिम दशा में जबकि भक्त का दर्शन हो जाता है कबीर कहते हैं रोम रोम में दीपक का प्रकाश फैल जाता है[4] । कबीर का कहना है कि अब हम सद्गुरु के चेला हो गए, दासों के दास बन गए हम पांव के नीचे की घास बनना चाहते हैं, यह भाव आ जाता है[5]। रैदास का कहना है जिस के हृदय में रात दिन प्रीतम का वास हो गया उस में काम, क्रोध का प्रभाव नहीं होता[6] । दादू प्रेम के जल में विभोर होकर आनन्दित होते हैं[7]। सुन्दरदास का कहना है भक्त उसी रूप का हो जाता है जिसका सुमिरन करता है -

जाही को सुमिरन किये ह्वै ताही को रूप,
सुमिरन किये ब्रह्म के सुन्दर ह्वै चिद्रूप[8]।

१,२- सन्त काव्य संग्रह शेख फरीद पृ० २२४

३- सन्त बानी संग्रह तुलसी साहिब पृ० २२८

४,५- " कबीर साहिब पद सं० पृ० सं० , १०।४८

६- " रैदास " ३।६५

७- " दादू " ७।८३

८- " सुन्दरदास " १२।१०८

धरणी दास कहते हैं कि हमारी ही आत्मा सब के शरीरों में व्याप्त है दूसरा कोई रह ही नहीं गया है किस को आशीर्वाद दें किस को श्राप[1]। विश्व कल्याण एवं नित्य दर्शन के हेतु प्राणी मात्र की सेवा में लगे रहने में कर्तव्य समझते हैं, ऐसे भक्त और भगवान में कोई भेद नहीं रहता । कबीर कहते हैं -

आपा पर सभि चीन्हिए, तब मिले आतम राम,[2]
हृदय श्री हरि भेंटिए जो मन अनतै नहिं जाय ।

इस तरह के प्रेम के बाद निष्काम भाव द्वारा निष्काम सेवा करना ही सर्वोच्च प्रेम है । इस से अपने स्वरूप का ज्ञान होता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है जो जीवन का परम लक्ष्य है ।

अन्य पूज्य जीव व्यक्ति - अभी तक तो सन्तों की प्रेम भक्ति का वर्णन हुआ जिस में सभी सन्त प्रेम में विभोर हैं । यह सन्त निर्गुण ब्रह्म को मानते हैं, इस से देवी देवताओं के प्रति इन्हें कोई श्रद्धा नहीं थी । पर इन्हों ने निर्गुण ब्रह्म, गुरु , सन्त अथवा साधु, पतिव्रता, एवं सती, सूरमा आदि का वर्णन उतनी ही भक्ति से किया जितना सगुण कवि राम, कृष्ण, दुर्गा, गणेश आदि की करते हैं । कुछ सन्त कवियों ने निर्गुण ब्रह्म के रूप का वर्णन किया है, कुछ ने उस स्थान का, जहाँ वह निराकार रूप में व्याप्त है । बहुत से सन्तों ने शब्द रूप में तथा शून्य रूप में वर्णन किया है ।

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में निर्गुण ब्रह्म का वर्णन मिलता है जिस मूल सत्ता से सब कुछ उत्पन्न हुआ है, जो सर्व व्याप्त है, उसे न सत् कहा जा सकता है और न असत् जो कुछ है पहले नहीं था, जो कुछ नहीं है सो भी नहीं है न आकाश था न उस के परे स्वर्ग लोक[3]। ब्रह्म का व्यक्त, अव्यक्त, निर्गुण, निराकार, अजन्मा, अकर्ता आदि स्वरूपों में उपनिषदों में वर्णन हुआ है ।

१- सन्त बानी संग्रह धरणीदास भाग सं० पृ० सं० ८।११६
२- कबीर ग्रंथावली पृ. १५०
३- ऋग्वेद १०.१२९.१

श्री भगवद् गीता में निर्गुण है पर गुणों का उपभोग करता है । सूक्ष्म और अविज्ञेय है, दूर होकर भी निकट है[1]।

बौद्ध धर्म में ब्रह्म का प्रयोग नहीं मिलता, पर नागार्जुन ने शून्य सत्ता स्वीकार की है । वह न सत् है न असत्, न सत् और असत् दोनों ।[2] कबीर ने ब्रह्म को मूल तत्व कहा है । ब्रह्म की पारमार्थिक सत्ता है । वह काल , देश, अवस्था से परे अर्थात् सकल अतीत है । कबीर ब्रह्म को सर्वत्र व्याप्त कहते हैं । ब्रह्म चैतन्यपूर्ण वही सत्य तत्व है, पूर्ण है, निरविशेष है । ऐसा कबीर ने अपने पदों में वर्णन किया है । कबीर का कहना है कि हमारा प्रीतम व्यापक रूप है जैसे तिल में तेल, चकमक में आग, पुष्पों में सुगन्ध, मृग कुंडल में कस्तूरी है वैसे ही वह सब में व्याप्त है उस के न रूप रंग है और न मुख वह पुष्पों की सुगन्ध से भी सूक्ष्म है[3]। " नाद बिन्दु ते भिन्न है पांच तत्व ते न्यार,[4] तीन गुनन तें भिन्न है पुरुष अलख अपार" । दादू का कहना है कि वह तीन लोकों में व्याप्त है, लोग कहते हैं कि प्रियतम कहीं दूर हैं, पर वह वास्तव में सब के शरीर में है जैसे दूध में जल, पानी में नमक लीन हो जाता है वैसे ही ब्रह्म का रूप सब जगह फैला हुआ है। तिलों का तेल, फूलों की गन्ध, दूध में घी की तरह व्याप्त है[5]।

ब्रह्म समर्थवान भी है अपने अन्दर ही उस का वास है इस से और किसी से मतलब नहीं है । मलूकदास भी ऐसा ही कहते हैं कि ब्रह्म सब घट में है सब कलियों में सुगन्ध रूप में है[6] । सुन्दरदास का विचार है कि दिल में गोता मार कर देखो वहीं ब्रह्म है[7] । धरणीदास ने उसी को सुल्तान के रूप में वर्णन

१- गीता १५।१२ २. बौद्ध दर्शन माध्यमिक १-७

३,४- सन्तबानी संग्रह कबीर साहिब भाग सं० पृ० सं० ४।२२, २।५३

५,६- " दादू " ३।८५, ५।१०५
मलूकदास " १।१०५

७- " सुन्दरदास " १।१०१

किया है वह सब का मुजरा लेता रहता है[1]। यारी साहब की दृष्टि में ज्योति स्वरूपी जगदीश नैनों के आगे ही बाहर भीतर दर्शन रहे हैं[2]। दरिया साहब (बिहार वाले) के विचार से जैसे तिलों में फूलों की सुगन्ध भर जाती है वैसे ही सब शरीरों में गन्ध रूपी ब्रह्म व्याप्त है[3]। दरिया साहब (मारवाड़ वाले) के भी परम पुरुष घटघट में व्याप्त है[4]। चरनदास के ब्रह्म तिलों में तिल मेंहदी में रंग के समान व्यापक है[5]। बुल्ले साहब को ब्रह्म अन्दर ही मिले[6]। सहजोबाई के ब्रह्म के न तो रूप है न रंग, न वह उत्पन्न होता है न मरता है वह पांच तत्व से दूर है पर निर्गुण से सगुण भक्तों के कारण हो गए[7]।दया बाई ने भी अजर अमर आदि कहा है -

वही एक व्यापक सकल, ज्यों मनिका में डोर[8],
थिर चल कीट पतंग में दया न दूजी ओर ।

गरीबदास जी तिल में तेल की तरह खालिक में खलक की दुनी को कहते है[9]। मीरा साहब का ब्रह्म भी सब शरीरों में व्यापक है[10]। पल्टू ने कहा है कि काठ में अग्नि, फूलों में सुगन्ध, मेंहदी में लाली, दूध में घी की तरह ब्रह्म हरिजनों में वास करते हैं[11]। तुलसी साहब का कहना है कि बिना दिया बत्ती के हृदय में ब्रह्म का प्रकाश फैला रहता है वह सूर्य के समान सब कहीं प्रकाशित है[12]।

१-	सन्तबानी संग्रह	धर्मीदास	पद सं० पृ० सं०	६।११५
२-	"	यारी साहिब	"	१।१२०
३-	"	दरिया साहिब	"	१।१२२ (बिहार वाले)
४-	"	" "	"	२/१२८ (मारवाड़ वाले)
५-	"	चरनदास	"	१।१४६
६-	"	बुल्लेशाह	"	४।१५२
७-	"	सहजोबाई	"	१०।१६४
८-	"	दयाबाई	"	५।१७९
९-	"	गरीबदास	"	१।२०९
१०-	"	मीरा साहिब	"	३।२१३
११-	"	पल्टू साहिब	"	१।२१७
१२-	"	तुलसी साहिब	"	१।२३१

पर इन सब शब्दों को इस स्थिति में कि ब्रह्म अरूप है, अलेख है, वर्ण रहित है, पहुंचने वाला कौन है? इस का ज्ञान तो सभी प्राणियों को नहीं होता, और न चर्म चक्षु से ही उस रूप या स्थान को देखा जा सकता है इसी प्रश्न का उत्तर है गुरु । इस तरह का ज्ञान गुरु के द्वारा ही होता है इसी से गुरु का स्तवन, वन्दन की परम्परा भारतीय संस्कृति का प्रधान अंग रही है । घेरंड संहिता में गुरु की महत्ता के विषय में लिखते हैं कि केवल वही ज्ञान उपयोगी और शक्ति सम्पन्न है जो गुरु ने अपने ओठों से दिया है, नहीं तो वह ज्ञान निरर्थक है, अशक्त और दुखदायक हो जाता है[1]। बौद्ध सार में गुरु को ईश्वर से महान कहा है[2]। सिद्ध और जैन कवियों ने गुरु की महिमा का गान किया है । मंत्रयान में मंत्रों की सिद्धि के लिए गुरु की आवश्यकता समझी गई है[3]। नाथ सम्प्रदाय में योग मार्ग पर अग्रसर होने के लिए साधक की बड़ी आवश्यकता है[4]। इन सभी ने गुरु को पथ-प्रदर्शक, ज्ञान का सागर कहा है । संस्कृत में कवियों ने गुरु की उपमा सूर्य, कमल, चन्द्र, स्वर्ण से दी है । ब्रह्म की परम्परा में स्वतः पूर्ण, स्वतः अनादि, अनाम माना जाता है । गुरु अपूर्ण को पूर्ण बनाने वाला सर्वात्मा का रहस्य बताने वाला, ब्रह्म के तत्वों को प्रकाशित करने वाला है । गूढ़ से गूढ़ समस्या का हल निकालने वाला, अनुभवी, सत्य संधी महानात्मा को गुरु कहते हैं । सूत-संहिता में कहा है कि वह वर्णाश्रम से परे है और समस्त गुरुओं का साक्षात् गुरु है, न उस से कोई बड़ा है न बराबर[5]।

कबीर दास जी कहते हैं कि हमें दीपक लिए गुरु रास्ते में मिले, हमारे अवगुणों को मेट कर पूर्ण सहायता की[6]। प्रेम की कटारी से

१- घेरंड संहिता तृतीयोपदेश श्लोक १०

२- संत दर्शन - डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित पृ. १५

३- हिंदी काव्यधारा - राहुल सांकृत्यायन

४- हिंदी साहित्य की भूमिका पृ. ५५

५- [illegible] - कबीर - हजारीप्रसाद द्विवेदी - पृ. २१ पर उद्धृत

६- कबीर साखी संग्रह [illegible] पृ. सं. ५४/८

मार कर हमें जगाया, प्रेम के बादल बरसाए ।[1] प्रेम की मिट्टी (गिलोवा) से महल बनाया ।[2] गुरू की भक्ति से ज्ञान, प्रेम, दया, तथा विश्वास मिलता है ।[3] जैसा जिस को गुरू मिलता है वैसी ही उस की बुद्धि होती है ।[4] सतगुरू के समान कोई सगा नहीं है[5]। गुरू के रूठने से कहीं जगह नहीं[6]। गुरू गोविन्द से भी बड़े हैं[7]। वह अमृत की खान हैं, सच्चे सूरमा हैं[8] । वह कुम्हार की तरह शिष्य की खोटाई निकाल देते हैं[9] । भृंग के समान शिष्य का रूप बदल देते हैं[10]। इन की महिमा अनन्त है इन्होंने अनन्त कृपा की ।

> सब धरती कागद करूं, लेखन सब बन राय[11],
> सात समुंद्र की मसि करूं गुरू गुन लिखा न जाय ।

नारद भक्ति सूत्र में एक जगह कहा है कि विषय त्याग और कुसंग त्याग से भक्ति आती है । अखंड भजन से भी भक्ति आती है किन्तु प्रधान रूप से महात्मा की कृपा तथा ईश्वर कृपा के लेश मात्र से यह प्राप्त हो जाता है । इन्हीं विचारों की अभिव्यक्ति हमें कई सन्तों में मिलती है । रैदास जी ने भी ऐसे ही भाव व्यक्त किए हैं, पिछले भाग्य के कारण गुरू परम पुरुष से मिलाते हैं[12], जैसे लोहा पारस के छूने से सोना हो जाता है वैसे ही गुरू के स्पर्श से जीव की मनोवृत्ति बदल जाती है[13]। नानक कहते हैं कि बिना गुरू का शब्द जाने पार होना कठिन है । गुरूमुख अपना गढ़ बना लेता है ।

> सचा नाम अराधिया, जम ते भन्ना जाहि ।
> नानक करमी सार है, गुरूमुख पढ़िया राहि ।[14]

- -

१ से ११ - कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ३९।७, ५८।३, ३०।३, ३०।१, ४६।५, ३४।४, ७६।७, ३७।३, ९।१, १४।१

१२-१३ सन्त बानी संग्रह रैदास पद सं० पृ० सं० ७।६६, ८।६६

१४- साखी संग्रह नानक पद सं० पृ० सं० १।५६७

कबीर की भाँति दादू को भी गुरु दीपक लिए मार्ग में मिले, उन्हों ने मस्तक पर हाथ रखा[१]। गुरु के ज्ञान से ही प्रीतम तक पहुंच सके[२]। बज्र कपाट को गुरु ही खोलने वाले हैं[३]। गुरु ने अंजन लगा कर नैन खोल दिए ऐसा ज्ञान दिया कि बहरे सुनने लगे, गूंगे बोलने लगे[४]। गुरु भृंगी है, गुरु गारुड़ी है, गुरु पारस रूप है, गोविन्द के बिना अंधकार नहीं मिटता[५]।मलूकदास के विचार से भगवान भी तभी कुछ देते हैं जब गुरु कृपा करते हैं[६]। माया, मोह गुरु की कृपा से जीता जा सकता है[७]। सुगम पंथ का बताने वाला वही गुरु है जो दूसरे के दुख को जानता है[८]। सुन्दरदास कहते हैं आत्मा और परमात्मा के प्रति जो भ्रम था वह अब गुरु ने मिटा दिया[९]। शब्द की औषधि से रोग दूर हो गया[१०]। परमेश्वर और गुरु एक ही हैं[११]। गुरु की समबुद्धि होती है[१२] । चरनदास जी कहते हैं कि मन रूपी मृग के लिए गुरु व्याध है । शब्दों के बाण से मारते हैं[१३]। सारा जग भिखारी है[१४] । जग जीवन साहब गुरु के पैरों को पकड़ने को कहते हैं वही उबार सकते हैं[१५] । यारी साहब को तारने में गुरु ही समर्थ हैं[१६]।दरिया साहब (बिहार वाले) कहते हैं कि सत गुरु जहाज है, सत गुरु के शब्दों को ध्यान से देखो सतगुरु के चरण कमल की ही आशा है, ज्ञान देकर प्रकाशित करने वाले हैं[१७]।

दरिया साहब (मारवाड़ वाले) कहते हैं कि गुरु भृंगी है[१८] ।

---

१ से ५ - दादू दयाल की बानी पद सं० 'गु० अं० ३।१, २२।३, ६।१, ७।१, १४३।१

६,७,८- सन्तबानी संग्रह मलूकदास " १।९९, ३।९९, २।९९

९ से १२- " सुन्दरदास " १०।१०७, २।१०६, ३।१०६, ६।१०

१३, १४- " चरनदास " २।५३, १।५३

१५- " जगजीवन साहब " ६।११८

१६- " यारी साहब " १०।१२१

१७- " दरिया साहब (बिहार) १।१२१

१८- " दरिया साहब (मारवाड़) ५/१२०

मुक्ति के दाता हैं, संजीवन देकर जिलाया भ्रम को मैंट दिया[१] । पिछले जन्म के कर्म से गुरु मिले[२]। सूखी बेल को हरा कर दिया[३]। दूलन दास जी कहते हैं -

गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु हैं, गुरु संकर गुरु साधु[४]

दूलन गुरु गोविन्द भजु, गुरु मत अगम अगाध ।

गुरु सत् के सम्मुख रहते हैं । सद्गुरु से दान माँगते हैं कि सदैव सुरति चरण कमल में दृढ़ रहे[५]। केशव दास जी गुरु के शब्दों का भजन करते हैं[६]। चरन दास गुरु के समान किसी को नहीं मानते[७]। व्यथा को मेटने वाले हैं[८]। अहंकार का नाश हो जाता है[९] । शरीर अमूल्य हो जाता है [१०]। जीव ब्रह्म बन जाता है[११] । गुरु सूरमा हैं [१२]। गुरु शिकारी हैं[१३]। गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु हैं[१४]। सहजो बाई का कहना है कि गुरु के बिना सब बुद्धि बेकार है । ज्ञान नहीं मिलता है[१५] । गुरु के झिड़कने पर भी दुवार न छोड़े[१६]। गुरु ज्ञान की दीपक लिए हाथ में आए[१७]। कौओं को हंस बना लिया[१८]। गुरु रंगरेज हैं[१९]। जहाँ चींटी की पहुँच नहीं वहाँ गुरु पहुँचते हैं[२०] । दयाबाई गुरु को ब्रह्म रूप,

---

१,२,३- सन्त बानी संग्रह दरिया साहिब (मारवाड़) पद सं० पृ० सं० ६।१२६, ४।१२६, ७।१२६

४,५- " दूलन दास पद सं० पृ०सं० १।१३३, ३।१३४

६- " केशव दास " २।१४१

७ से १४- " चरन दास " १।१४२, २।१४२, १०।१४३, ५।१४२, ८।१४२, १०।१४३, १२।१४३, ७।१४६

१५ से २०- " सहजो बाई " १।१५४, ५।१५४, ७।१५५, ८।१५५, १०।१५५, ९।१५५

दीन दयाल, सुख धाम, ताप हरण, सुख करण समझती हैं[1]। अन्ध कूप में पड़े हुए को उपदेश देकर निकाला[2]। त्रिविधि तापों का नाश करने वाले हैं[3]। गरीबदास ने मलयगच्छ से गुरु की उपमा दी है[4]। रोम रोम को प्रकाशित करने वाला है[5]। प्रेम का प्याला पिलाते हैं तेज पुंज के अंग हैं[6]। ज्ञान के द्वारा अमरापुर पहुंचाया। भ्रम नष्ट किए[7]। पूरा ब्रह्म है। रमता राम है। आदि अनादि हैं[8]। पारस रूप हैं[9]। गुलाल साहब का विचार है कि जिन्होंने ब्रह्म को विचारा वही गुरु है[10]। भीखा साहब का कहना है कि गुरु के प्रताप से आत्मा को देख सकें[11]। चरणों में स्थान गुरु के कारण मिला[12]। पल्टू कहते हैं कि भव सागर से पार उतरने के लिए राम जहाज हैं[13]। सतै गुरु के चरणों की चोट मन में लगती है।

पल्टू सोयी पीर है, जो जाने पर पीर[14],
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बे पीर।

संत - साधु

तुलसी साहब कहते हैं कि बिना सद्गुरु के बन्धन नहीं छूटते[15]। काल को नष्ट कर देते हैं[16]। सद् गुरु की शरण में अमर फल खाने को मिलता है[17]। कर्म की रेखा तक मिट जाती है[18]। गुरु के बाद सन्तों ने जिसकी पूजा की है वह सन्त अथवा साधु हैं। जो चिरन्तन सत्य की अनुभूति कर चुका है और जो दिव्य

---

१ से ३- सन्तबानी संग्रह दयाबाई पद सं० पृ०सं० ४।१६५, ५।१६५, १०।१६५
४ से ९- " गरीबदास " ३।१८१, ४।१८१, ८।१८२, १०।१८२, १५-१७।१८२, १९।१८२
१०- " गुलाल साहिब " ९।२०९
११, १२- " भीखा साहिब " १।२१०, २।२१०
१३-१४ " पल्टू साहिब " ३।२१४, १६।२२५
१५ से १८- " तुलसी साहिब " ६,७,९,११।२२७

मधुर-ज्योति के दर्शन प्राप्त कर के सायुज्य प्राप्त कर चुका है वही सन्त है[१]। सद्भाव व साधु भाव रखकर प्राणी मात्र से सुहृदय भाव रखना सर्वभूतहितरत रहना और राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों में न पड़ना सद् है[२]। गोस्वामी तुलसीदास जी ने सन्त और अनन्त को एक ही माना है ।

सन्तों के लक्षण पर सभी सन्त एक मत हैं । सन्त माया से विरक्त होकर आत्मा के उद्धार के लिए काम करते हैं । शत्रु, मित्र, प्रिय अप्रिय सभी के प्रति सद् भाव रखते हैं ।ईश्वर के भजन में निरन्तर लीन रहते हैं । हर्ष-शोक, ममत्व, परत्व का प्रभाव नहीं होता है । परहित हेतु प्राणों को भी निछावर करते हैं । कबीरदास के सन्त निर्वैरी, निष्काम हरिभक्ति तत्पर तथा विषय विरक्त होते हैं[३]। साधु किसी को दुख नहीं देते, बगीचे में रहते हुए भी फूल नहीं छूते[४]। हिम से भी ज्यादा शीतल होते हैं[५]। खजूर के पेड़ पर चढ़ना जैसे कठिन है वैसे ही सन्त कहलाना कठिन है[६]। वृक्ष, नदी, बादल के समान वे परमार्थी होते हैं[७]। मोती के आब के समान होते हैं । रत्न भरे समुद्र होते हैं[८]। कमल पत्र के समान होते हैं[९]। सिंह की उपाधि दी है साथ जमात में नहीं चलते[१०]।

दादू कहते हैं कि साधु का दर्शन दुर्लभ है[११]। पारस के समान,[१२] शीतल चन्दन के समान होते हैं[१३]। अवगुण छोड़कर गुण ग्रहण करते हैं[१४]। मलूकदास के विचार से निष्कपट ~~निर्लोभ~~ होते हैं । दिल से फकीर होते हैं । बाहर भीतर एक

२- गीता १२।१५   १- सन्तदर्शन आ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित पृ. ५
३- सन्तबानी संग्रह कबीर साहेब पद सं० पृ०सं० २।७७

४ से १०- कबीर साखी संग्रह " ५९।१२९, ३०।१३०, १९।१२८, ७०।१२८
७६।१३०, ६३।१२९, १३।१२५

११ से १४- सन्त बानी संग्रह दादू " ४/८० ९/८४ ९।१८६, ९।१८०

होते हैं[१]। केशवदास का कहना है कि सत् शब्द को सुनकर हरि पर निछावर होते हैं[२]। चरनदास सन्तों को बैरागी, निष्काम भजन करने वाला, प्रीतम के चरण कमलों में ध्यान रखने वाला और उपदेश देने वाला कहते हैं[३]।

सहजो बाई का विचार है कि साधु दुख हरते हैं[४]। साधु के संग से मैला कुचैला गंगा में मिल जाता है[५]। काग से हंस बना देते हैं[६]। व्याधि छूट जाती है[७]। दर्शन पर प्राण निछावर करना चाहिए[८]। दया बाई का कहना है कि सन्त राम स्नेही तन, मन, धन, छोड़कर राम भजन करने वाले[९], काम क्रोध मद से हीन, ब्रह्म भाव लवलीन[१०], त्रिविधि ताप मिटाने वाले हरि रूप होते हैं[११]। भीखा साहब को सन्तों के चरण के स्पर्श से आकाश में वेणु सुनाई देती है[१२]। साधु के रहने के ढंग से उस की पहचान होती है[१३]। पल्टू को सन्त का मिलना राम के मिलने से भी कठिन लगता है[१४]। साधु के नाम से पाप छूट जाते हैं[१५]। कबीर के समान वह भी सन्त को परमार्थी बताते हैं -

वृक्ष फरै न आप को, नदी न अंचवै नीर[१६],
परस्वारथ के कारने साधुन धरिउ शरीर ।

१- सन्तबानी संग्रह मलूकदास पद सं० पृ०सं० २।१०२
२- " केशवदास " १०।१४१
३- " चरनदास " ८।१४८
४ से ८- " सहजोबाई " २,३,४,५।१५८, ६।१५८
९ से ११- " दयाबाई " १,३,४।१७७
१२,१३- " भीखा साहिब " १।२१०, १९।२१३,
१४ से १५ " पल्टू साहिब " १,८,३।२२८
१६ कबीर साखी संग्रह " २०।१२६

गरीबदास भी वृक्ष नदी और साधु को एक ही स्वभाव के समझते हैं[१]। सदा हरि नाम में लीन रहते हैं[२]। सरोवर में हंस के समान होते हैं[३]। सन्तों के पीछे भगवान होते हैं[४]। साधु सन्त विरले ही मिलते हैं -

पंडित कोटि अनन्त हैं ज्ञानी कोटि अनन्त[५],
श्रोता कोटि अनन्त हैं विरले साधु सन्त ।

पतिव्रता

सन्तों ने अपने काव्य में पतिव्रता की भी बड़ी प्रशंसा की है । सांसारिक दृष्टि से पतिव्रता के जो अर्थ होते हैं उस से भिन्न अर्थ में सन्तों ने पतिव्रता की प्रशंसा की है ।पतिव्रता वही है जो ब्रह्म रूपी पति में लीन हो । उस की प्रीति की अनन्यता ही भक्ति है तथा ब्रह्म से बिछोह ही विरह है । पतिव्रता का मैला कुचैला-पन काम,क्रोध आदि मन के विकार हैं । अहंभाव को नष्ट कर के जो भक्त ब्रह्म को समर्पण कर लेता है, वही सच्चे रूप में पतिव्रता होने का अधिकारी है । पतिव्रता के निरन्तर सुमिरण का सन्त कवियों ने वर्णन किया है ।

कबीर दास जी कहते हैं पतिव्रता केवल पति का ही ध्यान करती है और उसे कोई अच्छा नहीं लगता, आठों पहर पति के ध्यान में रहती है कि नींद भी नहीं आती[६] ।पतिव्रता के हृदय में प्रीति है इस से वह मुंह से नाम नहीं लेती उस का हृदय ही सुमिरन करता रहता है[७]-

कबीर सीप समुद्र की, रटै पियास पियास[८],
और बूंद को न गहै स्वाति बूंद की आस ।

१-५ सन्तबानी संग्रह गरीबदास पद सं० पृ० सं० ४,५/१९८,८,१३,१७,१८/१९९

६-८ कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० २१/३०, १८/३०, ५/३९

पतिव्रता के प्रेम की उत्कटता सीप की स्वाति बूंद की तरह बताई है । इसके अतिरिक्त पपीहे के प्रेम से भी समानता है । पपीहा मरते दम तक जल में पड़ा रहने पर भी चोंच जल में नहीं डालता, वैसे ही संसार में रहते हुए भी वह हरि भजन में लीन रहती है[१]। पतिव्रता की इच्छा होती है कि वह अपने प्रियतम को अपने नैनों में छिपा ले, न वह देखे, न दूसरे देख सकें और न उस को कोई देख सके[२] ।

कबीर दास जी ने एक पति को न भजने वाली को व्यभिचारिणी कहा है, जिस का हृदय मैला है तथा बहुत से पति हैं वह व्यभिचारिणी है[३]।सती का भी वर्णन किया है पतिव्रता पति का सुमिरन करते करते सांसारिक कांटों की सेज पर प्रियतम को स्मरण करते करते ही जल जाती है । यही प्रेम की पराकाष्ठा है अपने तन, मन से प्रियतम में लीन हो जाती है ।

दादू सब को पतिव्रता का ज्ञान सुनाते हैं उन का कहना है कि तन, मन, प्राण सब तेरा है केवल तू ही मेरा है[४]।दादू के विचार से ही पतिव्रता अपने पति का नाम नहीं लेती है केवल आत्म समर्पण करती है[५]। स्नेह के बिना प्रीति हो ही नहीं सकती है जब तक उस में लीन न हो जावो तब तक सब शृंगार झूठे हैं[६]। चरनदास कहते हैं कि पतिव्रता पिय के रंग में लीन[७], आज्ञाकारी[८], सत्यवादी[९] तथा पति को ही केवल देखती है[१०] । गरीब दास का कहना है कि पतिव्रता पाँचों इन्द्रियों को साध कर राम नाम बोलती बोलती सती हो जाती है[११]। तुलसी

१-३ कबीर साखी संग्रह पद सं० पृष्ठांक ६।९९, ४।९८

४-५ सन्तबानी संग्रह दादू दयाल पद सं० पृष्ठांक ६,५,३।९१

६- " " "

७-१० " चरनदास " १।१४६, ३,८,५।१४७

११- " गरीबदास " ६।१७७

साहब कहते हैं पतिव्रता को और दूसरों से कोई काम नहीं रहता वह तो केवल पति की आज्ञाकारी होकर पति को ही देखती है[१]।

सती - कबीर ने सती और सूर दोनों को ही प्रेम का आदर्श माना है। वास्तव में सच्चा भक्त ही सूर एवं सती है क्योंकि उस में आत्म बलिदान पूरी तरह से है -

साधु सती और सूरमा, इन पटतर कोउ नाहिं,
अगम पंथ को पग धरै, डिगे तो कहाँ समाय[२]।

इनके प्रेम में एक विशेषता यह होती है कि इन का प्रेम एक रस रहता है ऐसा प्रेम जो भावावेश में उफन नहीं पड़ता, विरह ताप से बैठ नहीं जाता तथा आवेश में कर्म की मर्यादा भी नहीं तोड़ डालता। ऐसे ही प्रेम के लिए रवीन्द्र नाथ टैगोर जी ने अपनी कविता नैवेद्य में की है, मुझे शान्ति भक्ति रूपी स्निग्ध अमृत से भरा हुआ कलश दो[३]।

सूरमा - सन्तों ने सूरमा की बड़ी प्रशंसा की है जो माया से वीरता और धीरता पूर्वक योद्धा की तरह युद्ध कर सके वही सन्तों की भाषा में सूरमा है। माया से वही युद्ध करने में समर्थशील होगा, जिसे संसार के प्रलोभन झुका न सकें, जो वासनाओं का दमन कर सके, जो माया के साथी काम, क्रोध, लोभ, मोह को अपनी भक्ति की कृपाण द्वारा काट कर ब्रह्म के निवास स्थान पर विजय प्राप्ति कर सके।

१- सन्त बानी संग्रह तुलसी साहिब पद सं० पृ० सं० ६।२२९

२- कबीर साखी संग्रह पृ० - ३ञ्पाद्र.१२

३- नैवेद्य - रवीन्द्र नाथ टैगोर की कविता से उद्धृत

कबीर दास जी सूरमा की विशेषता बताते हैं जो पांचो इन्द्रियों
ा वश में कर ले, वही शूर वीर है[१]। पांचों शत्रुओं को मार कर मन रूपी गढ़
ा तोड़ कर जो अपने धनी को सिर नवा दे वही सच्चा वीर है[२]। सूरों की
ाई का भी वर्णन प्रतीक के रूप में किया है-

जुझा फरक्के शुन्य में बाजे अनहद तूर[३],
तकिया है मैदान में पहुँचेगा कोई सूर ।

यह सच है कि एक बार जो मैदान में युद्ध के लिए आ जाता
उस के लिए भागना कठिन हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में तो सिर सौंपना
भला है, सिर सौंपने के बाद गुरु भी उसे अपनी शरण में ले लेते हैं । कबीर कहते
कि नेह निभाना बड़ा कठिन होता है शूर वीर ही इसे कर सकता है शूर वीर
ि के लिए लड़ते लड़ते मैदान में पुरजा पुरजा तक चाहे हो जावे, पर रण क्षेत्र
ीं छोड़ता[४] ।

दादू भी इसी तरह के भाव सूर वीर के प्रति रखते हैं ।
ते हैं सूर वीर को कायरी नहीं आती चाहे तिल तिल कट जावे पर युद्ध नहीं
ड़ता[५]। तन मन सौंपने से ही विजय होती है । गुरु नानक जी कहते हैं कि जो
ने मन पर हुकुम रखता है वही सूर वीर है[६] ।कबीर की तरह इन्द्रियों को वश में
ने को कहते हैं[७]। दरिया साहब (मारवाड़ वाले) कहते हैं कि सूर वीर गुरुमुखी

से ४ - कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ५४,५८।३६,७३।३८, ४।२२
सन्त बानी संग्रह - दादू दयाल पद सं० पृ० सं० २।९०
७- " नानक " १।३९, २।३९

सन्तों की मान्यतायें

अभी तक सन्त साहित्य में सन्तों की साधना पद्धति तथा पूजनीय व्यक्तियों का वर्णन हुआ है । सन्तों की अपनी मान्यतायें भी थीं । परम्परा से प्राप्त निर्गुण ब्रह्म को ही वे सब कुछ मानते हैं । ऋग-वेद में निर्गुण तत्व पुरुष की भावना की स्थापना पुरुष से पहले ही हो चुकी थी। यही अथर्वेद में व्रात्य-भावना के रूप में पल्लवित हुई[1]। श्वेताश्वतर में पुरुष गुणों से शून्य या परे माना गया है ।अन्तर्यामी होता हुआ भी सूक्ष्म है[2] ।बृहदा-रण्यकोपनिषद में पुरुष को अक्षर कहा गया है । न वह बड़ा है, न छोटा, न रंग रूप में, न वायु है, न आकाश । वह अरूप अनादि अनन्त है[3] । सांख्य का पुरुष निर्गुण है । महाभारत में ब्रह्म को सभी सीमाधार से परे सूक्ष्म स्थित में माना है[4]। मुंड - कोपनिषद में ब्रह्म को एक अखंड ज्योति पुंज माना है उसी पुंज की चिनगारी है[5] ।

कबीर ने इस भावना को इन शब्दों में व्यक्त किया है "जाके मुंह माथा नहीं, नाही रूप अनूप[6]"। "तीन गुनन ते भिन्न है पुरुष अलख अपार गीता में कृष्ण ने अपने लोक को "तेजस्तेजस्विनामहम्" कहा है । वैसे ही कबीर ने भी सत्य लोक को जहां ब्रह्म का निवास है ज्योतिर्मय कहा है । दादू का भी कहना

---

१. चरन दास - डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित पृ० - ३७६

२- "एकोदेव सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी भूतान्तरात्मा अध्याय" ६।११

३- बृहदारण्यक ब्राह्मण - ८।८।८

४- महाभारत आदि पर्व १।३०

५- मुंडक - २।१।१

६,७- सन्त बानी संग्रह कबीर पद सं० पृ० सं० ४।२३, २।२३

ज्योतिर्पुन्ज का प्रकाश वहाँ फैला है[1] । ब्रह्म निरन्जन, निराकार, परम पुरुष, अलख, अगोचर है -

परब्रह्म परापर सो मम देव निरंजन,

निराकार निर्मल तस्य दादू बन्दन[2]।

दादू को निर्गुण ब्रह्म ने ही अधिक आकर्षित किया है । नानक ने ब्रह्म की प्राप्ति में धरम, ज्ञान, कर्म तथा सच के जो स्तर बनाए हैं उन में सच के स्तर पर पहुंचने पर प्रकाश पुंज मिलता है[3]। यहाँ नानक को अनहद भेरी सुनाई देती है निर्गुण ब्रह्म को वह भी मानते हैं[4]।

सुन्दर दास के परम आराध्य की ज्योति फैली है पर पूर्णतया वह वर्णन न कर सके । वे समझ नहीं पाते कि उसे 'है' कहा जाय या 'नहीं'। अतः दुविधा में होकर कहते हैं कि -

नाहीं नाहीं कर कहे है है कहै बखानि[5],

नाहीं है के मध्य है सो अनुभव की जान ।

मलूक दास ने नमो निरंजन, निराकार, अविगत, पुरुष, अलेख का सुमिरन करने को कहा है[6]। ब्रह्म के स्थान पर पहुंचने में झीना झीना

१,२- दादू दयाल जी की बानी पद सं० पृ० सं० २५।१९३, ४।१९१

३- सिद्धिनाथ तिवारी - नानक पृ. २२६ निर्गुण काव्यदर्शन

४- " " " " 'अनहदबाजतभेरी' पृ. २२२

५- संतबानी संग्रह सुंदरदासजी पद्य. पृ. सं. ४/१०७

६- संत बानी संग्रह - मलूकदास पद्य. पृ. सं. १/१०२

सूक्ष्म मार्ग मिलता है जहाँ कि हवा का भी प्रवेश नहीं है[illegible]। सहजो बाई ने कहा है -

रूप बरन जाके नहीं सहजो रंग न देह[1],
मीत इष्ट जाके नहीं जाति पाँति न गेह ।

दया बाई ने भी अजर, अमर, अविगत, अमित, अलख तथा आनन्दमय ब्रह्म को कहा है[2]। यारी साहब कहते हैं कि ब्रह्म ज्योति स्वरूप है[3]। बुल्ला साहब का कहना है ब्रह्म न कभी टूटता है न फूटता है सब कलाओं में पूर्ण है, हम से वर्णन नहीं हो पाता[4]। धरनी दास ने उस स्थान में कहा है कि ज्योति प्रकट हो, मणि माणिक्य मुक्ता झरते हैं[5]। दरिया साहब(मारवाड़ वाले) कहते हैं कि ब्रह्म का घर अगम्य है । कोई उस की रूप रेखा नहीं है[6]। ब्रह्म निराधार है, निर्लेप तथा अनहद है[7]। दूलन दास ने भी ब्रह्म के निवास स्थान में कहा है, न रात होती है, न दिन, न शाम, न सवेरा, शून्य में ही शब्दों की ध्वनि सुनाई देती है[8]। गुलाल साहब को ज्योति स्वरूपी ब्रह्म मिले[9]। उन के स्थान में बिना जल के कमल से खिले हैं तथा भौंरों का गुंजार होता है[10]।

१- सन्तबानी संग्रह सहजो बाई पद सं० पृ० सं० ३।१६३
२ - " दया बाई " ८।१८०
३ - " यारी साहब " १।१४७
४ - " बुल्ला साहब " ४।१४७, ~~१।११२~~
५ - " धरनी दास " ~~[illegible], [illegible]~~ १।१९२
६-७ " दरिया साहब (मारवाड़ वाले) " ११।१३१ . ८।१३१
८ - " दूलन दास " १।१३६
९-१० " गुलाल साहब " ७।२०९, ४।२०८

निर्गुण ब्रह्म का वर्णन भी इन सन्तों ने कई तरह से किया, जिसका विश्लेषण वेद नेति, नेति कर के करते हैं उसी को सन्तों ने विचार रूप में
डा० गोविंद त्रिगुणायत का मानना है इन संतों ने
वर्णन किया है ।, ज्योति स्वरूप ब्रह्म, शब्द रूप, ब्रह्म, शून्य रूप ब्रह्म, रसानन्द स्वरूप ब्रह्म, तथा सत्य एवं ज्ञान स्वरूप ब्रह्म के रूप से वर्णन किया है । पर इन निर्गुण की अद्वैत् भावना के साथ साथ द्वैत की स्थिति पर भी सन्त पहुंच गए हैं । निर्गुण ब्रह्म आराधना में सगुण ब्रह्म हो जाता है, बिना सगुण हुए मनन कैसे हो । गीता में कहा है कि यद्यपि ब्रह्म निर्गुण है पर भक्तों के लिए स्थूल रूप धारण करना पड़ता है वास्तव में निर्गुण ब्रह्म ज्ञान-योग का विषय है । उपनिषदों में भी ध्यान-योगियों को मानस प्रत्यक्ष की कुछ न कुछ विधि अपनानी पड़ी । सन्तों में प्रेम की उत्कटता, उनका मर्मी हृदय, उन के विरह की टीसन इस बात की साक्षी है कि द्वैत की भावना अवश्य होती है । बिना द्वैत की भावना के विरह कैसे हो सकता है । साधना करने के लिए परम पुरुष से किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है । इन सन्तों में परम तत्व और आत्मा के बीच माधुर्य भाव स्थापित करने के लिए पुरुष और नारी भाव आरोपित किया है । विरह की अनुभूति में कबीर की तड़पन घनानन्द की गोपियों की तरह है । धरणी दास की विरहिणी आत्मा गोपियों की तरह व्याकुल है । चरणदास के दिल में ब्रह्म के दर्शन की उत्कट लालसा है । सुन्दर दास सूक्ष्म ब्रह्म की उपासना में सुन्दर राखे नैन में पलक उघारे नाहिं, कहते हैं। दादू भी ब्रह्म की आराधना में मूर्ति पूजक बन जाते हैं । नानक भी त्रिमूर्ति में विश्वास करते हैं । रैदास भी गोपाल, केशव, दीनानाथ, के रूप का स्मरण करते हैं । मलूक दास तो दाता राम के भरोसे जीवन यापन करने को ही कहते हैं ।

श्री विश्वनाथ तिवारी जी कहते हैं कि सन्तों ने ब्रह्म के साक्षात्कार की जो विधि अपनाई है वह तो बिल्कुल रूपोपासना ही है । वह योगी सहस्त्र चक्र या ब्रह्म रंध्र में अनहदनाद सुनते हैं[1]। प्रेम की अनुभूति होने पर ही सहस्त्र चक्र में ब्रह्म की झलक मिल सकती है, गोस्वामी तुलसी दास जी के शब्दों के अनुसार वास्तव में सगुण और अगुण में कोई भेद नहीं है -

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा, कहहिं हरिहि मन सम्भव भेदा ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी हृदय आराधना के लिए कोई ठोस चीज चाहता है । हृदय सगुण में रमना चाहता है । मस्तिष्क को निर्गुण के बिना चैन नहीं। इसी से सन्तों ने सगुण ब्रह्म का साकार व्यक्त रूप और अव्यक्त रूप से वर्णन किया है । साकार व्यक्त रूप के वर्णन में, उन्हों ने अपनी भावनाओं से दांपत्य एवं वात्सल्य भावना का वर्णन किया है । बुद्धि के द्वारा ब्रह्म से साकार रूप बनाकर प्रतीकों में उस का वर्णन किया है । ब्रह्म को किसी ने कुम्हार का रूप दिया । किसी ने पारस-मणि, भृंगी आदि का । ब्रह्म के अव्यक्त सगुण का वर्णन किया है। ब्रह्म एक है, ब्रह्म अखंड है, ब्रह्म पूर्ण है, ब्रह्म आनन्द स्वरूप है, ब्रह्म ज्ञान तथा सत्य स्वरूप है । ब्रह्म का ज्योति-स्वर भी अनन्त प्रकाश एवं नूर रूप में वर्णन किया है ।

मानव शरीर में चेतना की स्थिति सर्व मान्य है । इसी चेतना को आत्मा तथा जीव कहा गया है । आत्मा चेतना युक्त है । वह अमर तथा अविकृत है । वह षड्-विकारों से रहित है । इस का जन्म तथा मृत्यु नहीं होती । इस का हनन नहीं होता । वह पर्वत की भांति स्थिर अक्षर है । 'कठोपनिषद् में आत्मा के नजायते म्रियते वा कदा है[2]'। इस से पता चलता है कि आत्मा

१- निर्गुण काव्य दर्शन - पृ० ७५ ।

२- कठोपनिषद् - १, २, १८

शाश्वत् है । माण्डूक्योपनिषद् में उसे आवरण-शून्य, प्रकृति से निर्मल, नित्य शुद्ध और मुक्ति कहा है[1]। गीता में कहा गया है कि पुरुष और प्रकृति यह दोनों अनादि हैं[2]। परमात्मा जीव-आत्मा का निरीक्षक है और वही जीवात्मा में व्याप्त है । मानव देह आत्मा से भिन्न है । आत्मा न तो उत्पन्न होती है, न मरती है । उपनिषदों में भी ब्रह्म और आत्मा को एक ही प्रकार से व्यक्त किया गया है । यह आत्मा ब्रह्म है 'अयमात्मा ब्रह्म' मैं ब्रह्म हूँ, 'अहं ब्रह्मोऽस्मि'[4] । गीता में आत्मा को शुद्ध-बुद्ध एवं मुक्त स्वरूप कहा है । शस्त्र उसे छेद नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता तथा वायु सुखा नहीं सकती[5] ।

सन्तों ने भी आत्मा को ब्रह्म का अंश माना है । इन सन्तों ने विचारात्मक तथा भावात्मक दो ढंग से आत्मा का वर्णन किया है । विचारात्मक सम्बन्ध अद्वैतवाद से है, भावात्मक का रहस्यवादी से । इन सन्तों ने आत्मा को प्राण-स्वरूप, ज्योति-स्वरूप, साक्षी स्वरूप, प्रकाश-रूप, तथा आनन्द स्वरूप वर्णन किया है[6]। इन सन्तों के निरूपण में इन का चिन्तन तर्क मूलक न होकर स्वानुभूति मूलक है । एक ही दीपक कमरे भर को प्रकाशित कर देता है उसी तरह चैतन्य आत्म तत्व सभी पदार्थों को चैतन्य युक्त कर देता है । इन्हीं विचारों को हम कबीर के आत्म विचारों में पाते हैं । कबीर आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं मानते । बूंद और समुद्र के समान आत्मा और ब्रह्म का सम्बन्ध है ।

१- माण्डूक्योपनिषद् - ९८
२- गीता अ० १५ श्लो० १६
३- ब्रहदु - २।५।१९
४- ब्रहदु - १४।१०
५- गीता - २।२३
६- कबीर-दर्शन - डा० रामजीलाल सहायक पृ० ४६५

बूंद समानी समुद्र में सोकत हेरी जाय,
समुद्र समाना बूंद में, सोकत हेरया जाय[1]।

इसी तरह जल और घट वाली उपमा है । जल से भरा घड़ा फूट जाने पर उस का जल, जल में विलीन हो जाता है । जल में कुंभ कुम्भ में जल है, ~~बाहर में जल है~~, भीतर बाहर पानी[2]। कबीर ने आत्मा और जीवात्मा का भी एकीकरण किया है । शरीर रूपी मन्दिर में दिया के समान ज्योति जलती रहती है । जीव को इन्हों ने हंस कहा है । यह जीव अमर लोक से आया है ।कबीर ने आत्मा की विहंगम की कल्पना की है[3]। इसी तरह दादू भी ब्रह्म और आत्मा को एक ही कहते हैं[4]। धरनी दास कहते हैं किआत्मा शरीर में बिना बत्ती तेल के दिया के समान जला करती है[5]। आत्मा ही एक तत्व है । भीखा साहब कहते हैं कि ब्रह्म ही आत्म रूप है, वह अनन्त होकर सारे शरीरों में व्याप्त है[6]। आत्मा परमात्मा में कोई भेद नहीं है । रज्जब ने भी शरीर को कुम्भ माना है -

कामा कुम्भ जीव जल दर्शी, शशि सूरज प्रतिबिम्ब,
घट फूटे दिन कर मय अम्बातम अर अम्ब[7]।

रज्जब साहब कहते हैं रूई पांच तत्व है, बिनौला जीव है[8] । मलूक दास जी भी कहते हैं प्रत्येक कली की सुगन्ध की तरह सब शरीरों में आत्मा व्याप्त है[9]। सुन्दर दास ने शरीर और आत्मा का सम्बन्ध माली और बगीचे की

१,२,३- कबीर ग्रंथावली पृ० १७, १०३, ९४ पद सं. ३, ४८, २०

४- सन्त बानी संग्रह दादू पद सं० पृ० सं० ४।९८

५- " धरनीदास " १।११५

६- " भीखा " ३।२१३

७,८- रज्जब की बानी पृ १२५ पद सं १३४

सन्त बानी संग्रह मलूकदास पद सं० पृ० सं० ६।१०५

तरह माना है । आत्मा को दीपक के समान भी माना है । यारी साहब कहते हैं क्योंकि स्वरूप आत्मा सब शरीरों में है[3]। दरिया साहब (बिहार वाले) कहते हैं बूंद सिंधु में मिल गया, कौन अलग कर सकता है[4]। सहजो बाई कहती है कि आत्मा को नित्य जानो[5]। तुलसी साहब कहते हैं ब्रह्म रूपी सूर्य की आत्मा किरण है । बिना दिया बत्ती के जीव शरीर में जगमगाता है[6]।

वेदान्त में मिलता है कि माया से आवृत्त आत्मा जीव है । यही विचार सन्तों का भी है । उपनिषदों में आत्मा के दो रूप मिलते हैं । कठोपनिषद् में इसे प्राप्तव्य कहा है[7]। श्री गोविन्द त्रिगुणायत का कहना है कि सुरति और निरति आत्मा के स्वरूपों का रूपान्तर है[8]। कबीर के विचार से निरति प्राप्तव्य आत्मा का शुद्ध मुक्त स्वरूप तथा सुरति प्राप्तात्मा है[9]। ऋग्वेद में आत्मा को प्राण भी कहा है[10]। सन्तों की भी यही मान्यता है ।

सन्तों ने माया को भी बड़ा विस्तार पूर्वक वर्णन किया है । इस की परम्परा भी पहले से चली आ रही है । दार्शनिकों ने माया को अज्ञान की मूलाधार सत्य को छिपाने वाली, आत्मा-परमात्मा के मिलन में बाधक तथा

1- संत बानी संग्रह यारी पद सं. पृ. सं. १।११०
2- " दरिया साहब (बिहार वाले) " ४।१२३
3- " सहजो बाई " ७।१६६
4- " तुलसी साहब " १।२३१
5- कठोपनिषद् पृ० १९८
6- हिंदी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि पृ [illegible]
7- कबीर ग्रंथावली पृ० १४ पद सं. २२
8- ऋग्वेद १।१६४।३१

जगत की प्रतीत मान्यता का आधार माना है । ऋग-वेद में माया शब्द का प्रयोग वेष-परिवर्तन के अर्थ में हुआ है ।

इन्द्रो मायाभि पुरूरूपईयते[1] ।

अर्थात् इन्द्र के रूप परिवर्तन के रूप में माया का प्रयोग हुआ है । उपनिषदों में नाम रूपात्मक जगत, अविद्या, भ्रम तथा प्रकृति को माया कहा है । गीता में माया को कृष्ण की शक्ति कहा है । बौद्ध दर्शन में माया के स्वप्नवाद क्षणिकवाद एवं शून्यवाद के रूप में प्रभावित हुआ है[2]। शंकराचार्य ने माया को भ्रम का रूप माना है । अत्यन्त गहन, दुस्तर एवं विलक्षण भी कहा है । सांख्य दर्शन के विचार से प्रकृति पुरूष को माया जाल में फंसाती रहती है । नाथ सम्प्रदाय में भी सदा-शिव की शक्ति को शुद्ध विद्या और यह जगत शुभ से भिन्न है, इस प्रकार की ईश्वर की वृत्ति का नाम माया बताया है[3]। मुस्लिम दर्शन में माया के स्थान पर शैतान का वर्णन पाया जाता है ।

माया की स्थिति सन्त साहित्य में कई रूपों में मानी गई है ।

(१) माया की स्थिति स्वप्न या छाया के समान ।

(२) माया को अव्यक्त तथा सर्व-व्यापक ।

बल्लभ सम्प्रदाय की तरह कबीर ने माया को विद्या और अविद्यामय कहा है -

माया है दुई भांति की देखौ ठोंकि बजाय[4] ।

एक मिलावै राम से, एक नरक लै जाय ।

१- ऋग्वेद ६।४७।१८
2- कबीर दर्शन- डा० रामजीलाल - माया का विवेचन पृ. १८०
३- चरनदास की विचारधारा पृ० ३२१

४- सन्त बानी संग्रह कबीर साहब पद सं० पृ० सं० १२।५८

विद्या रूपिणी माया साधकों के काम की है । इसी के आश्रय से साधक ब्रह्मपद तक पहुंच जाते हैं । पर अधिकतर अविद्या माया का ही विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है । कबीर ने माया को सांख्यवादियों के समान सगुण निर्गुण भी माना है ।

कबीर कहते हैं कि माया छाया एक सी, बिरला जाने कोय[1]। इन्होंने माया को अलख पुरुष राम को भुलाने वाली शक्ति भी कहा है ।

माया तो है राम की मोदी सब संसार
जा को चिट्ठी उतरी, सोई खरचन हार ।[2]

इन्होंने माया को विनाश शील, क्षणिक, भ्रमों को उत्पन्न करने वाली भी कहा है । माया ठगिनी, पापिनी, पिशाचिनी तथा वेश्या है । कबीर ने माया को दो रूप में बताया है । एक सांसारिक सुख ऐश्वर्य, मोह, बन्धन आदि दूसरे धन के रूप में। सुख ऐश्वर्य तथा धन के रूप को चंचल तथा छाया के समान वर्णन किया है -

कबीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार[3]
खावत खरचत मुक्ति दे, संचत नरक दुआर ।

सूम की माया पाप की मूल होती है ।[4] माया की दुर्गम घाटियां कनक और कामिनी होती हैं । यह रुई लपेटी आग के समान

- -

१-४ संत बानी संग्रह कबीर साहब पद सं० पृ० सं० १।५७, ७।५७, ५।५७, १०।५७

होती है[१] । कनक और कामिनी विष फल के समान है । विष फल को तो खाने से प्रभाव होता है इन का प्रभाव देखने से ही हो जाता है[२]।

गोस्वामी तुलसी दास जी ने माया रूपी नारि को सब से प्रबल कहा है । संसार में सब जगह माया का प्रसार है । दादू ने माया के सुख को स्वप्न में धन मिलने के सुख के समान क्षणिक कहा है[३]। माया मीठी बोली के समान है, जो हृदय में बैठकर कलेजा खाती है[४]। सुर नर मुनि को वश में किए है[५]। यह डाकिनी है, हाव भाव से वश प्रकट करती है[६]। प्रभु का दर्शन न हो पाए ऐसा प्रयत्न करती है। भूल भुलैया में डालती है । कनक और कामिनी के रूप में संसार में फैली है । माया के कुएं में सारा संसार औंधे मुंह होकर गिर रहा है । ब्रह्म और जीव साथ साथ रहते हुए भी माया का थोड़ा सा भी अंश बीच पर होकर दोनों को मिलने नहीं देता है[७]।

मलूक दास कहते हैं कि माया मिश्री की छुरी है इस पर विश्वास मत करिए[८]। नारी को ही मत देखिए, वह नैनों से चोट करती है[९]। सुन्दर दास माया मोह को छोड़ देने को कहते हैं[१०] । धरनी दास के विचार से कामिनी

१- सन्त बानी संग्रह कबीर साहब पद सं० पृ० सं० ९।५७

२- कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय, वह खाए बौरात है वह पाए बौराय (१४५) दादू दयाल की बानी पद सं० पृ० सं० २।११६, १५१।२३१, ५६।१२५ १३५।२५ २५।११८-६)

७- सन्त बानी संग्रह दादू पद सं० पृ० सं० ८० ५/५०

८-९ " मलूक दास " १।१०३, २।१०३

१०- " सुन्दर दास " ९।१०८

बिजली के समान तथा धन फांसी के समान है[1]। जगजीवन साहिब का विचार है कि माया का झूला पड़ा है उस पर सभी झूल रहे हैं[2]। माया को बहुत प्रबल कहा है ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक झूले पर झूलते हैं[3]। दरिया साहिब (बिहार वाले) का कहना है कि कनक कामिनी के फन्द में मन मत ललचाओ। दरिया एक अनुशीलन में शब्दवाणी में जो साखियां हैं, उन में माया के लिए कहा है। माया विषैली लता है जो शरीर में लिपटी है, वह वेश्या है जो व्यसनी जीवों को भरमाए रहती है। आत्मा परमात्मा के बीच में झगड़ा लगाने वाली है[4]। दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) कहते हैं कि माया की ओर जो मुंह किए हैं वे बारहम में होते हैं[5]। सहजो बाई कहती हैं, धन जीवन सुख सम्पदा सब बादल की छांह के समान है[6]।

बषना जी कहते हैं जरा सी भी माया के संसर्ग से मनुष्य बन्धन में बन्ध जाता है। जैसे चन्द किरन से चौड़े का भ्रम[7]। रज्जब जी कहते हैं कनक कामिनी का पर्दा राम ने रचा है। पल्टू दास कहते हैं ठगिनी जग को ठगती है पर सन्त की चेरी होती है[9]। गरीब दास जी कहते हैं -

मन माया की झुन-झुनी बाजत है निरदंग[10]।

१- सन्त बानी संग्रह धरनी दास पद सं० पृ० सं० १।११५

२-३ " जगजीवन साहिब " ८,४।११८

४- शब्दवाणी दरिया (मारवाड़ वाले) पृ० ४८

५- सन्त बानी संग्रह दरिया (मारवाड़ वाले) पद सं० पृ० सं० ३।१२३

६- " सहजो बाई " ५।१६६

७- बषना जी की वाणी पद सं २९.७

८- रज्जब जी की बानी पृ० ३३३

९- सन्त बानी संग्रह पल्टू दास पद सं० पृ० सं० ४।२२३

१०- " गरीब दास " ३३।१९१

यह भी कहते हैं कि माया जगदीश की है[१]। दारूण माया बड़ी दुख दायी होती है जैसे दूध में कांजी घी को छंड छंड कर देती है[२]। तुलसी साहिब ने भी त्रिलोकी नाथ की माया को बलवान कहा है 'माया भगवत की बड़ी को बाधे परमार्थ[३]।

मन_- मानव के शरीर की एक मात्र संचालक शक्ति मन ही है, सभी इन्द्रियाँ मन के साथ रहती हैं। मन के अनुकूल स्वरूप की धारणा कर लेती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संकल्प विकल्प, आशा निराशा एवं महत्वाकांक्षाओं का आधार भी मन ही है। मन ही पहले माया से आच्छन्न होता है। इसी से विभिन्न शास्त्रों एवं योग दर्शनों में मन के लय की विविध रीति मिलती है। सन्तों ने इसे वासना रहित एवं निर्मूल करने का उपदेश दिया है।

कबीर दास भी मन से बड़े परेशान हैं, उनकाकहना है मन के बहुत से मत होते हैं अतः उन के अनुसार नहीं चलना चाहिए[४]। मन को काट कर के टुकड़े टुकड़े कर देना चाहिए[५]। मन की दौड़ उतनी ही है जितनी समुद्र की लहरें हैं[६]। मन रूपी पर्वत पर यदि शब्द की चोट की जाय, तो सोने की खान मिलती है[७]। अर्थात् यदि मन को वश कर रक्खा जाय, तो उस से भला भी बहुत होता है, क्योंकि मन ही तो जीवन की धुरी है, वही तो करता धरता है[८]। केवल मनोरथ करना छोड़ देना चाहिए। दादू कहते हैं कि मन को पकड़ ले वह शूर है[९]।

मन रूपी पतंग प्रेम जल के भीगने से ही पास आती है[१०]। जिसका मन उज्ज्वल होता है वही दर्शन कर सकता है[११]। बाबा मलूक दास कहते हैं

१-२ सन्त बानी संग्रह गरीब दास पद सं० पृ० सं० १९। १९४, ४४।१९७
३- " तुलसी साहिब " ३३।३३८
४-८ " कबीर साहिब " १।५५, ३।५५, ६।५५, ८।५६, ११।५६
९-१०-) " दादू साहिब " १।९६, ३।९६, ७।९६
११)

कि मन के जीतने से ही जीत है, पर शरीर नष्ट करने से मन नहीं करता[1]। दरिया साहब (बिहार वाले) कहते हैं कि यदि सच नाम चाहते हो तो मन को कैद करो[2]। मन के जीतने से ही जीत है। मन को ज्ञान की मथानी से बिलोने से सुख होता है[3]। गरीब दास जी कहते हैं आशा तृष्णा को खंड कर के जीते जी ही मुक्ति हो जाती है[4]। तुलसी साहिब का कथन है कि मन की तरंग शरीर में चला करती है[5]। कभी थाह नहीं मिलती। गुरु के ध्यान से मन घुल जाता है अर्थात् विकार क्षीण हो जाता है जैसे बर्फ घुल कर पानी हो जाता है[6]। बखना जी कहते हैं -

मन मोटा मन पातला मन पाणी मन लाय,
जैसो आवै मन माहीं मन तैसा होय जाय[7]।

मन विकार रहित होता है तभी वह भक्ति नहीं कर पाता। माया के कुटुम्बी मन के विकार हैं। इन सन्तों ने इन्हें माया के लड़के भी कहा है काम, क्रोध, लोभ, मोह मान ये विकार मानव के शत्रु हैं। इन से बचने को इन का दमन करने को सन्तों ने आवश्यक बताया है। जिस मनुष्य ने अपने इन स्वतः विकारों पर विजय प्राप्त कर ली है उस की आत्मा ही श्रेष्ठ है[8]।

१- सन्त बानी संग्रह मलूक दास पद सं० पृ० सं० १।१०४
२-३ " दरिया साहब (बिहार वाले) " १।१२४, २।१२४
४- " गरीब दास " १।२०७
५-६ " तुलसी साहब " १।२३५, ५।२३५
७- बखना जी की बानी पृ० १३
८- गीता अध्याय ६ श्लोक सं. १८

<u>काम</u> - काम या वासना धर्म की दृष्टि से जीवन की चरमोन्नति में प्रधान रूप से बाधक है । पूरे सन्त साहित्य में कामेच्छा को दबाने तथा ब्रह्मचर्य पालन करने पर जोर दिया है । नारी की निन्दा इसी कारण हुई है । कबीर दास जी कहते हैं जहाँ काम होता है वहाँ नाम नहीं हो सकता[१]। काम, क्रोध, लोभ की जब तक शरीर में खान है तब तक पंडित और मूर्ख दोनों बराबर हैं[२]। गोस्वामी तुलसी दास ने भी काम, क्रोध, लोभ, मोह को नर्क का पन्थ कहा है[३]। चरन दास ने काम के प्रभाद का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है काम से तन, मन, जल जाता है चित्त डाँवा-डोल हो जाता है । इस के सेवन से जीव नर्क में जाता है[४]। गरीब दास जी कहते हैं कामी के मुख पर खाक पड़ती है[५]। सहजो बाई का विचार है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह छोड़ने से ही मुक्ति मिलती है कामी भ्रष्ट होता शीलवान नहीं होता[६] ।

<u>क्रोध</u> - क्रोध वह उग्र भाव है, जो किसी अनुचित या विरोधी काम करने वाले के प्रति चित्त में उत्पन्न होता है । मनु ने अक्रोध को धर्म के दस लक्षणों में स्थान दिया है ।महाभारत उद्योग पर्व में कहा है (अक्रोधेन जयेत् क्रोधं असाधुं साधुना जयेत्[७]) गोरख ने क्रोध न करने को तीर्थ करने के समान माना है

१-२ कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ३, ४।५३ - सन्त बानी संग्रह

३- सन्त बानी संग्रह सहजो बाई पद सं० पृ० सं० १।७४

४- " चरनदास " १।१४९

५- " गरीबदास " १।२०६

६- " सहजोबाई " १।१५९

७- महाभारत उद्योग पर्व - चरनदास की विचारधारा पृ० २७२

'काम, क्रोध, अहंकार, निवारे तो सबै दिगम्बर किया[१]।

कबीर दास जी का कहना है कि क्रोध छोड़ने वाले को भगवान मिलते हैं। काम, क्रोध, तृष्णा तजे ताहि मिले भगवान[२]। कहते हैं क्रोध में सब किया कराया मिट जाता है। चरन दास ने क्रोध का बड़ा विस्तार से वर्णन किया है -

जेहि घटि आवै धूम सूं, करै बहुत की ख्वार,
पल खोवै बुधि कूं हनै, कहा पुरुष कहा नारि[३]।

क्रोध को चाण्डाल भी कहा है। गरीब दास कहते हैं जिस के हाथ में सुकर्म का छुरा रहता है उस के हृदय में क्रोध का वास होता है[४]। सहजो बाई क्रोधी को बहुत बुरा कहती हैं। वह घर बाहर सब जगह बिगड़ा रहता है[५]। भौं भौं कुत्ते का तरह करता रहता है उस की बुद्धि डांवा डोल रहती है[६]।

<u>लोभ</u> - शुक्ल जी के शब्दों में किसी प्रकार का सुख या आनन्द देने वाली वस्तु के सम्बन्ध में मन की ऐसी स्थिति का जिस में वस्तु के अभाव की भावना होते ही प्राप्ति, सान्निध्य, या रक्षा की प्रबल इच्छा जाग पड़े उसे लोभ कहते हैं। लालच या तृष्णा भी इसे कहते हैं। यह मनोवृत्ति सन्तोष की विरोधी है। इस में सदैव चित्त अशान्त, अस्थिर तथा असन्तुष्ट रहता है। कबीर दास भी कहते हैं कि लोभ से भक्ति का धन नहीं मिलता[७]। मांगते हीं आम, आदर तथा नैनों

१- गोरख बानी २९

२- कबीर ग्रंथावली पृ० १०

३- सन्त बानी संग्रह चरनदास पद सं० पृ० सं० २।१४९

४- " गरीब दास " १।२०६

५-६ " सहजो बाई " १,२।१५९

७- " कबीर साहब " १/५२

का स्नेह चला जाता है[१]। चरन दास का कहना है कि लोभ पाप की खान है, झूठ उस का मंत्री है[२]। सुन्दर दास कहते हैं कि इस की विशेषता यह भी होती है कि ज्यों ज्यों मनुष्य की अवस्था ढलती जाती है, लोभ बढ़ता ही जाता है, लोभी व्यक्ति इतना गिर जाता है कि उसे मानापमान का ध्यान भी नहीं रहता[३]। सहजो बाई कहती हैं कि व्यक्ति लोभ से बौराया सा रहता है । उस का काम झूठ कपट से चलता है, धन के लिए ही भजन करता है, हृदय में प्रीत नहीं होती[४]। गोस्वामी तुलसी दास ने इच्छा और दम्भ को लोभ का बल कहा है[५]।

<u>मोह</u> - अज्ञान या भ्रम के वश में होकर ईश्वर का ध्यान छोड़ कर शरीर और सांसारिक पदार्थों को ही सर्वस्व समझना मोह कहलाता है । यह अविद्या माया की शक्ति है । इस के संसर्ग से बुद्धि नष्ट हो जाती है । मोह के सहायक कनक और कामिनी और स्रोत हैं कुटुम्ब । कबीर दास जी कहते हैं जब तक शरीर में मोह है, सभी जगह अंधेरा है । मोह की धार में सभी बह रहे हैं[६]। गोस्वामी तुलसी दास जी ने इस की उपमा संसार से दी है -

कोई सेवर ~~सेई~~ तेइ सुवा, सेवत सदा बसन्त,
तुलसी महिमा मोह की सुन ते सराहत सन्त[७] ।

१- सन्त बानी संग्रह कबीर साहब पद सं० पृ० सं० २।५३
२- " चरन दास " १।१४९
३- सुन्दर ग्रंथावली पृ० ७१६
४- सन्त बानी संग्रह सहजो बाई पद सं० पृ० सं० २।१५९
५- तुलसी दोहावली पृ० २६६ प. सं. २८८, तुलसी रचनावली
६- सन्त बानी संग्रह कबीर दास पद सं० पृ० सं० १।५४
७- तुलसी दोहावली पद सं० २५९।८०

चरन दास जी ने भी मोह को बली माना है वह दुख रूप है । संसार की प्रीति तोड़ने से दुख का नाश होता है[१]। सहजो बाई कहती हैं मोह रूपी मृग जो कुछ बोया जाता है सब चर जाता है[२]।

<u>अभिमान</u> - विद्या, बुद्धि बल, धन या गर्व आदि में अपने को उच्च समझना, यह अभिमान है । यह एक प्रकार का नशा है। इस में यथार्थ स्थिति का ज्ञान नहीं रहता । बुधि सुधि खो जाती है । कबीर दास जी कहते हैं स्त्री, पुत्र धन छोड़ना सरल है पर मान, बड़ाई, ईर्ष्या छोड़ना सरल नहीं[३]। मान में व्यक्ति खजूर के पेड़ के समान हो जाता है[४] । अहंकार में ही आपत्तियां आती हैं तथा यह बड़ा शत्रु है[५]। चरन दास कहते हैं अभिमानी ही गिरते हैं उन के धन धाम सब छूट जाते हैं[६]। सहजो बाई कहती हैं अभिमानी केवल अपनी बड़ाई चाहता है । पाप पुण्य को भी नहीं डरता[७]। प्रभुता को चाहता है, प्रभु को नहीं[८]। दरिया साहिब बिहार वाले) कहते हैं मान ने ही रावण को मिट्टी में मिला दिया[९] ।

इन सन्तों की जगत, जीव, शरीर, काल तथा मूर्ति पूजा के प्रति भी कुछ मान्यताएं थीं । इन्होंने जगत को ब्रह्म-तत्व का आधार माना है ।

१- सन्त बानी संग्रह चरन दास पद सं० पृ० सं० १।१४९
२- " सहजो बाई " २।१५९
३,४,५- " कबीर साहिब " १,२,५।५४
६- " चरनदास " २।१४९
७,८- " सहजो बाई " १।१५९, २।१६०
९- " दरिया साहिब (बिहार वाले) " १।१२४ ।

कबीर ने भौतिक जगत को असत् माना है । उस की पारमार्थिक सत्ता नहीं है । इस को दुख का भंडार कहते हैं । इसे धुआँ का धौरहरा भी कहा है । जिस में जीव भूला रहता है[1], सेमर के फूल के समान सत् होते हुए भी असत् है -

वह ऐसा संसार है जैसा सेमर फूल,
दिन दस के व्यवहार को झूठे रागि न भूल[2]।

तुलसी दास जी कहते हैं कि जिस प्रकार स्वप्न में भिखारी राजा हो जाता है और भिखारी स्वर्ग का स्वामी हो जाता है, जगने के बाद सब व्यर्थ हो जाता है वैसे ही संसार भी स्वप्नवत् दिखता है[3]। दादू जी का विचार है कि संसार दुख का घर है[4]। सुन्दर जी ने संसार को वृक्ष कहा है जिस में जीव रूपी पक्षी रात को बसेरा लेते हैं[5]। पल्टू दास कहते हैं कि संसार खरबूजे के समान है नारी के वचन रूपी छुरी से मारा जाता है[6] । सहजो बाई का कहना है कि जगत ओस के मोती तथा अंजुलि में पानी, प्रातः काल के तारे के समान अनित्य, ठहरता नहीं है[7]। सभी सन्त कवि जगत को सराय कहते हैं, जिस में जीव आकर चला जाता है ।

१-२ कबीर ग्रंथावली पद सं० पृ० सं० ७०।२३, १३।९१
३- तुलसी सतसई " १४६।२८० -तुलसी रचनावली
४- सन्त बानी संग्रह दादू पद सं० पृ० सं० ४।७८
५- " सुन्दर " २।११०
६- " पल्टू " ३।२३३
७- " सहजो बाई " १०।१६३

जीव - माया से आच्छन्न आत्मा जीव कहलाती है । कबीर कहते हैं कि यह जीव दूर से आया है दूर जाना है बीच में आकर बस जाना है[१]। नानक साहिब का कहना है जीव रूपी हंस सब को बिलखता हुआ छोड़कर चला जाता है[२]। सुन्दर दास ने जीव को पक्षी कहा है, जो रात को वृक्ष पर बसेरा लेता है[३]। दरिया साहिब (बिहार वाले) ने भी जीव को हंस कहा है ।

अकेला हंस चलि जातु है कोई नहिं संग तुम्हार[४] ।

पंच तत्व की कोठरी में जीव बसा है[५]। दया बाई कहती हैं कि जीव जगत स्नेही होता है[६] ।

शरीर - कबीर साहब का कहना है कि पीले पत्तों के समान शरीर शीघ्र ही गिर जाता है[७]। यह जल का बुद बुदा है[८]। पंच तत्व का पुतला है[९]। गुरु नानक जी भी इसे परिवर्तन करने वाला बताते हैं । काले से भूरे तथा भूरे से उजले जैसे बाल हो जाते हैं वैसे ही शरीर[१०]। केशव दास के भी विचार से शरीर पंच तत्व की कोठरी गढ़ी गई है[११]। दूलन दास जी ने शरीर को कब्र बताया है उन के विचार से जीते व्यक्ति मरे के समान हैं[१२]। गरीब दास जी का कहना है कि जल की बिन्दु से शरीर बना है[१३]। जगजीवन साहब ने शरीर को सुहावना नगर कहा है।[१४]

१- कबीर साखी पद सं० पृ० सं० १८९।७४
२- सन्त बानी संग्रह नानक पद सं० पृ० सं० ५।६८
३- " सुन्दरदास " २।११०
४&५ " दरियासाहब (बिहार वाले) " ३।१२२, ३।१२५
६- " दया बाई " ११।१७८
७-९ कबीर साहिब की साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० १०८।७४, १८९।७५, ४।७९
१०- सन्त बानी संग्रह गुरु नानक " १।६८
११- " केशवदास " ९।१४१
१२- " दूलनदास " ३।१३७
१३- " गरीब दास " ३२।१९५
१४- " जगजीवन साहिब " ०।११९

काल - कबीर दास का विचार है कि कि काल की चक्की बराबर चल रही है[१]। वह अहेरी के समान जीवों को पकड़ता है[२]। काल केश पकड़े रहता है पता नहीं किस समय मार डाले[३]। गोस्वामी तुलसी दास जी ने 'केहिजग काल न खाया[४]' कहा है। दादू कहते हैं कि काल का फन्दा सदैव सिर पर रहता है[५]। तुलसी साहिब ने काल को अजर बुल्नी कहा है[६]।

मूर्तिपूजा - सन्तों ने मूर्ति-पूजा, तीर्थ-व्रत को बिल्कुल मान्यता नहीं दी है वरन् कटु आलोचना की है। जो इन को मानते हैं उन को भी खरी खोटी सुनाई है। मूर्ति-पूजा का प्रचलन द्रविणों से आया है। आर्यों में नहीं था। धीरे धीरे भारत में मूर्ति-पूजा होने लगी। इस्लाम भी मूर्ति-पूजा पर विश्वास नहीं करते थे पर धीरे धीरे वे भी दरगाहों में सिर झुकाने लगे।

कबीर दास जी कहते हैं पत्थर पूजने से यदि भगवान मिलते हैं तो हम पहाड़ पूजने को तैयार हैं। इस से तो अच्छा कि चक्की की पूजा करो, जिस से आटा मिलता है और सारा संसार खाता है[७]। मस्जिद के लिए कहते हैं 'कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय[८]'। ऐसे पत्थर को क्या पूजा करना जो उत्तर भी न दे[९]। पूजा नेम व्रत को गुड़ियों का खेल कहा है[१०]। तीर्थ व्रत के प्रति उनका कहना है तीर्थ में नहाने से यदि मन का मैल जाता हो तो मछली तो सदा ही पानी में रहती है। उस की तो बास तक नहीं जाती[११]। गुरु नानक जी

१-३ कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० १२४।६१, १८७।७५, १०।५६

४- सन्त बानी संग्रह गोस्वामी तुलसी दास पद सं० पृ० सं० २।७४

५- " दादू दयाल " ६।७९

६- " तुलसी साहिब " १३।२३८

७-८ " कबीर साहिब " ५।६२, ७।६३

९-११ कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ३।१७५,१६।१७६,५।१७६

कहते हैं तीर्थ व्रत से कोई लाभ नहीं होता, अन्तर के तीर्थ को मूर्ख लोग नहीं खोजते[1]। मलूक दास का विचार है कि बिना अपने को पहचाने पत्थर पूजने से कोई लाभ नहीं[2]। कितने भी पुराण सुनो मुक्ति नहीं हो सकती[3]। मक्का मदीना के द्वार सब भूले हैं[4]। पल्टू साहिब कहते हैं हिन्दू मन्दिर की पूजा करते हैं[5], मुसलमान मस्जिद की पर हम तो बोलते की पूजा करते हैं । "जो साउ दीव परदीव"। सन्तों ने इन मान्यताओं के अतिरिक्त जीवन सम्बन्धी आचार-व्यवहार पर भी अपनी दृष्टि डाली जिसका विस्तार से वर्णन आगे करते हैं ।

आचार शास्त्र

आचार शास्त्र एवं आचार विज्ञान मानवीय व्यवहार तथा उस के औचित्य का अध्ययन है । यह हमें बताता है कि किस प्रकार का व्यवहार सदाचार कहा जाता है, तथा किस प्रकार का दुराचार, किस को सत् और किस को असत् कहते हैं । वास्तव में यह जीवन सम्बन्धी दर्शन है, जो हमारे जीवन सम्बन्धी व्यवहार के सत् असत् सम्बन्धी निर्णयों का प्रतिपादन करता है । यह नैतिक जीवन की समस्याओं का निर्णय करता है । नैतिक जीवन का इतिहास मानव संस्कृति से आरम्भ होता है । नैतिक समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा आदि काल से होती चली आ रही है । वेदों में देवताओं को ऋत एवं नैतिक नियम का संरक्षक माना गया है । देवताओं में क्षमा दया, सहिष्णुता, पवित्रता आदि सभी गुण उपलब्ध हैं[6]।
उपनिषदों में लिखा है -

'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय'[7]।

ईश्वर हमें असत्य से सत की ओर अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत्यु की ओर प्रेरित करे । कठोपनिषद् में लिखा है जिस व्यक्ति ने अनैतिक कर्म का त्याग नहीं किया, वह ज्ञान के द्वारा ईश्वर को प्राप्त नहीं

१- सन्त बानी संग्रह गुरु नानक पद सं० पृ० सं० ४।००
२-३-४ " मलूक दास " १।१०४,३।१०४,४।१०४
५- " पल्टू साहिब " १।२२३
६ - पाश्चिमीय आचार विज्ञान का आलोचनात्मक अध्ययन - डा. ईश्वर चंद्र शर्मा जेटली दे

कर सकता। सभी धर्म शास्त्रों में नैतिक सिद्धान्त की व्याख्या की है शरीर में विकास के लिए अर्थ एवं सम्पत्ति को, मन के विकास के लिए काम एवं प्रेम को, बुद्धि के विकास के लिए धर्म को आत्मा के विकास के लिए मोक्ष को लक्ष्य माना है । धन संचय स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं वरन् परमार्थ के लिए है । प्रेम का अर्थ आसक्ति नहीं वरन् सब व्यक्तियों के प्रति स्नेह श्रद्धा आदि है । जितने सत् कर्म हैं सब धर्म कहे गए हैं[1]। वेदान्त में बाह्य व्यवहार की अपेक्षा आन्तरिक भावना को अधिक महत्व दिया गया है । नैतिक साधना हमारे अन्तःकरण को शुद्ध करके आत्मानुभव को सुगम बनाती है । श्री शंकराचार्य के आचार दर्शन में अन्तःकरण के संस्कार के लिए सन्यास गुणों का अनुशीलन आवश्यक बताया है । इस से हमारी भावना शुद्ध होती है । इस के पांच गुण हैं । शौच, उपशम, त्याग, तप, और क्षमा[2]। शौच से हमारे स्वभाव में मृदुता आती है, उपशम से दया का भाव आता है, त्याग उदार तथा दानशील बनाता है । तप हमें संयम तथा सन्तोष देता है । क्षमा हमें दूसरों के प्रति घृणा का भाव दूर कर सौहार्द देता है । धर्म शास्त्र में धर्म के दस लक्षण माने गए हैं -

> धृति क्षमा दमोऽस्तेयम् शौचमिन्द्रिय निग्रह,[2]
> धीर्विद्या सत्यं क्रोधोदशकम् धर्म लक्षणम् ।

अर्थात् धैर्य, क्षमा, मन का दमन, चोरी का त्याग, बाह्य तथा अन्तर की शुद्धि इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धिमत्ता, विद्वता, सत्य की स्वीकृति तथा अक्रोध । सन्तों ने भी अपने काव्य में भी सामाजिक गुणों को आवश्यक माना है, जिस से अन्तःकरण की शुद्धि कर जीवन्मुक्ति पा सकता है । कबीर आदि ने भी धर्म के बाह्य स्वरूप को मान्यता न देकर मानसिक और नैतिक स्वरूप पर बल दिया है ।इन सब ने विश्व धर्म के आचरणों को ही माना है ।

सत्य - समाज की सुव्यवस्था के लिए सत्य की बड़ी आवश्यकता है । यह केवल तत्वात्मक धारणा ही नहीं है अपितु ऐसी नैतिक क्रियाशीलता है जो व्यक्ति तथा समाज के विकास के लिए अनिवार्य है । सत्य का

१. प्राचीन बौद्ध आचार-विज्ञान का आलोचनात्मक अध्ययन - डा० ईश्वरचंद जोशी पृ० ८१
२. श्री शंकराचार्य का आचार दर्शन - डा० रामानंद तिवारी पृ० : १५२

ग्रहण और असत्य का परित्याग सभी के लिए समुचित है । इस से व्यक्ति तथा समाज दोनों मर्यादा में रहते हैं[1]। उपनिषदों में कहा है कि सत्य से श्रेष्ट ज्ञान एवं धर्म संसार में दूसरा नहीं है, झूठ के समान पाप नहीं है सत्य का आचरण ही एक मात्र कल्याणकारी तत्व है[2] । चाणक्य नीति में भी सत्य का महत्व है सत्य ही सनातन धर्म है । संस्कृत में लिखा है सत्य-मेव जयते अर्थात् सत्य की ही विजय होती है । सत्य ही भगवान का स्वरूप है जहाँ सत्य है वहीं भगवान हैं ।

कबीर दास जी कहते हैं कि सच के बराबर कोई तप नहीं है और झूठ के बराबर कोई पाप नहीं है[3]। जहाँ तक हो झूठ नहीं बोलना चाहिए । सत्य ग्रहण करने से आवागमन नष्ट हो जाता है । सत्य को बहुत बताने की जरूरत नहीं है । हृदय का भाव जानने वाला भगवान जान ही लेगा[4]। गोस्वामी तुलसी दास जी का कहना है 'मिथ्या माहुर सज्जनहिं खलहिं गरल सम सांच[5]' । वह इन से ऐसे भागते हैं जैसे आग से पारा । दादू जी कहते हैं कि भगवान का नाम सत्य है उसी को सत जानो[6]। जो सच्चा है उस का धनी समर्थवान है जो पाखंडी है उस की दुखी बरबंदी है[7]।

झूठा मारग साँच का साँचा होय सो जाय[8]
झूठा कोई ना चले, दादू दिया दिखाय ।

दरिया साहिब (बिहार वाले) कहते हैं जहाँ सच है सहज आप है, रात दिन आप ही सहायता करते हैं[9]। चरनदास जी कहते हैं

---

१ - मलूकदास, सुन्दरदास, चरणदास की दार्शनिक विचारधारा- डा० दीक्षित- पृ.३०७

२. उपनिषद् वाक्य निधि संग्रह ।

३-४ कबीर साखी संग्रह "पृ० सं० [illegible] पद्य. पृ.सं. ११४५, २१४५

५. सन्त बानी संग्रह गोस्वामी तुलसी दास पद सं० पृ० सं० १।९४

६-७ " दादू दयाल " १।७९, ८।९४

८. दादू दयाल जी की बानी " १५२।१४८

९. सन्त बानी संग्रह दरिया साहिब (बिहार वाले) " १।१२४

झूठे को छोड़ दो सत्य में अपना घट बनाओ[1]। गरीब दास जी का कहना है सच्चे का सुमिरन करो सारा संसार झूठा है, साचा साहिब है[2]। कहते हैं सच्चे के चरण धुप पर झूठे का भी आदर करे सर आँखों पर लेते, अतः व्यवहार में व्यक्ति सदैव सच्चा रहे। इस के बिना एक दूसरे पर विश्वास नहीं किया जाता। व्यवहार की दृष्टि से सत्य ही साख और विश्वास की जड़ है। इस के अतिरिक्त असत्य बकता तो अपनी बुराइयों को झूठ की आड़ में छिपा सकता है पर सत्यवादी के लिए यह सब सम्भव नहीं।

क्षमा - व्यवहार में जैसे सत्यता की आवश्यकता है वैसे ही क्षमा भी एक ऐसा गुण है जिस के सब वशीभूत हो जाते हैं। अपना अहित करने वाले से बदला लेने की पूरी शक्ति होने पर भी उस के अशिष्टाचरण को सह लेना और उस के प्रति मन में दुर्भाव बुद्धि न रख कर उस का हित चाहना क्षमा है। कबीर दास जी कहते हैं कि बड़ों को क्षमा करना ही चाहिए, भृगु के विष्णु को लात मारने पर भी उन्हों ने कोई प्रतिकार नहीं किया, जिस से विष्णु को कोई हानि नहीं हुई वरन् महत्ता ही बढ़ गई[3]। कहते हैं कि सत जन तो सदैव ही दुष्टों के वचनों को टाला करते हैं -

करास सम दुर्जन बचन रहे सन्त जन टारि[4],
बिजुली परै समुद्र में कहा सकैगी जार ।

क्षमाशील व्यक्तियों के पास ही भगवान का वास होता है। गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं 'अचल क्षमा गुण साधु मन वाराणसी न धुरि[5]'।

१- सन्त बानी संग्रह चरन दास जी भाग सं० पृ०सं० १।१४८
२- " गरीब दास जी " १।२०३, २।२०३
३-४ " कबीर दास जी " १।५०, १।५०
५- तुलसी सतसई पृ० सं० ३२ पद ४०६

उदारता - अपने समान सब को देखना ही, उदारता का लक्षण है । जैसा कि गीता में कहा है जो व्यक्ति सभी जीवों को अपने ही समान देखता है, वही दार्शनिक है । आत्मवत् सर्व भूतेषु या पश्यति, उदार के अर्थ दानी भी है । सन्तों ने यही अर्थ माना है । दान का अर्थ है बोना और कई गुने बोए हुए को काटना । इसी प्रकार उदारता पूर्वक दिया हुआ दान कई गुना होकर मिलता है । कबीर दास जी कहते हैं वृक्षों ने बसन्त ऋतु में प्रसन्न होकर पत्तियाँ दीं । दिया हुआ दूर नहीं जाता, इसी से तुरन्त नई कोंपलें आ गईं[1]। उनका कहना है कि देने से धन कम नहीं होता, न ही नदी का जल घटता है । देह धारण का गुण ही है देना[2]। गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं दीनों की रक्षा करने वाला ही विजयी होता है ।

राम लखन विजई भये, बनहु गरीब निवाज[3],
मुखरबालि रावण गए, घरहीं सहित समाज ।

दीनता - दीन वही है जो अपने विरोधी के प्रति भी आदर स्नेह का भाव रखे । दीनता में अभिमान का अभाव होता है । दीन व्यक्ति त्यागी होता है । अभिमान मनुष्य को गिराने वाला होता है, पर यदि मनुष्य विनयी हो जाय, परमात्मा के सामने दीन बन जाय, तो दीन बन्धु उस पर अवश्य दया करते हैं । कबीर दास जी कहते हैं कि जैसे पानी नीचे होकर पिया जा सकता है क्योंकि पानी का ढलान नीचे ही होता है वैसे ही दीन बनने से ही काम निकलता है[4]। दीनता से मनुष्य भी देवता हो जाता है, लघुताई सब से अच्छी होती है । द्वितीया के चन्द्रमा को भी सभी सर झुकाते हैं[5]। नानक जी कहते हैं

१-२ सन्त बानी संग्रह कबीर साहिब पद सं० पृ० सं० २।४९, ४।५०
३- दोहावली - गोस्वामी तुलसी दास " ४४१।१५१
४-५ सन्त बानी संग्रह कबीर साहिब " ४।५१, ५।५१
६-

सहजो बाई कहती हैं छोटे हो सको तो सब से अच्छा है । वह कहती हैं -

अभिमानी नाहर बड़ो, भरमत फिरत उजाड़

सहजो नन्हीं बाकरी प्यार करै संसार ।[1]

उन का कथन है सर, नाक, कान ऊँचे होते हैं पैर नीचे होते हैं पर पूज्य पैर ही जाते हैं । दीन भाव रखने से ही आदर मिलता है ।

दया - दुखी प्राणी के दुख को देख कर हृदय पिघल जाना और उस का दुख दूर करने के लिए मन में भाव उत्पन्न होना दया कहलाता है जिस मनुष्य के हृदय में दया नहीं वह पाषाण के समान है । चैतन्य महाप्रभु ने कहा है -

नामे रुचि, जीवे दया, वैष्णव सेवन,[2]

इहा छाड़ा भार नाहिं जानि सनातन ।

हे सनातन भगवान के नाम में रुचि हो, जीवों पर दया और भक्तों का संग इन तीन के सिवा मैं और कुछ नहीं जानता । स्मृतिकार कहते हैं

परे वा बन्धु वर्गे वा मित्रे द्वेष्टरि वा सदा,[3]

आपन्ने रक्षितव्यं तु दयैषा परिकीर्तिता ।

घर का हो बाहर का हो मित्र हो या वैरी हो किसी को भी दुख में देखकर उस को बचाने की चेष्टा करना दया कहलाती है । कबीर दास जी कहते हैं कि दिल में दया रखो, कीड़ा से लेकर हाथी तक सब भगवान के ही हैं । दया से जगत में व्यवहार रखो ।[4] गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं -

- -

१- संत बानी संग्रह सहजो बाई - पद सं० पृ० सं० 3/150, 4/150

२- चैतन्य महाप्रभु

३- अत्रि स्मृति - ४१

४- संत बानी संग्रह कबीर साहिब पद सं० पृ० सं० २।६९

दादू कहते हैं कि जिन के हृदय में दया धर्म है अमृत वचन बोलते हैं, वही ऊँचे हैं। किसी दुखी को दुख मत पहुँचाओ।[1] गरीब दास जी का कहना है

दया धर्म दो मुकुट हैं, बुद्धि विवेक विचार।[2]

तुलसी साहिब ने दया को पाँच रत्नों में एक माना है। गृहस्थ को भूखे को भोजन देना तथा उस पर दया रखनी चाहिए।[3] दरिया साहब (बिहार वाले) का विचार है कि जब तक हृदय में दया न होगी तब तक भक्ति नहीं होगी।[4] चरन दास कहते हैं किसी को दुखी मत करो। दया, नम्रता, दीनता, क्षमा, शील तथा सन्तोष हृदय में रहे तभी सुमिरन से मोक्ष मिलता है।[5]

<u>विवेक</u> - विवेक का अर्थ सत्य को जानकर कर्म द्वारा करने के लिए दृढ़ निश्चय होता है। विवेक वह ज्ञान है, जो हमें इस योग्य बनाता है कि हम सभी वस्तुओं को सुव्यवस्थित क्रम से रख सकें। इस से साधन तथा उद्देश्य का भी ज्ञान होता है। यह बुद्धि के स्तर का होता है। इस से मार्ग दिखाई देता है। अतः कलुषित भावों विचारों द्वारा भक्ति को प्रभावित नहीं करना चाहिए। वरन् विवेक संयम करना चाहिए इस से भक्ति बढ़ती है। आध्यात्मिक साधना में सफलता मिलती है विवेक से मन पवित्र होता है, बुद्धि स्थिर होती है तथा चित्त शान्त होता है। कबीर दास जी कहते हैं कि साधु अपनी जगह पर सभी बड़े हैं, पर जो विवेकी होता है वह सिर मौर होता है।[6]

- -

१- सन्त बानी संग्रह दादू पद सं० पृ० सं० १।९५
२- " गरीब दास " ७०।१९०
३- " तुलसी साहिब " १२।२३२
४- " दरिया साहिब (बिहार वाले) " १।१२४
५- " चरन दास " ३।१४८
६- " कबीर साहिब " १।५२

साधु और विवेकी होता है, जब प्रेम विवेक के बल के साथ प्रकट होता है तब तीव्र ज्ञान हृदय में आता है । इसी से मोह भाग जाता है[१]।

गुरु, पशु, नर पशु, नारि पशु, वेद पशु संसार,
मानुष सोई जानिए, जाहि विवेक विचार[२] ।

गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं कि वही पुरुष सामर्थवान बुद्धिमान, पुण्यात्मा साधु और चतुर है जो अपने अनुमान से ही व्यय करता है, और जगत में विचार पूर्वक व्यवहार करता है[३]।

व्यवहार में मांस अहार, कृपा और निन्दा को सन्तों ने अनुचित माना है । अहिंसात्मक जीवन व्यतीत करना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है । प्रत्येक मानव की आत्मा समान है । गीता में कहा है 'आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पश्यति'। प्राणी मात्र से प्रेम करना ईश्वर भक्ति का आवश्यक अंग है । कबीर दास जी कहते हैं कि जिस का तुम गला काटोगे वह तुम्हारा भी गला काटेगा । मांस मछली खाने वाला जड़ मूल से ही नष्ट हो जायेगा[४]। नानक का कहना है -

लै फुरमान दिवान दा, सहि प्याले खाहिं[५],
बाँही बुढ़े मारिअहिं, मारे दे कुरलाहिं ।

जो दीवान के हुक्म से बकरे मारते हैं, वे बाद में मारे जाएंगे, तब चिल्लाएंगे । दादू कहते हैं कि मांस खाने वाला, मद पीने वालों के क्या

१-२ सन्त बानी संग्रह कबीर साहिब पद सं० पृ० सं० ३।५२, २।५२
३- तुलसी दोहावली " ४७१।१६१
४- सन्त बानी संग्रह कबीर साहिब " २।६१
५- " नानक " ५।७० -

नहीं होती[१]। उन का कहना है 'मारना तो अपने को चाहिए, पर खाता है दूसरे को मारके' अपने को मारने से भगवान मिलेगी[२]। मलूक दास जी कहते हैं सब का दुख एक सा होता है काटा चुभने में इतना कष्ट होता है पर दूसरे का गला काट कर खा जाते हैं[३]। हाथी, चींटी, नर-पशु सभी में भगवान है । समझ लो भगवान का गला काटा जाता है[४]। धरनी दास कहते हैं कि जीव मार कर मांस मत खाओ, नंगे पांव बबूल पर चल कर देखो । कैसा लगता है[५]। मांस अहार करने वाला ज्ञान क्या बताएगा[६]। यह मन रूपी सियार बहुत भोजन करता है अतः साधु रूपी मृग के साथ रहो । जिस के पास सुगन्ध रूपी शब्द है[७] ।

<u>तृष्णा</u> - यह रोग अज्ञानता तथा अदूरदर्शिता के कारण होता है । जो लोभ से रहित होते हैं, उन में तृष्णा का नाश हो जाता है । कबीर दास जी कहते हैं तृष्णा डाकिनी के समान जीवन को नष्ट करती है[८]। तृष्णा की अग्नि कभी तृप्त नहीं होती । सुर नर मुनि सभी को भस्म करती है[९]। गरीब दास जी कहते हैं आशा तृष्णा की नदी में तीनों लोग डूब रहे हैं[१०]।

<u>निन्दा</u> - लोक-निन्दा जैसे कर्तव्य पथ में [illegible] विघ्न है, वैसे ही जीवन सुधार का सुन्दर साधन भी है । स्तुति सुहावनी होती है पर यह [illegible]

१-२ सन्त बानी संग्रह दादू पद सं० पृ० सं० १।९८, २।९८
३-४ " मलूकदास " १।१०३, २।१०३
५- " धरनी दास " १।११६
६-७ " " " २।११६, ३।११६
८-९ " कबीर दास " १।५५, २।५५
१०- " गरीब दास " १।२०७

अभिमान का जाल फैलाती है । पर निन्दा निर्दोष बनाने में सहायक होती है । मनुष्य का मन निन्दा सुन कर तिलमिला जाता है वह विवेक शून्य होकर निन्दक का नाश करने पर उतारू हो जाता है । पर धीर वीर वही है जो निन्दा स्तुति की सीमा लांघ कर कर्तव्य पथ पर अग्रसर होता है । सन्तों ने निन्दक को बड़ा हितैषी माना है । कबीर दास जी कहते हैं 'निन्दक नेरे राखिए आंगन कुटी छवाए'[1] । वास्तव में निन्दक अपनी तेज धार की छुरी से सब बुराइयों को काट कर अलग कर देता है । कहते हैं कि जो पांव तले हो उस की कभी निन्दा न करो । क्या जाने कब आंख में उड़ कर पड़ जावे[2]। साधु की निन्दा कभी न करो[3] । दादू कहते हैं जिस घर में साधु की निन्दा होती है, वह घर नष्ट हो जाता है[4]। 'निन्दक कभी न मरे क्यों कि वह परोपकारी है । वह हम को उजला करता है । स्वयं मैला होता है'[5]। गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं कि 'तुलसी जे कीरत चहहि पर कीरति खोय, तिन के मुंह मसि लागि है, मिटहि न मरिहैं धोय'[6]

गरीब दास जी कहते हैं निन्दा छोड़ कर सन्तोष से प्रीति करो । भव सागर से पार हो जाओ[7] ।

<u>शृंगार काव्य में उपासनापरक दोहे</u> -

उपासनापरक दोहों की परम्परा सन्त काव्य, भक्ति काव्य से होती हुई शृंगार काव्य में छिन्न भिन्न हो गई । इस की कहीं कहीं क्षीण रेखा दीख पड़ती है शृंगार भावना से परिपूर्ण होते हुए भी अध्यात्म की प्रवृत्ति स्वभावतया इन कवियों में जगती है । कभी न कभी तो भक्ति-धार्मिक धारा के छींटे इन के जीवन पर पड़ते ही रहे हैं । डा० नगेन्द्र का तो कहना है कि वास्तव में यह भक्ति भी इन की शृंगारिकता का ही एक अंग थी - - - भक्ति उन के लिये

१,२,३- सन्त बानी संग्रह कबीर साहिब पद सं० पृ० सं० १,४,३।६०
४,५- " दादू " १, ४।९८
६- " गोस्वामी तुलसीदास " १।७५
७- " गरीब दास " १।२००

एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी[1]। इन कवियों ने दार्शनिक तत्त्वों का निरूपण नहीं किया है वरन् उन्मुक्त हृदय से अनुभव चित्रण किया है । कुछ कवि इन में से प्रेमी भक्त रस आप्लावित हैं जैसे रसखान । शृंगारी कवि में बिहारी के काव्य भी भक्ति रस से सिक्त हैं । इस परम्परा को बढ़ाने में सभी का योग है ।

<u>आराधना-पद्धति</u> - गोस्वामी तुलसी दास जी की परम्परा को आगे बढ़ाने में रसखान का काव्य महत्वपूर्ण है । इन की एक दोहावली भी है । इस में ज्ञान की महत्ता को अस्वीकार कर के प्रेम की आराधना को श्रेष्ठ उपाय बताया है ।

प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोय,
जो जन जानै प्रेम तो, मरै जगत क्यों रोय[2]।

बिहारी की आराधना की विशेषता विनय और प्रार्थना ही है । वह कहते हैं कि संसार सागर से पार होने का उपाय माला पकड़ कर हरि का नाम लेना है[3]। केवल राम से क्लेश हरने की प्रार्थना करते हैं[4]। उन का कहना है जितना प्रेम श्याम से करते जाओ, उतना ही मन स्वच्छ होता जाता है[5]। एक जगह कहते हैं कि मैसे हमें तारना कठिन है, क्यों कि भारी चाल सो छूटेगी नहीं[6]। अपनी चाल न छोड़ने का एक बड़ा सुन्दर कारण बताते हैं -

करी कुबत जगु कुटिलता तजौं न दीन दयाल[7],
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगी लाल ।

मतिराम का कहना है कि हमारे तो निरन्तर आँसू बहते रहते हैं पर तुम्हारे हृदय में रत्तीभर भी स्नेह नहीं उत्पन्न होता[8] । वह प्रार्थना करते हैं कि मन का अन्धकार आप ही हरिए[9] कहते हैं -

---

१- रीति काव्य की भूमिका - डा० नगेन्द्र पृ० १८०

२- रसखान दोहावली पद सं० पृ० सं० २।८५

३-७ बिहारी सतसई पद सं०पृ०सं० ३९१।९१, १०१।४८, १२१।७०, ७०१।२२५, ४९५।९३

८-९ मतिराम सतसई पद सं० पृ० सं० ३८९।२४०, १।२२०

कुंज गुंज के हार उर मुकुट मोर-पर-पुंज
कुंज बिहारी बिहरियौ मेरेई मन कुंज ।[1]

रसनिधि प्रार्थना करते हैं कि आप हमारी करनी की ओर न देखिए, क्यों कि हम सा पतित आप को कोई न मिलेगा[2]। पर हमारे समान पापी का निबाहना भी तुम्हारा ही काम है[3]।

प्रेम-नगर दृग-जोगिया निसि दिन फेरी देत,
दरस-भीख नन्दलाल पै पल-झोरिन भर लेत[4]।

रसलीन राधा-पद की वन्दना करने को कहते हैं उन का कहना है कि अपना दुख तो पशु-पक्षी भी जानते हैं, जब तुम दूसरों का दुख समझो तब तुम्हें सुजान कहा जा सकता है[5]। वृन्द कवि हरि का नाम जपने को कहते हैं, इस से करोड़ों पाप दूर होते हैं[6]। पद्माकर कहते हैं कि करील की कुंज में हमारा चीर फंस गया है आप हमारा क्यों नहीं दुख दूर करते हैं[7]। राम सहाय भी कहते हैं हम ने सुना है कि आप गुण पर रीझ जाते हैं पर हम तो बिना गुणों के हैं, हमारे ऊपर कृपा करते रहिए[8]। वह विनय करते हैं -

श्री स्यामा को करत हैं राम सहाय प्रनाम,
जिन अखियनहि प्यार कों कियो सदा निरन्तर धाम[9]।

विक्रम कवि कहते हैं जितने तारे दिखाई देते हैं उतने तो आपने तार ही दिए हैं । "अब प्रभु विक्रम औरि को दिय हारे कत तार"[10]। एक जगह विनय

१- मतिराम सतसई पद सं० पृ० सं० २।११०

२-३-४ रतन हजारा - रसनिधि,- पद सं० ३९१।२२४, ६८३।२३५ ,२०६।१८८

५- रसलीन पद सं० पृ० सं० ३।१०३

६- वृन्द कवि - सतसई सप्तक पद सं० पृ० सं० ६८९।२४०

७- पद्माकर पंचामृत पद सं० पृ० सं० ९०।१०४

८-९ राम सतसई पद सं० पृ० सं० १८५।२४३, १।२२९ सतसई सप्तक

१०- सतसई सप्तक - विक्रम सतसई पद सं० पृ० सं० ३०।३२५

बारे में कुछ कहा कभी सगुण के । किसी विशेष धर्म के मानने वालों में ये कोई भी कवि नहीं थे । इन सब को केवल परम्परा का निर्वाह करना था । रसलीन ने प्रेम को जगत, ब्रह्म सभी का आधार माना है । इसी से कहते हैं प्रेम ही सब का आधार है, वहीं बीज है वही फल फूल है[1]। बिहारी ने निर्गुण की व्यापकता का प्रतिपादन किया है -

जगत जनायौ जिहिं सकलु सो हरि जान्यौ नाहिं।
ज्यौं आँखिनु, सब देखिये आँखि न देखी जाहिं[2]।

वास्तव में वे राम, कृष्ण, निर्गुण सगुण सभी को मानते थे । पर सांप्रदायिक अर्थ में किसी के उपासक न थे । इन्होंने माया की बहुत बुराई की है । माया के पाने से संसार पागल हो जाता है[3]। इस संसार से पार जाना बड़ा कठिन है क्योंकि इसी रूपी छाया से पकड़ने वाली राक्षसिन बीच ही में पकड़ लेती है[4]। मतिराम ने निर्गुण ब्रह्म भी सगुण रूप धारण कर लेते हैं ऐसा कहा है -

हिये बसत गुन असत है, हमकों करत निहाल ।
घट-घट व्यापी ब्रह्म गुन प्रगट भए नन्द लाल[5]।

<u>उपासना परक कवित्त सवैयों की परम्परा</u> -

<u>आराधना पद्धति</u> - अधिक तर सन्तों ने दोहों के अतिरिक्त गीत, झूलना, रेखता, कवित्त, सवैया आदि में अपने विचार व्यक्त किए हैं। सुन्दर दास ने कवित्त सवैय लिखे हैं । इन्होंने आराधना के लिए कहा है कि मुख से नाम कहते रहने और इन्द्रियों के घूमते रहने से आराधना नहीं हो सकती ।

१- रसलीन सुधा दोहावली पद सं० पृ० सं० ४०।८८

२-४ सतसई सप्तक - बिहारी सतसई " ४१।६४, १९२।७५, ४३३।७४

५- मतिराम सतसई - ग्रं० सं० पद सं० पृ० सं० ३७५।१८५

मन में निरन्तर ब्रह्म का स्मरण होता रहे तो मन भी ब्रह्मस्वरूप हो जाता है[1]। पलटू साहिब नाम को ही साधना का आधार मानते हैं ।

पलटू दिव्य दृष्टि जासु जगत अचया जाय,
साधुहि को साधु हो तो साधु ही ने देखता है[2]

अक्षर अनन्य ने लिखा है पहले तपस्या तीर्थ आदि करे संत संगति करे अवतारों की भक्ति करे आत्म-तत्व का विचार करे तब पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है । क्रम से ऐसी भक्ति करने से सदा शिव की शक्ति कृपा करती है[3]। रसखान की आराधना पद्धति सन्तों से भिन्न है । ये सगुणोपासक हैं। कृष्ण जी के भावों में तल्लीन होना ही इन की आराधना है । ये प्रेमी कवि हैं ज्ञानी नहीं । कृष्ण जी की लकुटी और कमरी पर तीनों लोकों का राज्य छोड़ने को तैयार हैं । नन्द की गाय चराने में सब सुख निछावर करने का विचार है वृन्दावन की कुंजों में सारे सुख अर्पण करना चाहते हैं[4]। इस से इन की प्रेम अनन्यता प्रगट होती है । गोस्वामी तुलसी दास जी राम के पूर्ण भक्त हैं । उन्होंने आराधना-पद्धति में केवल रामनाम को ही माना है। कहते हैं -

राम नाम मातु पितु, स्वामी समरथ हितु, आस राम नाम की भरोसो राम नाम
प्रेम राम नाम ही सों,नेम राम नाम ही को,जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम
स्वारथ सकल,परमारथ को राम नाम,राम नाम हीन 'तुलसी' न काहू काम को ।
राम की सपथ ,सरबस मेरे राम नाम,कामधेनु कामतरु मोसे छीन-छाम को[5] ।

इसी से गोस्वामी जी का कहना है कि दरिद्र दोष तथा संकट को मिटाने वाला राम नाम ही है । इन की आराधना पद्धति और सन्त कवियों से

१- सुन्दर विलास पद सं० १६ पृ० सं० ६०

२- पलटू साहिब की बानी पद सं० ३ पृ० सं० ४८

३- ज्ञान योग अक्षर अनन्य पद सं० ४९ पृ. क्र. ११ - अक्षर अनन्य ग्रंथावली

४- रसखान सुधा पद सं० ५ पृ० सं० ३५

५- तुलसी ग्रन्थावली कवितावली पद सं० पृ० सं० १८८।१८९

भिन्न है । वे राम नाम को अवश्य उत्तम समझते हैं पर इन के सामने राम की मूर्ति रहती है जब कि सन्तों के सामने निर्गुण ब्रह्म ।

ब्रह्म कवि की आराधना सगुणोपासक है । वे भी रसखान की तरह विनती करते हैं -

मैं तो तुम्हो हुं पांगुरौ ते देत है देहि कहाँ अब मजूँ ।
अजहूं ते कहयौं सु लह्यौ, सुर सबै लालन की अभिलाषै ।
ब्रह्म सबै रस चाहैं मेकु जो ते पद पंकज को रस चाखै ।
सोई है साधुनि पै परमेसुर जो अपनो करि कै नहिं राखै[1]

गंग कवि कहते हैं हृदय में राधिका रमण का ध्यान करो कंस के मारने वाले का प्रति दिन गान करो कृष्ण जी के अतिरिक्त और किस का ध्यान कियाजावे[2] । उन्हों ने आराधना में ध्यान को ही महत्ता दी है । यह वर्णन परम्परा के अनुसार है । इस में कोई विशेषता नहीं है न तो सन्तों का सा ज्ञान है और न रसखान के समान प्रेम भक्ति है । सेनापति की आराधना भक्ति कवियों की सी है तुम्हारे ऊपर क्रोध करता हूं, दोष देता हूं, अनुचित वचन कहता हूं, तो तुम्हीं तो हमारे भगवान हो तुम्हें छोड़ और किस से कहूं हमारा जीवन आप के हाथ में है आप सुनवाई न करें, तुम्हारे चरणों की धूलि हमारे जीवन के लिए अमृत है जो तुम्हें अच्छा लगे वह करो[3] । इस में सूर दास की सी दास्य भक्ति व्यक्त की है । मति राम ने निष्कपट प्रेम एवं भक्ति को सब से श्रेष्ठ साधन माना है यह तभी सम्भव है जब भगवान कृपा करेंगे । पति के समान आत्मोत्सर्ग की आराधना का साधन है[4] ।

ज्ञान और योग से तो सांसारिक लोगों के लिए साधना कठिन है भक्ति में भगवान की चित्त वृत्तियों का परिष्कार हो जाता है । इसी से वे

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग पद सं० २१ पृ० सं० ३४८ ब्रह्म कवि
२- " " गंग कवि " ७९ " ४३०
३- सेना पति, कवित्त रत्नाकर पद सं० पृ० सं० ५०।१०१
४ - मतिराम- स्मरण पद सं. पृ. सं. १।२५३

कहते हैं -

ध्याय सदा पद पंकज को मतिराम लखी रस राज बखानी[1]

देव कवि को सांसारिक विफलताओं ने तत्व चिंतन की ओर प्रेरित किया है कवि समझते हैं राधा वर विरह के वारिधि में डूबे बिना साधन व्यर्थ है, सब व्याकुल हैं इसी से वे मन को कृष्ण जी की छत्र-छाया में रखना चाहते हैं[2]। रघुनाथ कवि कहते हैं राम का नाम जपने से शेष आवागमन से छूट गए सनकसनन्दन तथा ध्रुव ने अचल पद पाया वाल्मीक ब्रह्म हो गए अतः राम नाम ही सब से भला है । उसी की आराधना करने को बताते हैं[3]। पद्माकर का कहना है माया के प्रपंच देखने भर को है राम चन्द्र के भजन में ध्यान लगाना चाहिए जिस दिन यम दूतों से काम पड़ेगा उस दिन राम नाम ही काम आयगा[4]। रात दिन सीता राम कहने को ही साधन माना है जाते, खेलते, उठते, बैठते, जागते, सोते निरन्तर स्मरण ही करना चाहिए ।

या जग जानकी जीवन के सब क्यों इक आनन गाइ अघइये ।
त्यों पद्माकर भारथ बौ बहु दूने पद पाइ फिरै फिर अइये ।
नाम अनन्त अनन्त कहैं ते कहैं न परै कहि काहि बखैये ।
राम को रूरी कथा धुनि मे को करोरन काम कहाँ कहाँ पै हैं[6]।

ठाकुर कवि ने यशोदा मइया के लाल कृष्ण जी की आराधना करने को कहा है वे कहते हैं घुंघराले बालों वाले कृष्ण जी के पैरों पड़ना चाहिए[7]

१- मतिराम रस राज पद सं० १ पृ० सं० ३०३

२- देव सुधा पद सं० १८ पृ० सं० ९

३- हजारा रघुनाथ पद सं० १४ पृ० सं० २१

४-६ हजारा पद्माकर पद सं० पृ० सं० ३१।१४, ३०।१३, ३५।१३ -

७- रीति श्रृंगार ठाकुर पृ० सं० १९७

दीन दयाल कवि ने नाम जप को साधना माना है उन का कहना है प्रेम सू लागो सुख धाम घनश्याम सेत जो नाम के लिए ते ताप पाप कोटि हरै है[१]। इन सब कवियों ने नाम (स्मरण) को ही आराधना का साधन माना है । रसखान ने तो केवल प्रेम को महत्ता दी है ।

अन्य पूजनीय व्यक्ति -

गोस्वामी जी ने कवितावली में राम, शिव की प्रशंसा की है। 'शिव राम स्वरूप अगाध (अनूप) विलोचन मीनन को जल है'। उन का कहना है वेद पुराणों तक ने यही कहा है कि राम नाम के प्रसन्न होने से ही भला है । कहते हैं -

> धरम के सेतु जग मंगल के हेतु भूमि भार हरिबे को अवतार लियो नर को ।
> नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल प्रभु मानि मान, लोक-वेद राखिबे के पन
> रघुबर को ।
> बानर विभीषन की ओर के कनावड़े हैं, सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को ।
> राखे रीति आपनी जो होई सोई कीजै, बलि, 'तुलसी' तिहारो घर जायऊ
> है घर को[२] ।

शिव जी के गुण गाए हैं । जिन से शरीर अजर अमर हो जाता है । अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष को देने वाले हैं । वे भोला नाथ औघर दानी हैं । संपदा प्रसन्न होते ही दे देते हैं कहते हैं -

> देत संपदा-समेत श्री निकेत जाचकनि, भवन विभूति, भाँग, वृषभ बहनु है ।
> नाम बाम देव, दाहिनो सदा-असंग-रंग, अर्द्ध-अंग अंगना अनंग को महनु है ।
> 'तुलसी' महेस को प्रभाव भाव ही सुगम, निगम-अगम हू को जानिबो गहनु है ।
> भेष तौ भिखारि को, भयंक रूप संकर, दयालु दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है[३]।

१- दीन दयाल वैराग्य दर्शन पद सं० २ पृष्ठ सं० १४० पृ०।२४२
२- तुलसी रचनावली - कवितावली पद सं० पृ० सं० ।१३२।२६५
३- " " " " " " " १६०।२७६

ये सगुणोपासक थे उस से इन का मन सगुण रूप राम शिव आदि में रमा । इन की भक्ति तथा संतों की भक्ति में इसी से अन्तर है ।

सुन्दर दास ने गुरु की महिमा गाई है वे कहते हैं गोविन्द के कारण जीव रसातल को जाता है पर गुरु के उपदेश से भव के फन्दे से जीव छूट जाता है । गोविन्द जीव को कर्मों से बांधता है गुरु स्वच्छंद कर देता है । गोविन्द के कारण जीव संसार में डूब जाता है पर गुरु सुख सुनन्द से निकलता है गुरु की महिमा गोविन्द से अधिक है[१]। कहते हैं गुरु ने सब सन्देह मिटा दिए पूर्ण ब्रह्म का प्रकाश दिखाया गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता गुरु के अनन्त गुण हैं कोई उसे नहीं कह सकता[२]। गुरु की प्रशंसा करते हुए कहते हैं -

ज्ञान के प्रकाश जाके, अन्धकार भयो नाश
देह अभिमान बिन, रह्यो आनि छार सौ
कोई सुख सागर, उजागर बैराग रंग्यो
जाके बैन सुनत, बिलात है बिकार सौ
अगम अगाध अति, कोऊ नहिं जानै गति
आतमा को अनुभव अधिक अपारसौ
ऐसे गुर देव वन्दनीय निहुँ -
लोक माहि, सुन्दर विराजमान सोमत उदार सौ[३]।

सूर वीर की प्रशंसा सभी सन्तों ने गाई है । सुन्दर दास का विचार है कि सूर वीर साधु का सुख नगारे की चोट सुनकर खिल जाता है[४] यहां इन्हों-ने साधु के लिए सूर वीर का रूपक बांधा है अग्नि में सती के समान वह आग में

१- सुन्दर विलास पद सं० २१ पृ. ७.८
२-३ " " २१, १३ पृ. २७५
४- " " १, १३३

कूद पड़ता है । गुरु के शब्द रूपी नगारे को सुन कर साधु रूपी शूर वीर अपने ममत्व को छोड़ कर निर्भय होकर रण में कूद पड़ता है[1]। उस के पास ज्ञान का कवच तथा विवेक का छत्र होता है पर ऐसा व्यक्ति करोड़ों में एक होता है[2]। शूर वीर मन रूपी हाथी को पकड़ कर रखता है काम क्रोध मोह लोभ मद रूपी हाथी के पैरों को बांध देते हैं[3]।

> कबहूं जो करै और सावधान रहै और
> सदा एक हाथ में अंकुश गुरुज्ञान है ।[3]

साधु के प्रति सुन्दर दास जी का कहना है कि उस की प्रीति पर-ब्रह्म से लगी रहती है वहां द्वैत भाव नहीं रहता वहां रहते हैं वहीं ज्ञान चर्चा होती रहती है साधु की संगत सब से अच्छी होती है[4]। साधु का ऐसा प्रभाव होता है कि कर्म रूपी कलंक मिट जाते हैं । कंचन के समान शुद्ध कर देता है[5]। सब कुछ मिल सकता है लेकिन सन्त समागम दुर्लभ होता है वह डूबते को उबारते हैं दुख को सुख मानते हैं ।

> सुन्दर कहत भ्रम छिन में बिलाय जाता साधु ही के
> संग तें स्वरूप ज्ञान होत है ।[6]

सुन्दर दास कवि का कथन है कि वैराग्य उसे कहते हैं जिस में व्यक्ति सब से उदास हो जाता है।अन्तः करण की वासना समाप्त हो जाती है । चित्त ईश्वर में लगा रहता है। ब्रह्म और जगत को एक ही मानते हैं ऐसे ज्ञान से भ्रम भागता है[7]। सुख और दुख ऊंच और नीच में समान दृष्टि होती है । सब तरह के कर्म करते हुए भी अहंकार नहीं होता है वासना नहीं रहती है चाहे अब शरीर छूट जावे उस की चिन्ता नहीं होती।वह जाति पांति को कुछ नहीं मानते[8]। कहते हैं -

---

१,२,३- सुन्दर विलास पद सं० ४,७,१३ ५.८. १३४, १३२, १३६
४,५,६- " पद सं० ५.८. ११/१३६, ४/१३६, १८/१४१
७-८ " ज्ञानी को अंग पद सं. १४, २, १

जैसे पंछी गगन कूं चलत अलमि आदु
तैसे ज्ञानी वेद करि, करम करतु है ।
जैसे पंछी पंखु करि, चुगत अहारभूमि
तैसे ज्ञानी उर में, उपासना धरतु है ।
जैसे पंछी पंखन सूं, उड़त गगन माहि
तैसे ज्ञानी ज्ञान करि, ब्रह्म में चरतु है ।
सुन्दर कहत ज्ञानी तीनूं भाँति देखियत
ऐसी विधि जाने सब संसय हरतु है ।[1]

अन्य सन्त कवियों ने कवित्त कम लिखे हैं । अन्य कवियों ने निर्गुण ब्रह्म की प्रशंसा सगुण नामों में की है । इन नामों के प्रति इन की कोई विशेष अनुभूति नहीं थी पर निर्गुण ब्रह्म को साकार रूप देने के लिए प्रचलित रूप राम, कृष्ण, रहीम, पैगम्बर आदि का नाम मिलता है । मलूक दास भी कहते हैं

राम मेरे प्राण हैं रहिमान हमेरे दीन इमान ।

पर इस में कोई दुविधा नहीं है कि कृष्ण जी के रूप में ब्रह्म की अनुभूति उन्हें थी और वह उसी को सब कुछ मानते हैं -

हरि समरथ मोहि मायाँ मुकुंद की सौं
छाड़ि केशव राम मेरो दूसरो न कोई है ।[2]

यारी साहिब ने पिय का तख्त और उसी की बादशाही की प्रशंसा की है उस का तेज चमकता रहता है उसी का हुकुम चलता है वह अलख तथा अलेख है ।[3]

१- सुन्दर विलास प४८.५.८.२८/१५२
२- मलूक दास जी की बानी पद सं० पृ० सं० ४।१८
३- यारी साहिब की रत्नावली पद सं० पृ० सं० २।१४

मीरा साहब ने गुरु प्रशंसा के गान गाये हैं गुरु के प्रताप से भ्रम के कपाट खुल जाते हैं[1]। सन्तों के लिए कहा है कि उन की ब्रह्म दृष्टि खुली रहती है वे अनुभव युक्त ज्ञानी तथा प्रेम पंथ पर चलने वाले होते हैं[2]। अक्षर अनन्य ने सन्त के लिए कहा है -

शील सन्तोष सुबुद्धि सुलक्षण धीर गम्भीर भने जग न्यारे ।
धर्म दया निर्लोभ निरासक निर्भय भक्ति अराधन हारे ।
धर्म करै सुकरै प्रभु अर्पन नाहीं फल चाहत मोह उजारे ।
सात्विक ज्ञान अनन्य भने यह सन्त सदा भगवन्त पियारे ।[2]

संस्कृत काव्य से ही गंगा यमुना की प्रशंसा की परम्परा चली आ रही है । हिन्दी साहित्य में भक्ति साहित्य में इस परम्परा का आभास मिलता है । श्रृंगार की कविता करने वाले कवियों में अधिकांश ने इस परम्परा को आगे बढ़ाने में सहयोग दिया है । इन कवियों की एक विशेषता यह भी है कि चाहे इन में भगवान के प्रति अनुभूति न हो पर एक तो मंगलाचरण में किसी न किसी नाम की स्तुति गाई है दूसरे कृष्ण और राम दोनों को उपास्य माना है । उन्हीं से विनती की है उन के आगे अपना दुखड़ा गाया है तथा निरन्तर प्रेम रखने की याचना की है ।

रसखान कृष्ण भक्त थे इन्होंने केवल कृष्ण जी, शिव जी की प्रशंसा की है कहते हैं -

इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि, नागन के गन गाजत री
मुरली मधुरी धुनि ओठन पै, उत डामर नाद सों बाजत री
रसखानि पितंबर एक कंधा पर, एक बघंबर राजत री
कोउ देखहु संगम लै बुड़की, निकसे यह भेख विराजत री[3]

१&२ मीरा साहिब की बानी पद सं० पृ० सं० ७।४९, ५।४८
२ - अक्षर अनन्य - ज्ञानयोग पद ह.प.ह. २।४
३- रसखान सुधा - हरिशंकर पद सं० पृ० सं० १६।४९

इन्होंने सगुणोपासना की है इसी से उन के विचार सन्तों से भिन्न हैं ।

ब्रह्मकवि ने गंगा जी की प्रशंसा की है । मुकुन्द भी तुम्हारी महिमा जानते हैं तुम्हारा यश सभी दिशाओं में फैला है शिव जी भी तुम्हें अच्छी तरह जानते हैं क्यों कि इन्होंने तुम्हें सिर पर धारण किया है[1] । गंग कवि ने मंगलाचरण में कृष्ण जी की आराधना की है । मोर पंख का मुकुट सुन्दर काछनी पीत वस्त्र गले में हार शोभायमान है[2] । यमुना जी की स्तुति की है -

नन्द मन्द गई होत चित्त अति हर्ष होत
देखिए न यम लोक यमुना के न्हाए ते[3] ।

सेनापति ने नरसिंह के स्वरूप की महत्ता गाई है । नरसिंह के नख चन्द्रकला से भी अधिक चमकदार हैं । शत्रुओं को नाश करने वाले, हिरनाकुश को मारने वाले दुख और पाप को हरने वाले दास पर करुणा करते हैं[4] । इन्होंने राम चन्द्र के खड़ाऊं की प्रशंसा की है । राजा राम तीनों लोकों के नायक हैं -

सेस दुख खंडन भरत सिर मंडन बन्दौ सब खंडन खड़ाऊं रघुराज की[5] ।

राम चन्द्र जी धर्म के धुरन्धर हैं दानव दल नाश करने वाले देवताओं और ब्राह्मणों का दुख हरने वाले हैं । सेस सुखरूपी चन्द सूरौ न समान जाके पूरौ अवतार भयो पूरन पुरुष कौ[6] । शिव जी की प्रशंसा की है जो एक बेल पत्र चढ़ाता है उसे चार फल पहले ही मिल जाते हैं[7] । उन के सिर पर गंगा जी विराजमान हैं मस्तक पर चन्द्र शोभायमान है गौरी अर्धांगिनी है सेवक की सहायता करने वाले हैं । गंगा जी की प्रशंसा परम्परा के अनुकूल की है ।

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग पद सं० २५ पृ० सं० ३४८

२-३ महाकवि श्री गंग के कवित्त पद सं० पृ० सं० १।१ , २।१

४-७ सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० पृ० सं० ५।३६,२।१,४।०,५।१५

देव ने राधा कृष्ण, राम सीता, शिव पार्वती, दुर्गा आदि सभी के प्रति प्रशंसा के गीत गाए हैं । वे सभी के उपासक थे । राधा कृष्ण की प्रशंसा करते हुए कहते हैं -

बेदन हू गने गुन गने अनगने भेद ।
भेद बिनु जाको गुन निर्गुन हू गायो है ।
कौसिक बिरंचि महा मुनन को संध्यो जहाँ ।
संध्यो सुध बुध होई पर ब्रह्म सुख है[1]।

ब्रह्म के स्वरूप को परम्परा से अव्यक्त समझा गया है । इन का कहना है कि कृष्ण जी उन्हीं अव्यक्त ब्रह्म के अवतार हैं । कृष्ण जी को वेद का सेतु तथा ब्रजवासियों का सर्वस्व माना है । एक जगह एक चित्र शिव पार्वती के विवाह का खींचा है -

चन्द कला सी धरी भसम अंग सी धरी ।
भुजंगी भांति सी धरी अरधंगी के बरत सी[2]।

कविन्द ने पार्वती महादेव की स्तुति की है । पार्वती को निराधार रण रूप तथा त्रिलोकमयी माना है । कहते हैं -

जहाँ देव वृन्दन को नर्तन रांटी भीर
तहाँ अम्ब तेरी देव बाकी निपटी है[3]।

भिखारी दास जी ने महादेव जी की प्रशंसा की है जिन के मस्तक पर चन्द्रमा है शरीर में विभूति, शिर पर गंगा जी ऐसे शिव जी ही हमारे कष्टों को हरेंगे तथा तारेंगे[4]। इन्होंने कहा है संसार राम जी का दास है राम के प्रताप से संपूर्ण मनोरथ सिद्ध होते हैं । राम नाम घट घट में निवास करता है[5]।

१-२ देव सुधा पद सं० पृ० सं० ७।४३, ४४।२२
३- हजारा कवित्त " २।२३ - कविंद - हमीदुल्लाखां
४- हजारा भिखारी दास " १९।७०
५- काव्य निर्णय भिखारी दास पृ० २८१

बेनी प्रवीन ने नंदो लाल की प्रशंसा की है चन्दन अगर धूप से सुवासित मणि माणिक का शृंगार किए हुए मस्तक कलगी से शोभायमान है । ऐसे नन्द लाल के चरणों की वन्दना की है[1]। पद्माकर ने दशरथ नंद की प्रशंसा में अपने मनोभावों को व्यक्त किया है वह अवध विहारी गीध गुह को तारने वाले हैं "आनन्द के कंद जग उपावन जगत वंद दशरथ नंद के निबाहिये निबाहिये[2]। गंगा की प्रशंसा में कहते हैं सब यज्ञों तथा धर्मों का अन्तिम श्रेय गंगा जल का पान करना है[3]। घनानन्द कवि ने राधा कृष्ण की प्रशंसा की है हरि राधा जहाँ जहाँ राजत हैं वह ठौर अथा रुचि रंजन है[4]। यमुना जी की प्रशंसा में कहते हैं जो सुख आँखों को यमुना के निहारने में होता है उस का वर्णन नहीं किया जा सकता ।

आनन्द के घन माधुरी धार लागि रहै
तरल तरंगनि की गति लेति देई है[5] ।

दीन दयाल गिरि ने कृष्ण जी के चरित्रों का वर्णन किया है कहीं तो लकुटी लेकर गाय को चराते हैं कहीं दधि चुराते हैं कभी उन्हें यशोदा जी उखल में बाँधती हैं तरह तरह के स्वांग करके सब के मन को हरते रहते हैं[6]।

इन्होंने गंगा जी की प्रशंसा की है । गंगा जी की धारा चारों फलों को देने वाली है इस के किनारे हंसों की भीड़ शोभायमान है जहाँ जाती है वहाँ मंगल होता रहता है[7]। इसी तरह एक जगह लिखा है "धूर जटी जटा

१- नव रस तरंग पद सं० पृ० सं० २।१
२-३ हजारा पद्माकर " २६।१३, २९।२९ - हस्तलिखित
४-५ घनानन्द ग्रंथ प्रकाश यमुना य " ४।९६, ३।१००
६- दीन दयाल गिरि " १५२।२९
७- " " ३।१२१

कि निर्गुण ब्रह्म ने ही सगुण रूप धारण किया है -

गावहिं गुनी गनिका गंधर्व और सारद सेष सबै गुन गावत ।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यों ब्रह्म त्रिलोचन पार न पावत ।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरन्तर जाहि समाधि लगावत ।
ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भर छाछ पै नाच नचावत[1] ।

ब्रह्म कवि ने भी इसी भाव को व्यक्त किया है, चतुरानन वेद सभी इन का भेद न पा सके मुनियों ने मौन धारण कर के आराधना की और इन को पाने का प्रयत्न किया पर इन्हीं को यशोदा रानी ताली देदे कर नचा रही है[2]।

मतिराम ने जगदम्बा की शक्ति पर विश्वास किया है -

पियूष पयोध मध्य मनिन को कल्प भूमि
रोचि ही रुचिर रुचि रोचक रचन मैं[3] ।

कहते हैं ईश्वर सर्वगुण सम्पन्न सत्ता है जो चराचर जगत में लीला करने की इच्छा से अपने आप को अनेक रूपों में प्रकाशित करता है किन्तु अज्ञान वश जीव पहचान नहीं पाता[4]।

पद्माकर ने ब्रह्म को सर्वशक्तिमान माना है । रात को दिन और दिन को रात कर सकते हैं । वह पूरा समर्थवान है । जो कुछ चाहता है वह करता है "चाहे सुमेरु को राई करै रचि राई को मेरु सुमेर बनावै[5]"।

<u>आत्मा</u> - सुन्दर दास कहते हैं आत्मा अचल शुद्ध रूप है । देह के व्यवहार से अन्तर हो जाता है । आत्मा को ही देवता तथा शरीर को

१- सुजान रसखान पद सं० ५ पृ. सं. १४
२- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग पद सं० पृ० सं० ८।३४६
३-४ मतिराम ललित ललाम पद सं० ३९१, ३६८ पृ. सं. ४३०, ४३४
५- हजारा पद्माकर पद सं० पृ० सं० ३०।१४
६- सुन्दर विलास -, १०/११२

मन्दिर माना है[1]। शरीर के नाश से आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता[2]। जैसे तिल में तेल, दूध में घी, काठ में अग्नि, पुष्प में सुगन्धि, ईख में रस वैसे ही देह में आत्मा है[3]। अग्नि, आकाश, शरीर, इन्द्रिय अन्तःकरण सब भ्रम है केवल आत्मा ही अनुभव में आती है[4]। ब्रह्म को कोई जान सकता। इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार किसी से आत्मा का ज्ञान नहीं होता[5]। कहते हैं जैसे व्योम कुंभ के बाहर और भीतर है-

कोउ मर कुंभ को उठाय कौन ले गयो ।
तैसे ही सुन्दर देह, जो रहै नाश होइ,
आत्मा अचल अविनाशी है अनामयी[6] ।

मीरा साहिब का कहना है -

मीरा ब्रह्म रूप निज आत्मा अनूप,
सो न भूल्यो विषय बुद्धि सारी किसो भ्रम परना[7]।

माया - सुन्दर कवि का कहना है बालू के मन्दिर में जीवन की आशा रखते हैं। पल पल दिन घटते जाते हैं। "चंचल चपल माया भई किन किन की[8]। अक्षर अनन्य कवि कहते हैं माया ही ब्रह्म है, ब्रह्म ही माया है[9]। देव कवि का कहना है यह सारा विश्व प्रपंच माया का खेल है। माया ब्रह्म की शक्ति है। इस का उद्भव ब्रह्म से होता है।

सुरन सुरानहि नितावै नटी सीधी नटी सील भानु आनु
देव माया भानुमती है[10]।

१-६ सुन्दर विलास पद सं० ५०, ३५, ३२, २२, ९, ३५ पृ.सं. ११४, ११८, ११६, १५२, १११, ११८

७- मीरा साहिब की बानी पद सं० २५/४८

८- सुन्दर विलास पद सं० १० पृ.सं. १४

९- अक्षर अनन्य पद सं० १४ पृ.सं. ६

१०- देव और उन की कविता - डा० नगेन्द्र पृ० सं० १२५

संसार - संसार के प्रति सुन्दर कवि का कहना है कि संसार मिथ्या है । इन का यह भी कहना है कि ब्रह्म ही जगत होइ, ब्रह्म पूरि रह्यो है[१]।

शरीर - सुन्दर दास का कहना है देह विनाशी है, आत्मा अविनाशी है[२]। जब तक शरीर में चेतन है तभी तक सब कार्य होते हैं । देह के अशक्त होने पर सब क्रिया बन्द हो जाती है[३]। आयु घटने लगती है अतः हरि भजन कर लेना चाहिए[४]।

यारी साहिब का कहना है यह मिट्टी को खेल खिलौना बनो एक भाजन नाम अनन्त धरो है[५]। देव कवि कहते हैं जात उठी पुर देह की पैठ अरे बनिये बनियी नहिं रे है[६]। सब एक ही ब्रह्म के उत्पन्न हुए हैं[७]।

काल - सुन्दर दास जी का कहना है काल अचानक आकर शरीर को छार कर देता है[८]। काल विकराल सभी को खाता है । सारा संसार काल के मुंह में जाता है[९]। काल का प्रचंड वेग होता है[१०]। जब ते जनम लेत तब ही ते आयु घटत जाई सो कहत मेरो बड़ो होत जातहै । आज और काल्ह और दिन दिन होत और दौर्यो दौर्यो फिरत खेलत अरु खात है । बालापन बीत्यौ जब जोबन लग्यौ है आइ जोबनहु बीते बूढ़ो डोकरो दिखात है । सुन्दर कहत ऐसे देखत ही बूझि गयो तेल घटि गए जैसे दीपक बुझात है[११]। धरनी दास जी कहते हैं जीवन थोड़ा बचा है । जीव पर दया, साधु संगति कर लो नहीं तो काल आ जायेगा[१२]। दीन दयाल जी कहते हैं

१- सुन्दर विलास पद सं० ४ पृ. सं. १२३

२-४ " सांख्य ज्ञान १०, देह आत्मा १०, उपदेश ११ पृ. सं. १११, ३६, १५

५- यारी साहब की रत्नावली पद सं० ८ पृ० सं० १६

६-७ देव सुधा पद सं० पृ० सं० ५०।९, ९।५

८-११ सुन्दर विलास पद सं० ५, २५, २०, ११ पृ. सं. २५, ३२, ३०, २८

१२- धरनी दास की बानी पद सं० ७ पृ. सं. ३२

बड़े बड़े राजा थे, नगरी बसी थी । चार दिन में जंगल हो गया । जंगल के खेत हो गए अतः -

जानैं नहिं आदि काल

गहि अहि ही बिसाल

या जग के ख्याल इन्द्र जाल

के मिसाल है[1] ।

मन - सुन्दर दास कहते हैं जैसा भाव होता है वैसा ही मन बनता है[2]। कहते हैं हाथी के कान, पीपल के पत्ते तथा ध्वजा की तरह मन स्थिर नहीं रहता है।

धूम को सो धाम ताको राखिबे को चाव ऐसो

मन को सुभाव सो तो सुन्दर कहत है[3] ।

मन इन्द्रियों का सुख चाहता है[4]। "मन को नचाय सब जगत नचत है"[5]।

अभिमान - सुन्दर दास जी ने गर्व को बहुत बुरा समझा है । कहते हैं हाड़ मांस वाले शरीर में नाश किया है । ऊपर से टेढ़े टेढ़े चलता है काहे पर गर्व किया है[6]।

काम - कहते हैं इन्द्रियों के सुख को सुख मानते हो फिर दुखी होते हो। जैसे इन्द्रियों के सुख के कारण मछली पकड़ जाती है । बन्दर मुट्ठी नहीं खोलता है वैसे ही भूले हुए हो[7]।

लोभ - ममता की गठरी सर पर क्यों रखे रहते हो । मेरा घर मेरे बच्चे क्यों करते रहते हो । तुम तो बावले हो बुद्धि खो गई है । तुम्हें रत्ती

१- बीन सवाल - पद सं० १६ पृ.सं. १४२

२-५ सुन्दर विलास - पद सं० १२,१०,१३,८ पृ.सं. ६२,५८,५७,५८

६- " " ४ पृ.सं. ५५

७- " " १९ पृ.सं. १६

मर भी लाज नहीं आती । काम बिगाड़ कर के जन्म व्यर्थ करते हो[१]।

मोह - बालक पैदा होते ही माता के मोह में फंस जाता है । राम का नाम छोड़कर मोह में फंस जाता है[२]। दुख के समुद्र में पड़कर भी डर नहीं लेता । नाग फांस में बार बार पड़ता है[३] ।

संत सदा उपदेश बतावत, केश सबै सिर स्वेत भये हैं ।
तू ममता अजहूं नहिं छाड़त मौतहु आय संदेश दये हैं ।
आज कि काल्ह चलै उठि मूरख तेरे तो देखत केते गये हैं ।
सुन्दर क्यों नहिं राम संभारत या जग में कहो कौन रहे हैं[४]।

आचरण-पद्धति - सुन्दर दास ने व्यक्ति के आचरण को बड़ी महत्ता दी है ।

सत्य - उन का कहना है धन, धाम, सुत दारा सब झूठे हैं । इसी में व्यक्ति मर जाता है । सत्य कभी नहीं मर सकता[५]।

निन्दा - अपने अवगुणों को न देखकर दूसरों के अवगुणों को देखता है। 'पांव के तरे की नहीं सूझे आग मूरख तूं, और सूं कहत तेरे सिर पै बरत है[६]।

विवेक - आचरण में विवेक आवश्यक है । वचन कई तरह के होते हैं पर विवेक कर लेना चाहिए । जैसे हंस दूध पीकर जल छोड़ देता है दही में से मक्खन निकाल लिया जाता है, मक्खी शहद को भ्रमर सुवास को ले लेता है वैसे ही बातों में विचार करना चाहिए[७]।

१- सुन्दर विलास - पद सं० ६ पृ. ८. १२
२-४ " " २४, ३०, ३१ पृ. ९. १५, २१, २२
५- " " ३३ - . २१
६- " " १ - ५३
७- " " २ - [illegible]

तृष्णा - सुन्दर दास जी कहते हैं तृष्णा सभी को चक्कर लगवाती है । राजा को रंक कर देती है[१]। व्यवहार में तृष्णा मनुष्य का पतन करती है । तृष्णा होने से मन में सन्तोष नहीं होता । काल सिर पर खड़ा है वह भी नहीं दिखाई देता[२] ।

कुंडलियों की परम्परा -

आराधना - पद्धति - संत साहित्य में अन्योक्ति की परम्परा में कुंडलियों की परम्परा मिलती है । पल्टू साहिब ने कुंडलियों में अपने विचार व्यक्त किए हैं । पल्टू साहिब कहते हैं जो भगत होकर सोता है उस की रक्षा साहिब करते हैं । उस को कोई सोच नहीं होता[३]। उन का कहना है मालिक का नूर जब दिल में आता है तब भ्रम की गांठ खुल जाती है[४]। ब्रह्म के स्थान वर्णन करते हुए कहते हैं कि अनहद के पार झंडा गड़ा है जहां वेद पुरान का भी गम्य नहीं[५]। इस को पाने का साधन नाम ही है । कहते हैं -

दीपक बारा नाम का महल भया उजियार[६] ।

- - - -

- - - -

छूटी कुमति की गांठि सुमति परगट होय आयी ।

सत्त नाम को सब से मीठा कहा है । इसे सिर देकर, आपा त्याग कर लिया जा सकता है[७]। गोस्वामी तुलसी दास के भाव की तरह,"कामिनी नारि पियारि जिमि, लोभी जिमि गहि दाम । तिमि रघुनाथ निरंतर, मोहि लागी प्रिय राम"। पल्टू दास जी ने भी कामी की तरह प्रीति करने को कहा है[८]।

१-२ सुन्दर विलास - पद सं० १३, ४ पृ.सं. ८१, ३८

३-६ पल्टू साहिब की बानी पद सं० १५५, ९४, १०४, १५ पृ.सं. ६१, ३०, ४८, ६

७-८ " " १३, ९२ पृ.सं. ५, ३५

कबीर दास जी की तरह खाला का घर प्रेम का नहीं होता है[1] ऐसा कहा है। प्रेमी वैसा ही व्याकुल रहता है जैसे मणि बिना सर्पिणी तथा जल बिना मछली[2]। इतनी उत्कटता प्रेम में होना आवश्यक है।

भक्ति करने में एक विशेषता सभी सन्तों ने कही है कि गर्व का पूर्णतया परित्याग होना चाहिए। इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए पल्टू दास जी ने कहा है तन मन की लज्जा खो कर भक्ति करो[3]। शब्द की गांसी लगने से व्यक्तित्व मर जाता है[4]। कहते हैं मन को महीन महीन कर लेना चाहिए तभी ब्रह्म मिल सकते हैं[5]।

मोह वासना का जरै तब छूटै संसार
तब छूटै संसार जगत से प्रीति न कीजै[6]।

भीखा साहिब ने राम का ध्यान करने को परम प्रवीण कहा है। सब विषयों को छोड़ देने से उस का आवागमन नहीं होता[7]। जो मन वचन विचार से आराधना करता है वह धन्य है। उस पर काम, क्रोध, लोभ, मोह का प्रभाव नहीं पड़ता। परमात्म चैतन्य रूप महं ह्रदि समावै[8]। दीन दयाल कवि कहते हैं कि चकोर की तरह की प्रीति करनी चाहिए। उस का प्रेम पवित्र है वह वियोग नहीं सह सकता। भाव यह है कि आराधना में व्यक्ति को प्रियतम के बिना चैन नहीं पड़ती। ये अन्योक्ति के कवि हैं अतः इन्होंने अपने भाव ऐसे ही व्यक्त किए हैं[9]। कहते हैं कि सब जंजाल छोड़ कर गोपाल लाल को पकड़ो[10]।

<u>अन्य पूजनीय व्यक्ति</u> - इन कवियों की कुछ मान्यताएं थीं

१-२ पल्टू साहिब की बानी पद सं० ७१, ६६ पृ. सं. २८, २९

३-६ " " १३२, १०५, १६१, ११९ पृ. सं. ५२, ४१, ६३, ४८

७-८ भीखा साहिब की बानी " २, ५ पृ. सं. ७२, ७७,

९-१० दीन दयाल पद सं० पृ० सं० १।१०५, ३०।१००

जिस में प्रभु का गुणानुवाद एक मुख्य विषय है । पलटू साहिब ने कहा है हरि अपने भक्त का अभिमान नहीं सह सकता । दुर्वासा चौदहों भुवन फिरे अन्त में अंबरीष की शरण में आने से ही शान्ति पा सके[१] । सन्तों के लिए परंपरानुसार ही भाव व्यक्त किए हैं -

संत चढ़े मैदान पर तरकस बांधे ज्ञान ।
तरकस बांधे ज्ञान मोह दल मारि हटाई ।
मारे पांच पच्चीस दिहा गढ़ आगि लगाई।
काम क्रोध को मारि कैद में मन को कीन्हों[२]।

सूर वीर और संत को एक समान कहा है । कहते हैं संत कपास की तरह कष्ट सहते हैं । दूसरों के कारण दुख भी सह लेते हैं[३]। पतिव्रता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि वह सब के आधीन रहती है, सब की सेवा करती है, मीठे वचन बोलती है तथा भजन में तल्लीन रहती है[४]।

भीखा साहिब ने गुरु की प्रशंसा की है । उन का कहना है यदि अपना भला चाहते हो तो सद्गुरु की खोज करो, वही कृपा कर के नाम का मंत्र देंगे[५]। गुरु ही इस शरीर के कपाट को खोल सकते हैं, उन्हीं के पास ताली है । उन पर विश्वास करने से तुम्हें वह वस्तु दिखावेंगे जहां आत्म-राम कपाट बन्द किए बैठे हैं[६]।

दीन दयाल कवि ने गणेश जी की प्रशंसा की है । "लंबोदर मुखचंद देव दामोदर बंदों[७]। इन्हों ने पपीहा तथा चातक के प्रेम की अनन्यता को उच्च कोटि का माना है । इसी से इन के प्रति कई पदों में सूक्तियां व्यक्त की हैं । वह स्वाती से कहते हैं कि तुम संसार को जीवन दान देने वाले हो ।

१-४ पलटू साहिब की बानी पद सं० ३३, १००, २६, १०७ पृ.सं. १२,३४,१०,४२

५-६ भीखा साहिब की बानी पद सं० २, ९ पृ.सं. ७८, ८०

७- दीन दयाल की बानी पद सं० २ पृ० सं० १९३

चातक प्यासे रटि मरे तापै धरे पखान[१] ।

<u>विश्वास</u> - पल्टू साहिब का कहना है कि उल्टा कुआं आकाश में है । उसी कुआं बारहों महीने अखंड निरंजन बलता रहता है । बिना सद्गुरु के उसे कोई नहीं देख सकता[२]। ब्रह्म के स्थान के लिए ऐसा विचित्र वर्णन किया है । जैसे फूल में बास तथा काष्ठ में अग्नि है वैसे ही ब्रह्म घटघट में व्यापक है[३]। उन को विश्वास है कि 'मोर राम मैं राम का ताते रहौ निशंक,' उन्हीं के भरोसे रहने से कोई डर नहीं[४] । ब्रह्म के स्थान में न चन्द्रमा है न सूर्य, न पानी न वायु, वहाँ न दिन होता है न रात[५]। इस तरह कभी कभी नेति नेति की सी भावना हो गई है[६] । माया के लिए उन का कहना है -

जल में उठत तरंग है जल ही माहिं समाय[६] ।

जल ही माहिं समाय कोई हरि कोई माया ।

संसार को इन्हों ने भी और सन्तों की तरह 'धुआं का धौरहरा' तथा 'बालू की भीत' के समान कहा है[७] । शरीर पुराना होता जाता है पता नहीं आज जाता है कि कल[८]। इन का कहना है कि संसार मान बड़ाई के कारण मरा जा रहा है[१०]। मन मारना बड़ा कठिन है, जैसे वह हाथ में आवेगा यह समझ में नहीं आता न तो उस के कोई रूप है और न रेखा ।कभी वह बैरागी हो जाता है कभी राजा । कभी रोता है कभी हंसता है । इस की गति निराली है[१०]।

सत्संगति के विषय में परंपरागत विचार हैं ।

पारस के परसंग से लोहा महंग बिकाय ।[११]

चंदन के परसंग चंदन भई बन की लकरी ।

जैसे तिल का तेल फूल संग महंग बिकाई ।

१- दीन दयाल पद सं० ५९ पृ० सं० १०६
२-६ पल्टू साहिब की बानी पद सं० १६९,७९,७६,१०२,१०६ पृ. सं. ६५,३१,३०,६०,१
७-८-९ " " ३०, ३६ पृ. सं. १७,१८
८-१०-११-१२ " १६५,१८२,८१ . ६५,७१,३२

भीखा साहिब का ब्रह्म के विषय में विचार है कि जब जीव का प्रियतम से मिलन होता है तब कल्याण होता है ।[1] दीनदयाल गिरि कवि का काल के प्रति कहना है कि बड़े बड़े राजाओं तक को व्याल के समान एक कौर में समाप्त कर देता है ।[2] व्याल की अन्योक्ति में कहा है कि सत्संगति से ही व्याल जीवन्मुक्त हुआ । वैसे ही जीव कठोरता दूर कर मृदुता पाता है, मन की श्यामता दूर होने पर जब रूपी लालिमा छा जाती है । लालिमा से मधुरता स्वभाव में आ जाती है । सारी बुराइयां दूर हो जाती हैं तथा सर्वत्र उस का यश फैल जाता है ।[3]

<u>आचार शास्त्र</u> - पल्टू साहिब ने आचार-विचार के विषय में भी अपने भाव व्यक्त किए हैं । व्यक्ति को मन की मौज से तथा विवेक से काम करना चाहिए, तथा सत नाम कभी नहीं छूटना चाहिए ।[4] तथा भक्ति बीज जब बोवै मिति बिन करै विवेक इस से ज्ञान उत्पन्न होता है ।[5] दया के प्रति कहा है खजूर के पेड़ की तरह संपत्ति बढ़ने पर बिना दया के व्यर्थ है । कहा है संपत्ति में बढ़ जाय दया बिन भया भिखारी । चाकिहु में बढ़ि जाय भक्ति बिन भया भिखारी ।[6] उन का कहना है दया तथा भक्ति से दूर जीव की शोभा नहीं होती है ।

<u>उपासना-परक बरवै की परंपरा</u>

इस छंद के रचयिता रहीम हैं । गोस्वामी तुलसीदास जी ने बरवै में रामायण लिखी है । परंपरा से प्रत्येक कवि ने किसी न किसी देवी देवता की प्रार्थना, आराधना तथा प्रशंसा की है । थोड़े बहुत छंद प्रत्येक कवि के बरवों में भी मिलते हैं । रहीम ने हनुमान जी की स्तुति की है । वह विपत्ति का नाश करने वाले, दुष्टों का अन्त करने वाले तथा रघुनाथ के प्रिय हैं ।[7] बोधा कवि ने लिखा है जिन्हों ने असुरों को भी मुक्ति दी वे हमारे अपराधों को क्षमा करें । यथा

मुकुति दीन जन असुरन, छमि अपराध ।
रे मन भजु तिहिं प्रभु कहं, तजि बकवाद ।[8]

१- भीखा साहिब की बानी पद सं० ११ ,। २-३ दीनदयाल गिरि पद सं० पृ० सं० ३३।१४६,
४-६ पल्टू साहिब की बानी पद सं०१२५, । ७- रहीम- खानखाना कृत } ५।१२
१३५, १९८ [illegible] बरवै पद सं० पृ० सं० ५।१५६ }
८- इश्कनामा बोधा कृत मेव पद सं० पृ० सं० ६।३१

उपासना परक छप्पय की परम्परा

छप्पय छंद का प्रयोग अधिकतर वीर भाटों ने किया है। वीर काव्य अधिकांश छंद काव्य है तथा वर्णनात्मक है, इस से मुक्तक रूप में छप्पय बहुत कम मिलता है। कवि परम्परा से ग्रंथ के आरम्भ में आराधना करता आया है इस से कुछ छप्पय उपासना के मिल गए हैं। गोस्वामी तुलसी दास जी ने कुछ छप्पय आराधना के लिखे हैं। राम और शिव की प्रार्थनाएं मिलती हैं। कहते हैं -

राम मातु, पितु, बन्धु, सुजन, गुरु पूज्य परम हित।
साहिब सखा, सहाय नेह नाते पुनीत चित।
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति।
जाँति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति।
परमारथ स्वारथ सुजस, सुलभ राम तें सकल फल।
कह तुलसी दास अब जब कबहुं एक राम तें मोर भल।[1]

इन्होंने राम की प्रशंसा भी की है। ताड़का सुबाहु को मारने वाले, मुनि के यज्ञ की रक्षा करने वाले, नृपों के गर्व का हरण कर धनुष तोड़ने वाले, जनक नगर को आनन्द देने वाले, सुख के सागर राम तुम्हारी जय हो[2] लोक के प्रति उन का कहना है कि ऐसा कौन है जो इस के वशीभूत न हुआ हो, कहते हैं "कौन हृदय नहिं लाग कठिन अति नारि-नयन-सर"? केवल राम की शरण में ही उबर सकते हैं।[3] शिव जी की प्रशंसा की है -

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग, हर।
सीस-गंग, गिरिजा-अर्धंग भूषन भुजंगवर।
मुंड-माल, बिधु बाल-भाल, डमरु-कपाल कर।
बिबुध-बृंद-नव कुमुद-चंद, सुख कंद, सूलधर।
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्वसन बिष-भोजन भव-भय हरन।
कह 'तुलसी दास' सेवत सुलभ, सिव सिव सिव संकर-सरन।[4]

१-४ तुलसी ~~ग्रंथावली~~ रचनावली कवितावली पद सं० पृ० सं० ११०।२६२, ११२।२६५, ११०।२६३, १४९।३०३

नरहरि के छप्पय अधिकांश में तो वीरता के ही हैं कुछ उपासना के भी मिले हैं । ये सगुणोपासक प्रतीत होते हैं । एक स्थान कहा है -

माधव केशव कृष्ण विष्णु बैकुंठ दामोदर ।
हरि मुकुंद गोविन्द अमर अविगत् अगोचर ।
नारायण नरसिंह कृष्ण विट्ठल बलि गंजन ।
प्रभु मुरारि बनमालि गोपि जीवनहिं जुग रंजन ।
सारंग संख गदा चक्र धन पद् गुन सब कर सृजन ।
जे राम नाम गावहि तबहिं नर हरि सब-अघहनन ।[1]

कहते हैं जो भगवान का रस पीता है वही अजर अमर होता है, जीव तो विषयों में भ्रमता रहता है पर अंत गति उस की सभी होती है । केशव दास जी ने कृष्ण जी की प्रार्थना की है 'श्री वृषभानु कुमारि हेतु शृंगार रूप मयं'[2] इस तरह की परम्परा आदि काल से चली आ रही थी उस का अधिकतर अनुसरण हुआ है । सेनापति ने राम की स्तुति की है ।

परम ज्योति जाकी अनन्त, रमि रही निरन्तर ।
आदि, मध्य अरु अंत, गगन, दस-दिसि बहिरंतर ।
गुन पुरान-इतिहास वेद बंदीजन गावत
धरत ध्यान अनवरत, पार ब्रह्मादि न पावत ।
सेनापति आनन्द-घन, रिद्धि-सिद्धि-मंगल करन
नाइक अनेक ब्रह्मांड कौ, एक राम संतत-सरन ।[3]

भूषण ने आदि शक्ति काली की आराधना की है । उन्हीं के कारण शिवा जी शक्तिशाली हो सके थे । रच्छा समत्थ सिवराज कहं, देहि सिद्धि जग जननि जननि ।

१- अकबरी दरबार के हिंदी कवि नरहरि पद सं० पृ० सं० ११०।३३१
२- रीति काव्य संग्रह केशव पद सं० पृ० सं० १।२३५
३- सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० पृ० सं० ११।

दीन दयाल गिरि ने कृष्ण जी की उपासना की है ।

किन्नर नर सुर निकर जासु किंकर तर मुनिवर ।
हरत चरन तर अघर [illegible] धर ऽरत जाहि डर ।
चराचर कर तें जाहि गगन चर जा मरबी बल ।
दृग इन्दीवर तरल फरके में फिरत मधुर फल ।
अति समरथ है गुन अकथ प्रभु अमर सघर नर अमर कर ।
तजि कै फिर दीन दयाल गिर मधुर चराचर चरहिं चर ।[1]

ग्रंथ के आरम्भ में छप्पय में स्तुति की जाती है, पर मुक्तक काव्य में कोई आवश्यक नहीं है, इस से सभी कवियों ने इस छंद को नहीं लिया है ।

सोरठा की परम्परा

हिन्दी साहित्य में सोरठा की परम्परा अपभ्रंश से आई है, वैसे इस छंद पर अधिक कवियों का ध्यान नहीं गया । कबीर ने साखियों के साथ थोड़े सोरठे लिखे हैं, जिन में कुछ उपासना-परक हैं, कुछ में नीति तत्व का निरूपण है । गोस्वामी तुलसी दास की दोहावली में कुछ सन सोरठे पाए जाते हैं । रहीम के सोरठे में शृंगार तत्व की परम्परा का निर्वाह हुआ है ।

उपासना - पद्धति - कबीर दास जी कहते हैं कुल की लाज छोड़ कर सद्गुरु का उपदेश मानो, उन पर विश्वास करो तभी सब काम हो जायेगा । कहते हैं संसार सागर के पार करने के लिए कथा कीर्तन ही नाव के समान है[3]। गोस्वामी तुलसी दास जी ने संशय को हटा कर रघुवीर के भजन को मुख्य माना है ।

१- दीन दयाल अनुराग बाग पद सं० पृ० सं० ३।१

२-३ कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० १९५।११, ९१।१००

सब विचारि मति धीर तजि कुतर्क संशय सकल ।

भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद[1] ।

गोस्वामी जी ने पपीहा के प्रेम को ही उच्च कोटि का माना है, जो केवल स्वाति जल की ही वर्षा के जल को त्याग कर के याचना करता रहता है[2]। कहते हैं भगवान भाव के बस में हैं, ममता, अभिमान को छोड़कर उन्हीं की आराधना करो[3]। उन का कहना है कि जब जानकी कन्त अर्थात् राम चन्द्र जी प्रसन्न होंगे तभी संसार के दुख सब छूटेंगे ।

<u>अन्य-पूजनीय व्यक्ति</u> - गुरु की महत्ता को कबीर ने सोरठों में भी अंकित किया है । सद्गुरु ही बंधन को छुड़ाने वाले हैं । नाम की डोर से जरा मरण सब मिट जाता है[4]। कबीर के लिए कहते हैं -

उदर समाता अन्न ले तनहिं समाता चीर ।

अधिकहिं संग्रह ना करै, ताका नाम कबीर[5]।

गोस्वामी जी ने राम चन्द्र जी की प्रशंसा की है । जो कोई सेवक का अपराधी होता है उस पर तो उन्हें क्रोध आता है पर अपने प्रति किए हुए दोष पर कान नहीं देते[6]। गुरु के लिए कहा है कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता उस के बिना विराग नहीं होगा । हरि की भक्ति के बिना रत्ती भर भी चैन नहीं रहती[7] । काशी की भी महिमा गाई है पापों के नाश करने वाला वह स्थान है जहाँ शंभु भवानी का वास है[8]। शिव जी की प्रशंसा गाई है -

जरत सकल सुर वृन्द विषम गरल जेहिं पान किय ।

तेहि न भजसि मन मंद, को कृपालु संकर सरिस[9] ।

१-३ तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० १३४।५१, ३०६।१०४, १३६।५२

४-५ कबीर साखी संग्रह " १२८।१२, ९०।१००

६-९ तुलसी दोहावली " ४०।७०, १३०।५२, २३०।८१, २३८।८२

हस्तलिखित माखन कुंवर दोहावली में गुरु की वंदना की है, गुरु के चरण की रज माया मोह को नाश करने वाली है तथा तम अंधकार को नाश करती है[1]। सीता राम की भी वंदना की है वही उन के इष्ट हैं[2]। रहीम कवि ने भी कहा है -

आदि रूप की परम द्युति, घट घट रही समाइ ।
लघु मति ते मो मन रसन, अस्तुति कही न जाइ [3]।

विश्वास - कबीर दास जी ने आत्मा को सिंधु में बूंद के समान कहा है । 'सून्य में अस्थूल, जीव बूंद विस्तार ज्यों'[4]। शरीर के लिए उन का कहना है कि जितने शरीर हैं उत ने ही मत हैं[5]। मन के लिए कहते हैं कि वह जान बूझ कर बुराई करता है । दीपक को लेकर कुंए में गिरता है फिर कुशल पूछता है[6] । नारी के लिए उन का कहना है -

नारी सेती नेह, बुद्धि विवेक सब ही हरै ।
कहा गमावै देह, कारज कोई ना सरै [7] ।

गोस्वामी तुलसी दास जी का कहना है कि ब्रह्म का स्वरूप अविगत, अकथ है तथा निगम 'नेति नेति' कहते हैं[8]। माया को बहुत प्रबल कहा है सुर नर मुनि सभी को माया परेशान करती है[9]। रहीम कवि ने कबीर की तरह ही आत्मा को सिंधु कहा है -

बिन्दु भी सिंधु समान, को कासों अचरज कहै ।
हेरनहार हिरान, रहिमन आपुनै आपु में [10]।

आचार-शास्त्र - कबीर कहते हैं जिसकी जीभ बंद नहीं होती तथा हृदय में सत्यता नहीं है उस के साथ लगना व्यर्थ है[11]। गोस्वामी जी सन्तोष से परम-सिद्धि मानते हैं । बिना सन्तोष के किसी को शान्ति नहीं मिलती है[12]

१-२ माखन कुंवर दोहावली पद सं० १, ७ सन् ४१ की खोज रिपोर्ट से प्राप्त ना.प्र.स.
३- रहीम - नगर वर्णन पृ२५ प्र.सं. १ - रहीम-रत्नावली
४-७ कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ५०।१०८, १६।१०४, ३३।१६१, ४८।१६९
८-९ तुलसी दोहावली " १९९।७०, ७०६।९५
१०- रहीम सोरठे " २०७।१८ - रहीम-रत्नावली
११- कबीर साखी संग्रह " ३८।१०८
१२- तुलसी दोहावली " ७०५।९५

अध्याय - ५

शृंगार-परक दोहों की परम्परा

शृंगारिक कविता की प्रवृत्ति संस्कृत से आरम्भ हुई । कुछ तो वेदों में भी इस की प्रवृत्ति पाई जाती थी पर संस्कृत साहित्य द्वारा प्रवाहित धारा प्राकृत, अपभ्रंश से होती हुई हिन्दी साहित्य में अपने पूर्ण रूप में पाई जाती है । इसी विषय का विस्तार संस्कृत से अधिक प्राकृत और अपभ्रंश में हुआ है और उस से अधिक हिन्दी में । हिन्दी साहित्य में कविता कामिनी साधारण जीवन की ओर उन्मुख हुई । इस से एक ओर भाव व्यंजना को क्षेत्र मिला दूसरी ओर असंस्कृत मनोवृत्ति होने का अवसर मिला । इस काल में प्रेम प्रवृत्ति के अन्तर्गत पैठ कर कवियों ने कोने कोने अणु अणु को आलोकित किया । सौंदर्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म भावना को परखा, परिवर्तन होने वाली छटा को निहारा, उस का सर्वांगीण चित्र खींचा । इस में रूप वर्णन तथा संयोग वर्णन ही मुख्य वृत्ति रही । इस में प्रत्येक का मन रमा । इस में नायिका के सहज सौंदर्य की ओर ध्यान नहीं है जितना अलंकृत सौंदर्य पर । नायिका के आभूषण सौंदर्य को बढ़ाने वाले, कुलीनता के सूचक, उच्च कुल को दर्शित करने वाले तथा नायक के प्रेम को बढ़ाने वाले हैं । रंगीन छाया से नायिका में नवीन आकर्षण पैदा कर देते हैं । इस में संयोग का खुल कर वर्णन होने के कारण कहीं कहीं कविता कामिनी अपने नग्न अवस्था में हो गई है । रूप का वर्णन करते समय नायिका के अंग अंगों को खोल खोल कर वर्णन किया गया है । संयोग शृंगार में गुप्त क्रियाओं का पूरा विकास हुआ । विरह पक्ष में भी दैहिक उद्वेलन ही अधिक दिखाई देता है । मानसिक भावनाओं के स्थान पर शारीरिक सौंदर्य शारीरिक क्रियाओं तथा शारीरिक वेदना की ओर ही कवियों का ध्यान है । प्रेम के प्रति इन कवियों का रसिकता का दृष्टिकोण है प्रेमी को अपने प्रियतम की ही चिन्ता रहती है, उसी को रिझाने का प्रयत्न करता है, पर रसिक हर जगह

सौंदर्य पर ही दृष्टिपात करता है, उसे तो ऐहिक सुख भोग चाहिए । सामाजिक बंधन उसे मान्य नहीं । इसी से यदि कहीं भावाभिव्यक्ति में अश्लीलता आ भी गई तो इन कवियों को चिंता नहीं । वास्तव में इन कवियों ने तो शृंगार को 'अध्यात्म - उत्तुंग शृंग' से उतार कर शारीरिक उपत्यका तलहटी पर ला खड़ा किया ----[1] नारी का नख शिख बिहारी के लिए एक ऐसा कल्प वृक्ष है जिस से उन्हें धर्म, ज्योतिष, दर्शन, नीति, शृंगार आदि सब कुछ प्राप्त हो जाता है[2]। इन शृंगारिक कवियों ने जयदेव और विद्यापति द्वारा चलाई परम्परा का निर्वाह किया ।

रूपवर्णन हिन्दी साहित्य में कृपा राम की 'हिततरंगिनी' से शृंगार के दोहों की परम्परा आरंभ होती है । इस में नायिका के रूप का वर्णन शृंगारिकता का परिचय देता है । विद्यापति ने यौवन के विकास को एक मुख्य विषय माना है इसी भाँति कृपा राम ने यौवन के अंगों को उमड़ते होने, शिशुता की हलचल कम होने का वर्णन किया है[3]। नायिका का रूप यौवन के आने से निखर जाता है इस की अनुभूति इन के काव्य से होती है । इस से कवि की रसिक प्रवृत्ति का भी आभास होता है ।

मुबारक कवि ने नायिका के मुख पर एक तिल के ऊपर पूरा तिल शतक तथा अलक पर अलक शतक लिख डाला है । इस से कवि की सूक्ष्म दृष्टि का आभास होता है । इस में भाव साधारण हैं कोई विशेष उच्च कोटि की कल्पना भी नहीं है काले तिल को देखकर दर्शक दास हो जाते हैं दर्शकों की आँखें सलाम करती हैं[4]। अलक शतक में साड़ी झीने घूंघट पर अलक ऐसी शोभायमान है मानों चन्द्रमा पर शेष बाहर तान कर सोया हो[5]। इस में अलक की शेष से उपमा कोई विशेष रसानुभूति नहीं

१- बिहारी सार - डा॰ ओंकार चन्द्र पृ. ५०

२- हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी डा० गणपति चन्द्र गुप्त - पृ० ३००

३- हिततरंगिनी - कृपा राम पृ० १३ पद सं. ४०

४- तिलशतक - मुबारक पद सं. ४० पृ. सं. १५

५- अलकशतक - मुबारक पद सं. पृ. सं. ८०।७

कराती वरन् चमत्कार के ही दर्शन होते हैं । जमाल की नायिका के नेत्र खंजन के समान दंतावली मोती, नासिका शुक की चोंच तथा वेणी नागिन के समान है वह अपना हाथ मुंह पर रखके लेटी है[1]। उस से कवि को डर लगता है केवल उपमानोंका का वैचित्र्य दिखाया है तथा परम्परानुगत सौंदर्य चित्रित किया है ।

> नैन किलकिला चंच चल थिरकी तरूनी तन ताल ।
>
> निरखि परयो चिबि मीन तजि, फिर निकस्यो न जमाल ।[2]

रहीम ने कुच वर्णन किया है जिस में कहा है काम देव की उपमा के लिए कुछ कहा नहीं जा सकता, 'फल स्यामा के उर लगे, फूल स्याम उर मांझ'[3]। बिहारी ने रूप वर्णन के अन्तर्गत नखशिख वर्णन किया है । इन्हों ने नायिका के व्यापक सौंदर्य का चित्रण किया है । बिहारी की नायिका दीप-शिखा के समान है जोकि रात्रि के समय नीले वस्त्र में भी नहीं छिप सकती[4] । उस के नेत्रों में इतनी चमक है कि घूंघट के बीच भी चमचमाती है[5]। झीने पट में उस का तेज चमकता है[6]। उस का रूप निरन्तर रहने वाले पूर्णमासी के समान है अतः चमत्कार दिखाने के लिए वे यहाँ तक कह जाते हैं कि तिथि जानने के लिए पत्रे की बहुत आवश्यकता होती है[7] । नायिका का सौंदर्य क्षण क्षण में परिवर्तन होने वाला है जोकि और भी कठिन है -

> लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर ।
>
> भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ।[8]

बिहारी ने गांव की नारी के रूप सौंदर्य का भी वर्णन किया है । उस के तन की द्युति स्वस्थ शरीर से प्रकट होती है । 'गोरी

१-२ जमाल दोहावली - महावीर सिंह गहलौत पद सं० ४८, १९६ पृ.सं. १२, ५०

३- रहिमन विनोद - शृंगार गुच्छ पद ४८ पृ.सं. ८

४-५ बिहारी सतसई पद सं० [illegible] २५५, ५०१ पृ.सं. १२५, २२८

६-८ " १६, ७३, ५४० पृ.सं. ११, २६, १४४

गल कारी धरै हँसत कपोलन गाड़, किवाड़ों के पीछे झाँकती हुई शोभायमान है ।[1] इन्हों ने कृष्ण को नायक के रूप में प्रस्तुत किया है गोपाल के कान में मकराकृति कुंडल है ।[2] अंगों की कान्ति के साथ साथ सुकुमारिता का भी वर्णन किया है । सहज सुन्दर और सुकुमार शरीर पर आभूषणों का लादना अनुचित है क्यों कि सौंदर्य का सम्हालना ही कठिन है । यथा -

भूषन-भार सँभारि है क्यों यह तन सुकुमार ।
सूधे पाय न धर परै सोभा ही कैं भार ।[3]

विद्यापति की भाँति सौंदर्य की उत्कटता के वय: संधि में इन्हों ने भी आँका है । शिशुता की झलक छूट नहीं पाती कि यौवन की आभा आ जाती है उस से नायिका का अंग तरुणी का सा हो जाता है ।[4] इन के नख शिख वर्णन में हृदय पर पड़े प्रभाव की विवेचना मिलती है । नेत्रों के वर्णन में उन का संचार, वेधकता, चंचलता तथा विशालता दिखाई देती है । नायिका का प्रत्येक अंग रसिकों को प्रभावित करता है ।

मतिराम ने भी नायिका का रूप वर्णन भावुक हृदय से आँका है । इन्हों ने तन के द्युति की सच्ची अनुभूति पाई है । तेरी देह दीपशिखा के समान है, जैसे जैसे जगमगाती है वैसे वैसे रसिकों के हृदय में स्नेह बढ़ता है ।[5]

अंग-गोर सिधु-रुचि-कनक मृदु मुसक्यानि उदोति ।
कनक भौन के दीप लौं जगमगाति तन ज्योति ।[6]

मतिराम कहते हैं कि तेरी सुन्दरता से ही सुवर्ण को रूप मिला है ।[7] यहाँ नहीं चन्द्रमा तक उस की मौज से ज्योति पा सके हैं ।[8] नायिका सारी पहने, मस्तक पर बुंदकी धारण किए शोभायमान है, मानों रूप मन्दिर पर वंदनवार बंधा है । नेत्रों के वर्णन में कहते हैं नेत्रों की चंचलता का वर्णन नहीं किया जा सकता, जिन को देखकर विरह भी अचल हो जाता है ।[9] पद्माकर की नायिका सरवत्र

- -

१-४ बिहारी ~~सतसई~~ रत्नाकर पद सं० ७०८, १०३, ३२१, ७० पृ ११४, ६७, ७२, ६५
५-९ मतिराम सतसई पद सं० १६, ४९९, ३५, ६८९, ३०१ पृ ११८, ११८, १२०,

की चाँदनी के समान है ।

सहज सहेलिन सौं सु तिय, बिहँसि-बिहँसि बतरात ।
सरद-चंद की चाँदनी, मंद परति सी जाति ।[1]

राम सहाय जी ने नायिका का रूप वर्णन किया है । कामिनी के तन की ज्योति बिजली में दिखाई देती है ।[2] सौंदर्य का वर्णन नखशिख वर्णन में है । पैरों की ललाई इतनी है कि लगता है नाइन रंग निचोड़ रही है ।[3] उस के तन की चमक का वर्णन करते हुए कहते हैं -

छैल छबीली छाँह सी देत चाँदनी जोति ।
दीपसिखा सी को कहै, लखि वाकी तन जोति ।[4]

विक्रम की नायिका के गोरे मुख पर हरी चुनरी शोभायमान है, वह अति सुन्दरी लग रही है ।[5] इन्होंने 'दीप सिखा सी' न कह कर 'दीप सिखा'[6] को उस के तन की चमक के सामने फीकी कहा है । उस के अंगों का ऐसा सौंदर्य है कि भूषण भी भूषण लगते हैं ।[7] नायन लाली को देखकर बार बार अंगुलियाँ मलती है ।[8] शिशुता में यौवन का सौंदर्य बढ़ने से अंग अंग झलकने लगता है, केसर के रंग में ईंगुर की लाली बढ़ जाती है ।[9] रतन हजारा में रसनिधि कवि ने नायिका के रूप को चरम सीमा पर पहुँचा दिया है, जबकि चन्द्रमा के पास रूप कम हो जाता है वह नायिका से माँग ले जाता है ।[10] नायक के नैन प्रातः काल से ही आँसुओं से स्नान कर छवि दान करने लगते हैं ।[11] नायिका के मुख पर लाल बिंदी शोभायमान है ।

- -

१- पद्माकर पंचामृत पद सं० पृ० सं० १५।१०
२-४ राम सतसई पद सं० पृ० सं० ३५।१११, ~~[illegible]~~, ~~[illegible]~~ २४०।२४८ २५३।२५१
५-७ विक्रम सतसई पद सं० पृ० सं० ५१।३३०, ३४१।३६१, ~~[illegible]~~ ५३१।३८१
८-९ " " ~~[illegible]~~ २५० ।३६३, ३६८।४०१
१०- रतन हजारा - रसनिधि, सतसई सप्तक पद सं० ५९५ पृ.सं. १५२/१८६
११- " " " ~~[illegible]~~ पृ.सं. २२७/१५०

नायिका दीपक की तरह है[1]। रसलीन कवि ने नायिका को दामिनी की तरह कहा है[2]। वह श्वेत वस्त्र में कुन्हड़या की तरह चमकती है[3]। कुछ दोहे अज्ञात कवि लिखित मिलते हैं, जिन में नायिका के तन का ही वर्णन है ।

चंद मुखी मुख चंद पै धरि आई छवि जोति[3]।
तेरे भूषन बसन की अगर मगर दुति होति ।

<u>संयोग शृंगार</u> - संयोग शृंगार में प्रेम के वशीभूत होकर नायक और नायिका एक दूसरे के दर्शन, मिलन, स्पर्श और संलाप आदि में संलग्न होते हैं । संयोग पक्ष में बहिर्वृत्ति प्रधान होती है । संयोग शृंगार में हास परिहास की प्रवृत्ति स्वाभाविक है । इस के अतिरिक्त चोर-मिहीचनी, आँख मिचौनी, जल विहार, शयन का बहाना झूले की क्रीड़ा, फाग के खेल आदि वर्णन किए गए हैं । कृपा राम ने सुरत वर्णन में नायक नायिका के मिलन के चित्र खींचे हैं । इस में विपरीत रति, नखक्षत सभी का वर्णन है। चोर मिहीचनी का वर्णन किया है । सखी की दृष्टि बचाकर खेल हो रहा है । कृष्ण भी कोने में छिपे हैं वहीं नायिका के पहुँचने पर हृदय से लगा लेते हैं[4]। कुंजों में मिलने के वर्णन हैं । बिहारी में सभी तरह के संयोग वर्णन हुए हैं । अधिक-तर बिहारी ने कृष्ण लीला को ही चित्रित किया है । आँख मिचौनी का खेल हो रहा है नायिका पहचान जाती है पर वह आनंद उठाने के कारण बहाना करती है[5]। शयन में बहाने का भी वर्णन है नायिका ने नायक को सोता समझ कर चूम लिया, वह हंसने लगा, नायिका खिसिया कर गले से लिपट गई[6]। विपरीत रति को भी चित्रित किया है । संयोग में स्वेद का वर्णन आता है । नायिका कहती है जरा हट कर बैठिए, मेंहदी को सूखने दीजिए[7]। एक अन्य कवि ने स्वेद की अतिशयोक्ति

1- रतन हजारा रसनिधि, पद सं० [illegible] सतसई सप्तक पृ.सं. ४६। २०८
2-0 रीति शृंगार रसप्रबोध रसलीन कवि पृ०सं० १५०
3- दोहा फुटकर संख्या ६४ पद ६ ना० प्र० स० हस्तलिखित पद सं. २ पृ.सं. १
4- हित तरंगिनी कृपा राम पद सं० पृ० सं० ८।१९
5-6-7 बिहारी सतसई पद सं० २००, ६४२, ५००, ४०००, पृ.सं. ७६, ११०, ८८

<u>संयोग में प्रेम व्यंजना</u> - रीतिकालीन कवियों ने प्रेम के प्रति रसिकता का दृष्टिकोण रखा। वे सौंदर्योपासक और विलास के कवि हैं। रसिक व्यक्ति जहाँ जहाँ सौंदर्य देखता है, रीझ जाता है। उसका ध्येय तो अपनी आँखों को तृप्त करना होता है। सभी जगह लुब्ध हो जाता है। प्रेमी अपने प्रिय पर चाहे जैसा हो रीझता है। रीतिकालीन कवियों में इसी से आंतरिक अनुभूतियों की ओर दृष्टि नहीं गई है। सब ने तत्कालीन प्रेम का चित्रण किया है। आकर्षण केन्द्र शरीर सौंदर्य है।

कृपा राम ने प्रेम तत्व पर ध्यान नहीं दिया। नरहरि ने प्रेम को जप तप सब से कठिन बताया है। जमाल ने परम्परा के अनुसार पतिव्रता चंद्रमा - चाँदनी, मछली की सी प्रीति करने को कहा है। वह कहते हैं -

जमला ऐसी प्रीति कर जैसी केस कराय।
कै काला कै ऊजला, जब तब सिर सूं जाय।[1]

रहीम कवि कहते हैं कि प्रेम के फंदे हुए छूट छूट कर उलझते हैं। (वे सुरझे ते सुरझि गए, उरझे ते सुरझे नाहिं[2])। मुबारक कवि ने एक अक्षर प्रेम का पढ़ने वाले को ही पंडित कहा है[3]। बिहारी ने प्रेम को सागर माना है। प्रेम में कहीं पर कलह कर दोनों के नयन मिल जाते हैं, कौने वचन की भी चिन्ता नहीं होती[4]। कृष्ण के उलझने के बाद गुरु जन की लाज भी नहीं रह जाती। घर का काम करते हुए भी हृदय उस पर कहीं झूलता रहता है[5]। इन के प्रेम की एक विशेषता है कि विरह में स्नेह की लता कुम्हलाती नहीं। वरन् प्रतिदिन हरी होती जाती है[6]।

गिरि तै ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पसु नरनु को प्रेम-पयोधि पगार[7]।

१- जमाल दोहावली - महावीर सिंह गहलोत पद सं० ३१ पृ.८.९

२- रहिमन विनोद - शृंगार पुष्प पद सं० ६० पृ.८.१०

३- अलक शतक - मुबारक पद सं० ३ पृ.८.१

४-७ बिहारी सतसई पद सं० ११८, ५५४, ९८, ~~१६~~ २५१ पृ.सं. ~~[illegible]~~ ७६, १०३, ६८, ८०

मतिराम ने अपने काव्य में प्रेम तत्व की महत्ता नहीं दिखाई है वरन् प्रेमी प्रेमिका के चित्र खींचे हैं । प्रेमी प्रेमिका का एक दूसरे को देखने के बाद दृष्टि ही बदल जाती है । प्रिया के आँखों में प्रियतम के नेत्र और प्रियतम के आँखों में प्रिया के नेत्र का दर्शन हो सकता है[१]। प्रेमिका के प्रेम की पराकाष्ठा वहाँ वर्णित है जहाँ प्रेमिका चाहती है कि वह आम का बौर बन जाए तो नन्द कुमार के कानों के पास हमेशा रह सके[२]। एक जगह वर्णन है, नैनों को मोड़ कर आग लेने के बहाने आई और हृदय में प्रेम की अग्नि जला गई[३]। प्रेम हो जाने पर किसी की बात का प्रभाव भी नहीं पड़ता । सखियाँ सिखाती हैं पर स्नेह से भीगे हृदय पर उन की बात टिक नहीं पाती[४]। रसलीन प्रेमी कवि हैं । उन का प्रेम वर्णन भावना सहित है । प्रेमी नैनों की इच्छा सदैव देखने की होती है पर मन की इच्छा होती है कि आँखें मूँद कर प्रेमी को हृदय से लगा लें[५]। रसनिधि कवि कहते हैं -

रसनिधि लखु यह प्रेम की अद्भुति रीति अभिराम ।[६]
स्यामा गोरी ह्वै गई गोरे मोहन स्याम ।

प्रेम की बातें कहना बड़ा कठिन है । ज्यों ज्यों आँखों की नोकें प्रेमी के हृदय में चुभती हैं उतना ही उसे आनन्द आता है । एक जगह कहते हैं मन फिसल कर भृकुटी के संग लग गया । अब वह न तो सीधा होता है और न वहीं पड़ा रहता है । लगता ही जाता है[७]। राम सहाय जी कहते हैं चाहे तलवार का वार हो, चाहे तेज तीर क्यों पर नैन की कटारी न लगे[८]। प्रेम में विचार मन जाता है

१-४ मतिराम सतसई पद सं० ६८७, ३९२, १२८, ७६ प्र. सं. १६७, १६१ १२६.१२२

५- रीति शृंगार - रसलीन पद प्रबोध पृ० सं० १४९

६- रसनिधि के दोहे पत्रा नं० ८८।४४ याज्ञिक संग्रह ना० प्र० स०

७- रतन हजारा पद सं० १० प्र. सं. २ - ना. प्र. स.

८- राम सतसई पद सं० ३०१ पृ० सं० २५७

उधर ही नैन जाते हैं -

> कमल तन्तु सौं छीन अरु, कठिन खड्ग की धार ।
> अति सूधो, टेढ़ो बहुरि, प्रेम पंथ अनिवार ।[1]

<u>मान वर्णन</u> - मान वर्णन विरह के अन्तर्गत पाया जाता है । पर जैसा कि आचार्य विश्वनाथ प्रसाद जी ने कहा कि सुखागम से पूर्व ही मान उठ जाए तो वह विप्रलंभ नहीं । यद्यपि मान में संयोग नहीं रहता उतनी देर के लिए वियोग माना जाता है[2]। संयोग के अनन्तर प्रेम की स्वाभाविक वृत्ति के कारण या ईर्ष्या के कारण जो नायक नायिका परस्पर रूठ जाते हैं वह मान कहलाता है । काव्य में अधिकतर किसी दूसरी स्त्री का प्रेम का सन्देह हो जाने पर मान का वर्णन हुआ है जो ईर्ष्या मान कहलाता है । प्रणयमान का चित्रण कम ही पाया जाता है। वियोग इतनी कम देर के लिए होता है इस के अतिरिक्त उस में सच्ची विरह की अनुभूति भी नहीं होती है इस से यहाँ संयोग श्रृंगार के वर्णन के बाद मान वर्णन का प्रसंग उठाया गया है । इन सभी कवियों ने परम्परानुगत मान वर्णन किया है ।

कृपा राम की नायिका मान कर ही नहीं पाती क्यों कि वह जो कुछ चाहती है नायक पूरा कर देता है[3]। बिहारी ने वर्णन किया है नायिका पावस ऋतु में हठ नहीं कर सकती क्यों कि वर्षा में तो सभी गाँठ खुल जाती है फिर मान की गाँठ कैसे रह सकती है[4]। तुम मान करने को मना नहीं करती हो और अगर से सौंह दिलाती हो, क्या हंसने वाली भौंहें क्रोध कर सकेंगी[5]। मान वर्णन में नायक नायिका के पैरों पड़ता है यह परम्परा से चला आ रहा है उसी का वर्णन है ।

१- रसखान सुधा - दोहावली पद सं० ६ पृ० सं० ८५

२- बिहारी - पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृ० सं० ११०

३- रीति श्रृंगार - कृपा राम हिततरंगिनी पृ० सं० २

४-५ बिहारी सतसई पद सं० ५६२, ७०३ पृ. सं. २२०, १०४, ८२

मतिराम ने कहा है नायिका के पैरों को नायक छूता है उस से हृदय में इतना आनन्द होता है कि प्रियतम की पीठ पर आंसू गिरते हैं और मान उड़ जाता है ।[१] वह मान करने को मना करते हैं

> कहा कियौं गुरु मान कौ, अति तातौ हूवै नेम ।
> पारद ही उड़ि जाइगौ अलि चंचल यह प्रेम ।[२]

रसलीन ने भी नायिका को समझाया कि मान रूपी सर्प को डसने से स्नेह मर गया फिर भी तुम्हारा क्रोध रूपी विष नहीं उतरा ।[३] रसनिधि कवि कहते हैं मान करने में मधुर अधरों से कटु भाषण न करो क्यों कि थोड़े से भी दोष से स्वर्ण का मोल घट जाता है ।[४] राम सहाय जी की सखी मान करने को नायिका को मना करती है

> ना कर ना कर कहि थकी ना कर ना कर मान ।
> काम लगैगी काम अब काम लगैगी काम ।[५]

अज्ञात कवि की नायिका से कहते हैं तुम्हारे पैरों कंत पड़े हुए हैं फिर भी तुम ने मान नहीं छोड़ा, अब तुम व्याकुल होकर पड़ी हो ।[६]

संयोग शृंगार में प्रकृति चित्रण -

वैसे तो साहित्य में प्रकृति चित्रण के विविध रूप मिलते हैं । कवि प्रकृति का निरीक्षण कर सूक्ष्म तत्वों के प्रति आकर्षित होकर, उस की प्रत्येक वस्तु को एकत्रित कर संश्लिष्ट वर्णन करता है । इस में पाठक को

१-२ मतिराम सतसई पद सं० १६२, ३०१ पृ.सं. १२७, १६३

३- रसलीन पद सं० २५० ना. प्र. स. - गुलाबकवी

४- रसनिधि - रतन हजारा [illegible]

५- राम सतसई पद सं० २५५ पृ० सं० २४८

६- दोहा फुटकर - अज्ञात कवि पद नं. ५४ पृ. सं. ११

प्रकृति के दर्शन होते हैं । इस तरह के वर्णन संस्कृत साहित्य में भरे पड़े हैं । इन में प्रकृति अनुरंजन का साधन बन जाती है । रीति काल में इस का रूप अधिक निखर न पाया क्यों कि इन कवियों को प्रकृति में विचरण करने का अवकाश नहीं था । संस्कृत साहित्य के उत्तर कालीन कवि भी दरबारी कवि थे । इन की कविता की दृष्टि प्रासादों के संकुचित क्षेत्र तक ही सीमित थी । कवि परम्परा युक्त वर्णन करते थे । हिन्दी कवियों ने इसी दरबारी परम्परा को आगे विकसित एवं पल्लवित किया । इस में प्रकृति को उद्दीपक रूप में वर्णन करने की प्रवृत्ति आयी । इन कवियों को प्रकृति का ज्ञान स्वतः प्राप्त न था । कोई प्रकृति से अनुराग तो था नहीं इसी से नायक नायिकाओं के भावों को उद्दीप्त करने के लिए प्रकृति की वस्तुओं का प्रयोग रहा । संयोग में प्रकृति की प्रत्येक वस्तु सुखद प्रतीत होती है । युग्म पारस्परिक आकर्षण में वृद्धि करते हैं । प्रकृति के अचेतन तत्व भी चेतन और मधुर प्रतीत होते हैं । मन का उल्लास और प्रकृति का सौंदर्य बिंब प्रतिबिंब भाव से एक दूसरे की अभिवृद्धि करते हैं । रीति कवियों ने प्रकृति का उपयोग या तो उन के सौंदर्य वर्णन के लिए अलंकार रूप में किया, अथवा उन की भावनाओं का उद्दीपन हेतु । कहीं कहीं मानवी करण के रूप में भी उदाहरण मिलते हैं ।

कृपा राम ने घन के घहराने का वर्णन नायिका के मान के प्रसंग में किया है । घन घहराने लगे, मोर बोलने लगे[1]। तिलकशतक में मुबारक कवि ने नायिका के रूप सौंदर्य के लिए प्रकृति से उपमान चुने हैं । मन्द हंसना दामिनी के सदृश है[2]। बिहारी की नायिका को पूस के दिनों में किरणें शीतल लगती हैं । माघ के महीने में चकोरी सूर्य की ओर चंद्रमा समझ कर देखती रहती है[3]। पावस में रात

१- हित तरंगिनी - कृपा राम पद सं० ४९

२- तिलक शतक - मुबारक पद सं० ३४ पृ. ७. १४

३- बिहारी सतसई पद सं० पृ० सं० ३४२।८०

दिन का अन्तर नहीं रहता । चारों ओर अंधकार ही अंधकार छाया रहता है[१]।
संध्या का वर्णन अभिसारिका को उत्तेजित करने के लिए किया है । यथा

गोप अथाइनु तै उठे, गोरज छाई गैल ।
चलि बलि अलि अभिसारिकै, भली संझौखै सैल ।[२]

मतिराम ने वर्णन किया है भौंरों की गुंजार बड़ी सुहावनी लगती है । कोकिल का मंडराना सुन्दर लगता है । आम के बौर सुख पहुंचाते हैं । सुख में प्रकृति की सभी वस्तुएं सुन्दर लगती हैं[३]। प्रकृति से सुन्दरता के उपमान लिए हैं ।

घन-सुन्दर तो छबि-छटा उमै रही मन छाइ ।
लाज चंचला लौं चमकि चंचल चाति बिलाइ ।[४]

इसी तरह चंचलता का भी मानवीकरण किया है[४]। रसलीन ने उपमा प्रकृति से लेकर वयः संधि का वर्णन किया है । विद्युता को निधि के समान कहा है[५]। पद्माकर ने जगद्विनोद में अच्छे से वर्षा का वर्णन किया है ज्यों ज्यों बादल गरजते हैं नई प्रीति वाली नायिका और भी प्रचंड होती जाती है[६]। झूले का वर्णन करते हुए कहते हैं -

चढ़ी हिंडोरे हरषि हिय, सखि सिय सहज सुरंग ।[७]
तन झूलत पिय-संग मैं, मन झूलत हरि-संग ।

राम सहाय जी अपनी सतसई में लिखते हैं कि बसन्त में निकलना कठिन है क्यों कि भौंरों को कमल का भ्रम हो जाता है वह चारों ओर से घेर लेते हैं[८]। नायिका का मुख कमल सदृश है यह कवि दर्शाना चाहता है । चांद का वर्णन

१- बिहारी सतसई पद सं० पृ० सं० ४८६।१८

२- बिहारी सतसई पद सं० पृ. सं. १७६/७४

३-४ मतिराम सतसई पद सं० पृ० सं० ५६१।१६०, ५३३।१५०,

५- रीति शृंगार - रसलीन दो०सं० १४१

६-७ पद्माकर जगद्विनोद पद सं० पृ० सं० ६७०।२०४, ७९।१०१

८- रामसतसई पद सं. पृ. सं. ७१७/२२८

किया है -

> अलि गुंजत हैं कोकिले गुंजत हैं अलि-पुंज ।
> तने वितान लतान के घने बने बन-कुंज ।[1]

विक्रम कवि ने भी बसंत का वर्णन किया है । बसंत में लताएं झुक झुक जाती हैं, बसंत मानिनी को मान करने को मना करती है[2]। संयोग में वर्षा हृदय को आनंदित करने वाली होती है । वर्षा में बादल गरजते हैं, मोर शोर मचाते हैं, दंपति आनन्द से होते हैं[3]। वर्षा का वर्णन किया है -

> लता लचत बरही मचत रचत सरस रस रंग ।[4]
> घन बरसत दरसत सुमन सरसत हिये अनंग ।

अज्ञात कवि ने भी बसंत का वर्णन किया है कि बसंत काम देव को साथ लेकर आता है । संयोग में प्रेमी केलि करते हैं[5]। इन में केवल परम्परा का ही निर्वाह हुआ है । भावना अधिक नहीं है। कहीं कहीं तो नाम का उल्लेख मात्र ही होता है ।

<u>होली का वर्णन</u> - इन कवियों ने होली का संयोग में वर्णन किया है । बसंत ऋतु का फाग वर्णन परम्परा से चला आ रहा है । उस समय का दरबारी समाज इस तरह के वर्णन रखता था । होली में नायक नायिका की क्रीड़ा चरम सीमा पर पहुंच जाती है । बिहारी ने लिखा है -

> बज्यौं उझकि झांपति बदनु, झुकति बिहँसि सतराइ ।[6]
> तत्यौं गुलाल-मुठी झुठी झझकावत प्यौ जाइ ।

१- राम सतसई पद सं० पृ० सं० ६०४।७०५

२-४ विक्रम सतसई पद सं० पृ० सं० २१३।७५९, ३५४।३६२, ६१३।२९०

५- दोहा - पुष्कर - अज्ञात कवि पद सं. १, पृ.सं. २ - प्राचीन संग्रह

६- बिहारी सतसई पद सं० ७०३ पृ.सं. [illegible]

होली खेलते समय का वर्णन है नायिका अपने कपड़ों को छिटकती है, हठ करती है, हंसती है, नैनों को नचाती है । ऐसी चंचलता में अनुमान देते नहीं बनता[१] ।

मतिराम की नायिका के मुख पर नायक गुलाल लगाता है[२]। पद्माकर ने होली खेलते समय का वर्णन किया है गुलाल की धूम चारो ओर मची है । रोरी लगाने के लिए गोपाल ने नायिका को पकड़ लिया[३]। राम सहाय जी ने बलबीर के अबीर उड़ाते समय का वर्णन किया है[४]। विक्रम ने अपनी सतसई में होली खेलते समय का वर्णन किया है कि धमार मची है । सब उमंगित हैं चारों ओर ब्रज की गलियों में रंग फैला है । वे कहते हैं -

> फिर पिचकारी की मची आंधी उड़त गुलाल ।
> गह घूंघरि चंपि लीजिए पकरि छबीले लाल ।

<u>वियोग शृंगार</u> - नायक नायिका संयोगावस्था में जहाँ आनंद का आस्वाद करते हैं वहीं वियोगावस्था में कटु रस का पान करते हैं । इस में संयोगावस्था की सुख की अनुभूतियाँ वेदना को तीव्र करती हैं । वियोग में ही नायक नायिका के अनुराग की माप हो सकती है । विप्रलंभ शृंगार की परम्परा अखंड है । जिन विचारों को संस्कृत में कालिदास आदि ने अनुभव कर के व्यक्त किया था, रीति काल में वही भाव निरन्तर प्रवाहित रहे । यह भले ही कहा जावे कि इन कवियों के वियोग में गंभीरता नहीं है । शारीरिक परिवेदना तो किया है पर विरहिणी के मानस में गोता नहीं लगा पाए हैं । कृपा राम ने अपनी हिततरंगिणी में इस परम्परा को आगे प्रवाहित किया है । विरहिणी के मानस का चित्रण किया

१- बिहारी सतसई पद सं० ३५३ ए. डि. [illegible] ८८
२- मतिराम सतसई पद सं० पृ० सं० ४३०।१५१
३- पद्माकर पंचामृत पद सं० पृ० सं० १०१।१०५
४- राम सतसई पद सं० पृ० सं० ३४६।१५७
५- विक्रम सतसई - - २२८।३६.

है कि वह विरह के दुख को सह नहीं पाती, न तो वह कुछ कह सकती है, बिना जल के मछली के समान है[१]। जमाल कवि कहते हैं वियोगिनी नायिका आठों पहर अनुराग के लाल धागे से सिलती रहती है।

> कियो करेजो कांकरी करी अेर पिय लाल।
>
> सांस सुई सीवत फिरै आठों पहर जमाल ।[२]

बिहारी की विरहिणी वियोग में आंसू बरसाती रहती है। आठों याम उसासैं छोड़ती रहती है[३]। मतिराम कहते हैं विरह के कारण दिन रात नेत्रों से झरी लगी रहती है, बिजली की आग के समान विरह बढ़ता जाता है[४]। वृंद कवि कहते हैं प्रियतम के बिछुड़ने से मन कहीं नहीं लगाता, मधुरे के घरटे के समान हो गया है[५]।

रसनिधि ने नायिका के मानस का चित्रण किया है। वह विरहिणी का वर्णन करते हैं -

> पल अंजुरिन सौ गिनत दुग, जल अंसुआ भर हाथ।
>
> गनत रहत है अवधि के दिन महमारे नाथ[६]।

नायिका की अवधि के दिन गिनते ही गिनते समय बीता जा रहा है। राम सहाय जी ने कहा है नायिका का शरीर विरह के कारण पीला पड़ गया है[७]। इस में विरह का प्रभाव शारीरिक अधिक है। विक्रम कवि ने कहा है नव विरह में सुकुमार नायिका थोड़े जल में मछली के समान तड़फड़ा रही है[८]। बनारस

१- रीति काल संग्रह पद सं० ३४ पृ. सं. १४१ कृपाराम

२- जमाल दोहावली - महावीर सिंह गहलौत पद सं० ७०७ पृ. सं. १०५

३- बिहारी सतसई पद सं० ५५३ पृ. सं. १०३

४- मतिराम सतसई पद सं० ८६ पृ. सं. १२३

५- वृंद सतसई पद सं० ५९० पृ० सं० २३३

६- रसनिधि सतसई पद सं० ५५४ पृ. सं. २१५

७- राम सतसई पद सं० ६८२ पृ. सं. २८१

कवि ने वर्णन किया है

कमल मुखी ससि उदय लखि बिरह सु भई बिहाल ।

मानहु अनभावत बनत परी लाज के जाल ।[1]

रीति कालीन कवियों ने विरह को अग्नि रूप माना है । इस भाव की परम्परा सभी कवियों में प्रचलित है । जैसे आग की जलन, आग की तीव्रता कष्टप्रद होती है वैसी ही विरह की वेदना किसी ने कम किसी ने अधिक धधकती हुई दिखाई है । कृपा राम ने आग के उत्पन्न होने के कारण का ही केवल उल्लेख किया है ।

तजि गोकुल अक्रूर संग, मथुरा चलत गुपाल ।

विरह अनल उपज्यो हिए, सुनत राधिके हाल ।[2]

बिहारी ने अधिकतर अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है । इस में केवल चमत्कार की सृष्टि हुई है, रस का अनिर्वचनीय आस्वादन नहीं । विरहिणी के सामने सखियाँ गुलाब जल की शीशी लेकर जाती हैं, कुछ तापमान को कम करने के लिए । पर वहाँ शीशी से गुलाब जल गिराते ही गुलाब जल ही सूख गया, एक बूंद भी उस के शरीर पर न गिर पाया[3]। इसी तरह सखियाँ तो जाड़े की रात होते हुए भी भीगे हुए कपड़ों का कवच पहन कर स्नेहवश पास जाती हैं[4]।

छाले परिबे के डरनु सकै न हाथ छुवाई ।

झझकत हिये गुलाब के झँवा झँवैयत पाइ ।[5]

मतिराम की विरहिणी भी ज्वाला को छिपाए हुए है । आँसू नैनों से बहते ही ज्वाला के कारण सूख जाते हैं[6]। ज्वाला में एक अद्भुत बात इन्होंने कही है कि ज्वाला बढ़ने से विरहिणी के तन में स्नेह का उबाल आता है

१- दोहा पुष्कर - अज्ञात कवि पद सं. २ पृ. सं. ६

२- कृपा राम - हिततरंगिणी रीतिकाव्य संग्रह पद सं. पृ. सं. २४/१४१

३-५ बिहारी सतसई पद सं० २१७, २८३, ४८३ पृ. सं. ७६,

६- मतिराम सतसई पद सं० ६६६ पृ. सं. १५८

अर्थात् उस का मन प्रेम से भर जाता है[1]। विरह की ज्वाला इतनी प्रबल है कि उस के निकट बातें तक जल जाती हैं ।

> छिन-छिन ती पहुँचे कहौं सींस सखिनि की बात ।[2]
> विरह-आँचनि जरि जात है बीचहिं सीरीयहिं बात ।

रसलीन कवि कहते हैं कि विरहिनी के नैनों से आँसू निकलते ही गायब हो जाते हैं[3]। वृंद कवि ने आग बढ़ने का कारण लिखा है प्रियतम की बातों की स्मृति आने से आग चौगुनी बढ़ती है[4]। रसनिधि की विरहिणी के मानस की भी परख है तथा विरह को महत्वपूर्ण समझते हैं । वह कहते हैं जब तक मन रूपी घट को विरह रूपी आँच में पकाया नहीं जायेगा तब तक उस में स्नेह रूपी जल कैसे भरेगा[5]। इन का विरह वर्णन शारीरिक नहीं वरन् मानसिक है ।अन्य कवियों की तरह इन्हों ने अतिशयोक्ति में जो वर्णन किया है पर इन का वर्णन अनुभूति पूर्ण है । विरह की अग्नि में इन की नायिका का शरीर नहीं जलता वरन् मन की आहुति पड़ती है । यथा

> हिय आवरन दृग भुवन नेह घुघट भर लेत ।
> विरह-अगिन में नैन - द्विज मन की आहुति देत ।[6]

राम सहाय जी ने लिखा है विरह आँच को सह सकना बड़ा कठिन है । गुलाब छिड़कने की शीशी टूट गई[7]। इनका वर्णन बिहारी की परम्परा

१-२ मतिराम सतसई पद सं० ३२८, ३१४ पृ.सं. १५४, १२२

३- रीति शृंगार - रसलीन पद सं० ३०

४- वृंद सतसई पद सं० ६२ पृ० सं० २९१

५-६ रसनिधि सतसई पद सं० पृ० सं० ५१२।२१४, ५७०।२१५

७- राम सतसई पद सं० पृ० सं० ५९०।७०४

का है । विक्रम की नायिका पर विरह में चंदन, कपूर तथा गुलाब जल किसी का प्रभाव नहीं होता उस की ज्वाला किसी तरह भी नहीं मिटती[1]।

विरह में प्रिय से सम्बन्धित वस्तुएं और स्थान विगत विषयों की स्मृतियों को साकार कर देते हैं इस से विरहिणी का मन व्याकुल हो जाता है । कृपा राम ने लिखा है विरहिणी प्रीतम के स्थान को देखकर मन ही मन में उस की स्मृति में घुलती रहती है । उस का शरीर विरह में क्षीण हो गया है, वह अधिकतर चुप रहती है । अपने प्रियतम के स्थान को देखती चलती है[2]। कहीं कहीं इन कवियों के वर्णन हृदयस्पर्शी भावनाओं से पूर्ण हैं । बिहारी की विरहिणी ने जहां जहां श्याम को खड़े देखा था, उन स्थानों को बिना श्याम के भी देखा करती है[3]। मतिराम ने अपनी सतसई में वर्णन किया है कि यह जीव तुम्हारे बिना नहीं रह सकता, यह तुम्हारे साथ जा रहा है, इस को अपने साथ अच्छी तरह सम्हाल कर रखना[4]।

रसनिधि की विरहिणी अपनी सखी से कहती है कि जिन बैरिन आंखों के कारण हमें विरह हुआ है उन आंखों में प्रियतम के चरण की धूल लगा दो। प्रियतम का संसर्ग तो छूट ही गया है पर चरण रज तो मिल ही जावे ।उन का कहना है जिस दिन से प्रियतम गए हैं तभी से नींद और भूख पर विरह ने अधिकार कर लिया है[6]।विक्रम कवि ने कहा है विरहिणी के हृदय में बराबर ही प्रियतम की यादें गड़ी रहती हैं -

> सालै मित नटसाल सी निकसि सकै किहि भांति ।
> गड़ी गड़ी अँखियां हिये गड़ी रहौं दिन राति ।[7]

1- विक्रम सतसई पद सं० पृ० सं० ५८० ।१२८ ७, विक्रमसतसई पद सं. पृ. सं. ५७०/१२७२

2- हित तरंगिनी कृपा राम पृ सं० ५०

3- बिहारी सतसई पद सं० १८२ पृ. ६. ०५

4- मतिराम पद सं० ५१४ पृ. सं. १९०

5-6-7 रसनिधि सतसई पद सं० २४१, ५९५ पृ. सं. ९७१, २९५

चंदनादि शीतल पदार्थ, चंद्रमा की चाँदनी, गुलाब जल आदि से वियोग व्यथा का उद्दीप्त होना परम्परा - युक्त है । इन सभी कवियों ने इस पर अपनी कल्पना संजोई है । महाकवि कालिदास ने 'विसृजति हिमगर्भैरग्निमिन्दुर्मयूखैः' तथा गोस्वामी तुलसी दास जी ने 'पावकमय' शशि कहा है । कृपा राम की नायिका को चंदन आग के समान लगता है[1]। बिहारी की नायिका कहती है सभी पागल हो गए हैं कि सारा गांव पागल हो गया है जो चंद्रमा को शीतलता प्रदान करने वाला कहता है[2]। उस का कहना है कि पति के बिना चंदन, चंद्रमा तथा मंद मंद मारुत विपत्ति के बढ़ाने वाले ही हैं[3]। मतिराम की विरहिणी को प्रीतम की मुस्कान चंद्रकिरण के समान लगती है, जो कि प्रीतम के बिना संताप डाल रही है[4]। विरहिणी के शरीर से चन्द्र किरण से आग सी निकलने लगती है, जैसे सूर्य की किरण से दर्पण से आग दीप्त हो जाती है[5]। वे कहते हैं

ये अंगन पिय संग मैं ~~[illegible]~~ सरसावति हुते पियूष ।
ते बीछू के डंक से भए मयंक-मयूख ।[6]

बिहारी की नायिका को तो चन्द्रकिरण ही विष के समान लगती है पर मतिराम की विरहिणी को और सब वस्तुएं भी पति के बिना चन्द्रकिरण के समान विषवत लगती हैं । पद्माकर की विरहिणी सेज पर पड़ी पड़ी आहें भर रही है चाँदनी के बढ़ने से उसके चित्त की व्याकुलता बढ़ती जाती है[7]। रसनिधि की नायिका कहती है हे निर्दई चंद्रमा, तुम विरहिणियों को जलाते क्यों हो[8]। उन का

१- ~~बिहारी सतसई पद सं० [illegible] पृ० सं० [illegible]~~ कृपाराम - हिततरंगिणी पृ. ६१

२-३ बिहारी सतसई पद सं० १३५, ८६ प. सं. ~~[illegible]~~, ~~[illegible]~~ ८२, ५७

४-६ मतिराम सतसई पद सं० ३२१, ५२, ५१४ पृ. सं. १८१, १२१, १६२

७- पद्माकर पंचामृत जगद्विनोद पद सं० १८६ पृ० सं० १२२

८- रसनिधि सतसई पद सं० पृ० सं० ५४१।२१४,

कहना है कि तुम्हारा तो नाम सुधाकर है अमृत की वर्षा करने की जगह उन्हें जलाते क्यों हो[1]। राम सहाय जी ने वर्णन किया है कि सखियाँ विरहिणी के लिए बड़ी चिंतित हैं । उपचार करती हैं पर फल विपरीत ही निकलता है । विरहिणी की आग चंदन और चन्द्र से और भी प्रज्वलित होती है ।[2] अज्ञात कवि ने इसी भाव को इन शब्दों में प्रकट किया है -

सूनौ निरखि सकेत सब पिय बिन पायै सैन ।
सखि हिमवान अनंग लगि चंदन भानु सो सैन ।[3]

विरहिणी के उद्वेग का वर्णन परम्परा से चला आ रहा है । हिततरंगिनी में विरहिणी क्षण में रोती और क्षण में हंसने लगती है । कभी मौन धारण करती कभी आँखों में अश्रु का उबाल आने लगता है[4]। बिहारी की नायिका का अधिकतर शारीरिक परिवर्तन हुआ है । वह वियोग में इतनी कृश हो गई है कि हिंडोरे के समान छः सात हाथ तक इधर से उधर होती है[5]। मानसिक अनुभूति का भी कहीं कहीं वर्णन किया है । नायिका यहाँ से वहाँ फिरती रहती है । बिल्कुल धीरज नहीं है । वह जली हुई सी घूमती है[6]।

मतिराम की नायिका की भी मानसिक स्थिति ठीक नहीं है । 'रोय उठी छिन हँसि उठै छिन उठि चले रिसाय[7]'। पद्माकर की नायिका को प्रियतम के वचन सुनने के बाद से किसी की बात नहीं सुहाती[8]। राम सतसई में

१- रसनिधि सतसई पद सं० पृ० सं० ४९४।१११
२- राम सतसई पद सं० १९८ पृ.सं. २६८
३- दोहा फुटकर - अज्ञात कवि पद सं. ३६ पृ.सं. ७
४- हिततरंगिनी - कृपा राम पृ० सं. ६१
५-६ बिहारी सतसई पद सं० ३१०, ५३५ पृ.सं. [illegible] ८५, १०१
७- मतिराम - रसराज पद सं० ४२०
८- पद्माकर पंचामृत पद सं० १३४ पृ० सं० ५५

विरहिणी घर में नहीं ठहरती । बूड़ती और तैरती सी रहती है ।[1]

परम्परा से सभी कवि प्रायः विरह वर्णन के अन्तर्गत पत्र तथा व्यक्ति द्वारा संदेश भेजते हैं । संस्कृत का मेघदूत तो इस परम्परा का प्रसिद्ध काव्य है । इस में एक विशेष मार्मिकता रहती है । विरहिणी की शारीरिक और मानसिक स्थिति का पता लगता है । वास्तविक उद्देश्य प्रेम की व्यथा कथा की व्यंजना है । कृपाराम ने इस परम्परा का निर्वाह केवल इतना कह कर ही किया है कि श्याम ने पत्र नहीं लिखा लगता है पर-स्त्री से उलझ गए हैं[2]। बिहारी की विरहिणी प्रियतम की पत्रिका को उसी के समान प्रेम का आलंबन बनाकर पत्री को चूमती है, हृदय से लगाती है, पत्री को देखकर पढ़ती है फिर समेट कर रख देती है[3]। विरहिणी पत्र लिखने बैठी, समझ में नहीं आता कि क्या लिखे । मन की व्यथा लिखना कठिन है । कागज पर कुछ लिखते नहीं बनता है, संदेशा कहते लज्जा आती है, यह कह कर संतोष कर लेती है कि मेरे हृदय की बात सब तुम्हारा हृदय कह देगा[4]। अंत में पत्री बिना लिखे ही भेज दी ।

विरह बिकल बिनु ही लिखी पाती दई पठाई ।
आँक बिहूनियौ सुचित सूनै बाँचत जाई ।[5]

मतिराम की विरहिणी संदेशा सखी के द्वारा भेजती है कि अब लज्जा गई, सुख भी गया अब केवल शरीर छूटने को बाकी है[6] । रसनिधि की भावना और भी तीखी है । उस की विरहिणी के शब्द कागज सह ही नहीं सकते पर बिना आँक के ही उस की पत्री हृदय को बेधने वाली है -

---

१- राम सतसई पद सं० ४८८ पृ सं २६५

२- हित तरंगिनी पृ० ६१ -

३-४ बिहारी सतसई पद सं० ६० पृ० सं० पृ सं ६५

५- " " ५७६ - पृ सं १०१

६- मतिराम सतसई पद सं० ८१ पृ. सं. १२२

कागद कागद मैं अरे सहै न बिरह की बात ।

मन मिल लिखत निकट ते हिये पार होइ जात ।[१]

राम सतसई की नायिका को प्रियतम की पत्री मिल जाती है । वह उस पत्री को हृदय से लगा लेती है । उस पत्री ने विरहाग्नि को दुगुना कर दिया, यह विरहिणी का स्वाभाविक भाव है । प्रियतम की पत्री तो विरह को बढ़ाने वाली होती है ।[२]

विरहिणी को स्वप्न में पति के दर्शन होना स्वाभाविक है । उस ऐ दुख में वृद्धि मनोवैज्ञानिक सच्ची है । इन कवियों में इस की सच्ची अनुभूति के दर्शन होते हैं । बिहारी की नायिका स्वप्न में कृष्ण जी के साथ हिल मिल रही थी कि इतने में नींद भाग गई उस से उस का वियोग और भी बढ़ गया[३]। विक्रम सतसई में नायिका का प्रियतम से मिलकर खेल हो रहा था कि इतने में नींद खुल गई ।[४]

<u>वियोगमें प्रकृति चित्रण</u> - प्रकृति का वर्णन इन कवियों ने अधिकतर उद्दीपन रूप में ही किया है । संयोग की अपेक्षा वियोग में प्रेमीजन बाह्य वातावरण की ओर अधिक ध्यान देते हैं, इसी से इन कवियों ने प्रकृति के वैभव को वियोगिनी की दृष्टि से देखा । कृपा राम की वियोगिनी आषाढ़ के दिन निकट आया हुआ जानकर चित्र लिखी सी हो गई है । उस की दशा विचित्र हो गई है । बिहारी की नायिका वसंत ऋतु में जगह जगह पुष्पों को खिले हुए देखकर अत्यंत व्याकुल है, उस को लगता है कि ऋतुराज ने वियोगिनी का पंजर दिखाया

१- रसनिधि सतसई पद सं० ५४३ पृ. सं. २१५
२- राम सतसई पद सं० ४२८ पृ. सं. २६२
३- बिहारी सतसई पद सं० ११६ पृ. सं. ९२
४- विक्रम सतसई पद सं० ७४४ पृ. सं. २५५
५- हितरंगिनी पृ० १० - कृपाराम

है । विरह का प्रभाव दिखाया है, बसंत में पलाश को देखकर पथिक तक दावाग्नि समझते हैं । वही विरहिणी वर्षा ऋतु में जुगनुओं को देखकर भीतर भाग जाती है, उसे ऐसा प्रतीत होता है कि आग बरस रही है[१]। चंद्र की चाँदनी उस को अचेत किए है । ऐसा समय आ गया है कि सुख देने वाले पदार्थ दुख देने लगते हैं[३]। ग्रीष्म में विरहिणी के मन का हाल और भी अद्भुत है ।

नाहिंन ए पावक-प्रबल लुवैं चलैं चहुँ पास ।
मानहु बिरह बसंत कैं ग्रीषम लेत उसास ।[४]

मतिराम की विरहिणी बादल से पूछती है कि तुम तो सब को जीवन दान देने वाले हो हम से तुम से कौन बैर है जो तुम हमारा जीवन हरण करते हो[५]। वर्षा में इन्द्र तक आग की वर्षा करते हैं[६]। बसंत में पलाश नहीं वरन् दावाग्नि लग गई है । वह नैनों को जलाती है[७]। वियोग में ऐसी भावनाएं हो जाती हैं कि सुन्दर वस्तुएं और भी अधिक चुभती हैं इसी से बसन्त ऋतु की इतनी महत्ता है । ग्रीष्म ऋतु में कहते हैं कि खारे जल की नदी ही बहने लगी है[८]। अश्रु धारा से ही नदी में जल आया है । वर्षा ऋतु की ओर सब से अधिक ध्यान गया है ।

ज्वाल माल बिज्जुलि-छटा घटा धूम अनुहारि ।
बिरहिनि-बारन की मनौ लाई मदन दवारि ।[९]

राम सहाय जी की वियोगिनी शिशिर ऋतु में अत्यन्त व्याकुल है । उसे शिशिर ऋतु की वायु भस्म करे डाल रही है पता नहीं कैसे इसे लोग माघ का महीना कहते हैं वास्तव में यह निदाघ की ऋतु है[१०]। नायिका कहती है चारों ओर से बादल घिरि आए हैं । मोर का शोर सुनकर मन चंचल हो

१-४ बिहारी सतसई पद सं० ४०१,५९१,५१९,४८८ पृ. सं. २७६, २०६, २०९, २०६

५-९ मतिराम सतसई पद सं०, ४१९/१८७, ४२६।१३३, ५८५/१९२, ६१/१२१, ५०६।१२८ (पृ.सं)

१०- राम सतसई पद सं० २३३ पृ. सं. २८६

रहा है[1]। विक्रम कवि की नायिका को जाड़े गरमी से भी अधिक तीक्ष्ण लगते हैं ।

कल न परत परजंक पर दृग न नींदि निसरात ।
अब ग्रीषम दिन है विक्रम लगी माघ की रात।[2]

इसी परम्परा में अज्ञात कवि ने लिखा है कि भादों की रात है अँधेरा हो रहा है पर पिरह जोर मिलने को नहीं आए[3]। वह तन्मयता तथा अनुभूति जो और कवियों में है वह इन में नहीं है ।

<u>कवित्त और सवैयों में शृंगार परक परम्परा</u> -

शृंगार वर्णन की परम्परा संस्कृत काल से ही चली आ रही थी । उस में शृंगार की भावना परिष्कृत और संस्कृत रूप में हमारे सामने आती है । मन की कोमल सौंदर्य वृत्तियों का चित्रण मिलता है । यही सौंदर्य वृत्ति वीर गाथा काल में वीर भावों के आश्रित हो गई है । भक्ति काल के शृंगार अपार्थिव हो गये, उसका आलम्बन मनुष्य न होकर भगवान बने। इस में बौद्धिक तत्वों का समावेश हुआ।इन वर्णनों में मानसिकता तीव्र है । शारीरिकता कुंठित है ।निर्गुण कवियों में आलम्बन सूक्ष्म है पर वही सगुण कवियों में स्थूल है । इस से ऐन्द्रीय अनुभूति की महत्ता पाई जाती है । आलम्बन को बुद्धि के द्वारा पाने का प्रयत्न न कर के मनोगम्य बनाया है । इस में प्रेम की सभी विशेषताएं होती हैं । रसखान ने इसी प्रेम तत्व को अपने काव्य का क्षेत्र बनाया । इन में एकनिष्ठ प्रेम की तीव्रता और तन्मयता पाई जाती है । इन कवियों ने रूप वर्णन में अपनी सौंदर्य वृत्ति का परिचय दिया है ।

<u>रूप वर्णन</u> - रूप की परिभाषा संस्कृत काल से ही कवि करते आ रहे हैं । पर सौंदर्य अनिर्वचनीय होने के कारण इसे परिभाषा में कोई न बांध सके ।

१- राम सतसई पद सं० २४४।१४७
२- विक्रम सतसई पद सं० पृ० सं० २८२।३६४
३- दोहा फुटकर - अज्ञात कवि - हस्तलिखित प५८. ६१ पृ. सं. १२

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जो मन को भला लगे वही सौंदर्य है । देव ने रूप की परिभाषा करते हुए कहा है -

देखत ही जो मन हरे सुख अंखियन को देइ ।
रूप बखाने ताहि को कवि कैसो करि लेइ ।[1]

अर्थात् जो मन को हर ले, नैनों को सुख दे वही रूप है । रीति काल में रूप का वर्णन वस्तु परक है । अधिकांश कवि परिपाटी ग्रस्त मानस का परिपालन करते हैं । इस में व्यक्तिगत भावना नहीं होती । नायक एवं नायिका की उमड़ी भावना की ओर कवि का ध्यान नहीं रहता । सभी भावों को मानस की योजना आच्छादित किए रहती है । रूप वर्णन दो तरह का मिलता है :

(१) आलंकारिक रूप वर्णन

(२) इन्द्रियोत्तेजक रूप वर्णन

सौंदर्य चित्र की उत्कृष्टता का माप ही सम्पूर्ण ऐन्द्रिय चेतना का चित्र गहराई से खींचता है जिस को कि कवि उपमानों के द्वारा चित्रित करता है । इन्द्रियोत्तेजक रूप वर्णन में संवेगात्मक चित्र खींचे जाते हैं । इस में कवि की वैयक्तिक भावना भी छिपी रहती है । अधिकतर कवि की पंक्तियाँ पाठक के संवेगों पर चोट करती हैं, इस से उस की सौंदर्य चेतना अंकुरित हो उठती है और वह भावात्मक अनुकूलता प्राप्त कर लेता है, पर अधिकांश ऐसे चित्रों में ऐन्द्रिय सुखता दिखाई देती है । रूप और यौवन के प्रति तीखी ललक मिलती है जो कहीं कहीं अश्लीलता का रूप धारण कर लेती है ।

गोस्वामी तुलसी दास जी ने राम चन्द्र जी का रूप वर्णन किया है । यह वर्णन सांगोपांग है ।

१- रसविलास देव और उन की कविता पृ० १००

पग नूपुर औ पहुँची कर कंजनि, मंजु बनी मनिमाल हिये ।
नव नील कलेवर पीत झँगा झलकै, पुलकै नृप गोद लिये ।
अरबिन्द सो आनन, रूपमरंद अनंदित लोचन-भृंग पिये ।

अन्तिम पद में वे उपासना भी करते जाते हैं क्योंकि इन के काव्य का ध्येय यही था ।

मन मो न बस्यो अस बालक ज्यों तुलसी जग में फल कौन जिए [1]।

इसी तरह इन्होंने दाँतों की चमक को दामिनी के सदृश कहा है बचपन के चित्र इन्होंने अंकित किए हैं । 'कबहूं करताल बजाय के नाचत' तथा 'कबहूं रिसिआय कहैं हठि कै' में गोस्वामी जी का मन रमा है ।

रसखान प्रेम तत्व के पुजारी हैं अतः इन का रूप वर्णन भगवान के सौंदर्य पर अधिक आश्रित है । यद्यपि इन का वर्णन कृष्ण जी के रूप सौंदर्य का है पर इन के कृष्ण जी में मानव व्यापार है । इन के कृष्ण जी में अलौकिकता नहीं है । कहते हैं काम का मैन है, लटायें मुख पर लहरा रही हैं। यह चाँदनी के मधुर को मानों चंद्रमा के पास से चुरा रही है । मनमोहन की मूर्ति सब को तरसाती है [2]। एक जगह कृष्ण जी और शिव जी का सौंदर्य एक साथ ही दिया है । एक ओर किरीट दूसरी ओर नागों की शोभा, एक ओर मुरली, दूसरी ओर डमरू एक ओर पीताम्बर दूसरी ओर बघंबर [3], इस तरह रूप वर्णन में चमत्कार दिखाया है । कृष्ण जी के बचपने का वर्णन किया है ।

धूर भरे अति सोभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।
खेलत खात फिरे अंगना पग पैंजनी बाजती पीरी कछोटी ।
वा छबि को रसखान बिलोकत वारत काम कला निज कोटी ।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी ।[4]

१- तुलसी ~~(कृष्ण तुलसी)~~ - कवितावली पद सं० पृ० सं० २।१८७
२-३ रसखान सुधा पद पृ० पृ० सं० ३२।६६, १६।४९
४- " सौरिआज सेंग्रह सतलोनि पद सं० पृ० सं० ८।३३०

रसखान के बाद शृंगारी कविता की प्रवृत्ति दूसरी ओर उन्मुख हो गई । बौद्धिकता और मानसिकता को छोड़ कर अब शारीरिकता की ओर प्रवृत्ति हुई । उस में स्त्री पुरूष का सहज ऐन्द्रिक आकर्षण व्यक्त है । यह ऐन्द्रिकता साध्य नहीं वरन् साधन रूप में पाई जाती है । राम चन्द्र शुक्ल के इतिहास के अनुसार कवित्त सवैया की परम्परा में रसखान के बाद ब्रह्म का नाम आता है । यह दरबारी कवि हैं इस से रूप सौंदर्य का वर्णन ही इन की विशेषता है । इन के रूप वर्णन में कल्पना के कारण विस्मय का भाव उत्पन्न होता है चम्पक के बागे उपज पूरन पुनेऊ को ससि में बेनी और मुख की उपमान आश्चर्य में डाल देती है । इन्हों ने रूप वर्णन में नायिका के अंगों को उपमानों के द्वारा वर्णन किया है -

कनर्दीन पुरट बिंदुली छिये भाल सों नेकन मो पग ते टहलै ।
मनु इंदु के बीच में बीच बनी अलि बालक आय परयो चहलै ।
कवि ब्रह्म भने घुंघरी अलकैं अपने बल काहुन को कहलै ।
दुरि बैठि मयंक के कूल दुहूं दिसि कोऊ न पैठि सकै पहलै ।[1]

कहीं कहीं परम्परा के अनुसार नायिका का सौंदर्य चित्र खींचा है -

झीने दुकूल में कोई झलकी दैख छिपी दुति दीपशिखा सी[2]।

गंग के कवित्त में इस काल की रूचि रंजित है । नायिका के हाथ चम्पे के फूल की तरह चमकते हैं । वचनों में से रूप टपकता हुआ सा है। नैनों की चमक दमकती है उस का मुख देखकर चकोर ललचाता है मतवाले हाथी की सी गति है । सोने की सी चमक है । लाल लाल हाथ पैर हैं मोती की तरह दाँत हैं । यह दर्शकों को व्याकुल कर देता है[3]। इन्हों ने नायिका के अन्तः और बाह्य दोनों

१-२ ब्रह्म विनोद ग्रन्थ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग
पद सं० १४ पृ० २५० पद सं० ४३ पृ.सं. ३२१

३- गंग के कवित्त पद सं० १२०पृ० सं० ३०

सौंदर्य का उचित सन्निवेश किया है । गंग ने नायिका के नख शिख वर्णन में उस की बेणी, नेत्र, भृकुटी, नासा, तिल, भुज, कर, पग, आदि का सौंदर्य अलग अलग दिखाया है जिन में कहीं तो उपमान परम्परा के अनुसार है कहीं नये हैं । नायिका के नेत्रों का वर्णन रूपक की सहायता लेकर किया है ।

तीरथ उतारे तहाँ छोरे रखवारे लौ कारे तहाँ तारे अति
भौंरे से तुरंग है ।
कहै कवि गंग बहु रूप ही सों छोरे पुनि कोरे चितवत चित
अंचित तुरंग है ।
पारद सपद पार थिर है थिरकै बाल तिर में चलत मानो
कूदत कुरंग है ।
ऐसे ना रहत अनुरागहू के बागबर भामिनी के नैन कैधौं
मैन के तुरंग है ।[1]

केशव दास ने शृंगार वर्णन में नायिका का रूप सौंदर्य रीति परिपाटी के अनुसार किया है । हिन्दी साहित्य में रीति काव्य के आरम्भ करने वाले केशव दास ही हैं । उन्होंने नख शिख वर्णन के सन्दर्भ में नायिका के रूप का चित्रण किया है । नायिका पान खाए है, इस के होंठ लाल हैं, गाल इस के सुन्दर हैं । नेत्र काम देव को जगाने वाले हैं, भृकुटी कुटिल है, शृंगार सहज रूप में है । उसे किसी ने सजाया नहीं है[2]। कवि ने एक चित्र खींचा है चन्द्रमा के समान मस्तक है, भृकुटी कमान के समान , नेत्र काम देव के तीर हैं, कमल के समान सुगन्ध वाली, दाँत दाड़िम के सदृश, उस की बेंदी बिजली के समान है । चंचल से पैर, हंस की गति वाली वह देवता के समान है । सोने के समान उस का शरीर है[3] ।

१- गंग के छन्द अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग सं० डे० १० पृ ४५०

२- रीति शृंगार - केशव दास पृ० ११

३- केशवदास रीति काव्य संग्रह डा० जगदीश गुप्त पृ० १४१ अध. ५

<u>सेनापति</u> - ये प्रकृति के कवि हैं पर इन के काव्य में नायिकाओं का रूप वर्णन परम्परानुगत मिलता है । नायिका के शारीरिक सौंदर्य का समष्टि रूप में वर्णन हुआ है । नायिका के नैनों का अंकन किया है -

अंजन सुरंग जीते खंजन, कुरंग, मीन,

नैंकु न कमल उपमा कौं नियरात है ।

नीके, अनियारे, अति चपल, ढरारे, प्यारे,

ज्यौं-ज्यौं मैं निहारे त्यौं त्यौं खरे ललचात है ।

सेनापति सुधा से कटाच्छनि बरषि जाके,

जिन कौं निरखि हियो हरखि सिरात है ।

कान लौं बिसाल, काम भूप के रसाल, बाल

तेरे दृग देखे मेरो मन न अघात है[1] ।

सेनापति ने नायिका को लता के समान सुन्दर कहा है । मेंहदी के समान उस में सुगन्ध है । जो स्नेह से लगाता है उसी का हाथ लाल हो जाता है । अपना अंग भंग करके भी दूसरे की सुन्दरता को बढ़ाती है[2]।

सुन्दर कवि ने नायिका का रूप वर्णन किया है जिसमें मुख के ऊपर अलकें पड़ी हैं । अलकों का अलंकारिक चित्र खींचा है -

मानो पूर्वगिरि ऊंच चढ़ी सुख

ऊपर आय रही अलकैं स्यौं ।

कारी महा सटकारी है सुन्दर

सींचि रही मिलि यौवन ही सौं ।

लटकी लटका लटकीली हैं और

गई बढ़ि कै छवि आनन की यौं ।

आंक बढ़े विष सूखी निकारी कै

होत रुईखमु है उतरै ज्यौं[3] ।

१-२ सेनापति कवित्त रत्नाकर तरंग पद सं० १, पद सं०१६ पृ० ५,७ 32, 5-6
३- रीति श्रृंगार सुन्दर पृ० ५५

इस में आँख की महत्ता का वर्णन किया है । चिन्तामणि त्रिपाठी ने नायिका के रूप सौंदर्य का वर्णन करते हुए कहा है राधा जी के अंग अंग से गुलाब की सुगन्ध आती है, कोकिल के समान उस की वाणी है, चितवन मद से भरी हुई है । ऐसा लगता है कि शिशिर ऋतु में मानो बसन्त पंचमी आ गई है[1]। मतिराम की नायिका के रंग के आगे कुन्दन का रंग फीका लगता है, चितवन में चपलता है उस की मुसकान से सभी बिक जाते हैं । ज्यों ज्यों उसे निकट से देखिए त्यों त्यों उस की सुन्दरता अधिक ही लगती है[2]। नायिका के बाल सुखाते समय भी उस से सुन्दरता टपकती है । उसकी बातें चित्त चुराने वाली होती हैं तथा वह 'लोचन लोल सुहावन लागी' है[3]। मतिराम ने नवोढ़ा नायिका का चित्र खींचा है जिस की परम्परा हिन्दी में विद्यापति से प्रवाहित है । कुलपति मिश्र ने राधिका और कृष्ण दोनों के रूप को एक ही समान वर्णन किया है । जैसे,

मोहन के अभिलाष-भरी लखी
मन के समान रूप बन्यो है ।
रूप समान लुनाई निकाम लुनाई को जी
में सुजान भन्यो है ।
जैसी सुजानता तैसो बिचार
के, कृष्ण कुमार को नेह सन्यो है ।
नेह समान लई सुघराइ, सुराधे के जोबन
सन्ध बन्यो है ।[4]

<u>भूषण</u> - भूषण की अधिकांश कविता शौर्य प्रदर्शन की है पर कुछ

१- रीति शृंगार चिन्तामणि त्रिपाठी पृ. ४१

२- मतिराम रसराज छंद सं० ६ पृ० सं० ३०४

३- मतिराम ललित ललाम पद सं० १०६ पृ० सं० ३८३

४- रीति शृंगार-कुलपति मिश्र-रस रहस्य पृ० ७३

कवित्त शृंगार वर्णन की भी मिलती है । इन्होंने रूप वर्णन में नायिका के मुख के ऊपर अलकें आने का सौंदर्य निहारता है -

अति सौंधे भरी सुखमा सुखरी
मुख ऊपर आइ रही अलकैं ।
कवि भूषन अंग नवीन बिराजत
मोतिन माल हिये झलकैं ।
उन दोउन की मनसा मनसी
नित होत नई ललना ललकैं ।
भरि भाजन बाहर जात मनो
मुसकानि किधौं छवि की छलकैं[1]।

कालीदास त्रिवेदी ने नायिका का जो दीवटे ढंक पर खड़ी है उस का चित्र खींचा है । उस का सौंदर्य सब जगह जगमगा रहा है । नायक अचम्भित है कि वह क्या है -

लालन की आल है कि ज्वालनि की माल है
कि दामिनि कि कमला कि रवि है कि चन्द्र है[2]।

एक चित्र नायिका का झरोखे में देखते समय का है - हाथों में मेंहदी लाल अंगुलियां सभी की शोभा मनमोहक है[3]। सुखदेव मिश्र की नायिका चन्द्र कुमार का पथ जोहती रहती है । मोतियों के सब गहने पहने चन्द्रिका में चन्द्रिका के समान मिल गई सी प्रतीत होती है -

जोन्ह सी जोन्है गई मिलिबौं मिलि जात ज्यों दूध में दूध की धार है[4]।

१- भूषण ग्रंथावली पद सं० ६१ पृ० ११२
२- कालीदास   रीति शृंगार - पृ. ८४ ✓
३- रीति शृंगार कालिदास त्रिवेदी पृ० ८१
४- रीति शृंगार सुखदेव मिश्र पृ० ७७

नायिकाओं के रूप के सौंदर्य को द्विगुणित करने वाले देव कवि ने परम्परा की भावनाओं के साथ साथ नई नई उद्‌भावनाओं का समावेश किया है । अधिकांश में तो उपमानों की योजना ही मिलती है पर कहीं कहीं अपनी दृष्टि को वस्तु पर ही केन्द्रित करने का प्रयत्न किया है -

अंबर नील मिली कबरी मुकता
कर दामिनि सीस लसुं दिसि ।
ता मधि माथे में हीरा गुह्यो
सु गयो गड़ि देवनि की छवि सी लसि ।
मांग को मूल उठै सिर फूल
दब्यो चमकै अलकावलि सो मिसि ।
चंग सुमेरु मिलैं रति चन्द्र
ज्यों पावस मास अमावस की निसि[१]।

इस में रूप के प्रति स्वाभाविक भावना नहीं पाई जाती है । केवल आनन्द की भावना प्रधान है । रूप चित्र इनके काव्य में बहुत मिलते हैं जो कि सहृदय के हृदयों पर चोट करते हैं । इन के काव्य में वैयक्तिक भावना के भी दर्शन होते हैं । इन्होंने सौंदर्य के राशि राशि के भावपूर्ण चित्र खींचे हैं । ऐन्द्रिक चेतना का भी गहरा स्पर्श मिलता है । एक चित्र है नायिका का रूप सोने के समान है दिन दिन उस की ज्योति बढ़ती जाती है । उसके मुख की ज्योति के सामने रति और रम्भा की छवि धीमी हो जाती है । उस गजगामिनी के आगे सभी सुन्दरियाँ हार मानती हैं[२] ।

नायिका की पहुँचों की भी सुन्दरता का वर्णन किया है । नुपुर से युक्त महावर लगे पैर उस के शोभायमान हैं

१- देव और उनकी कविता पृ० १०१
२- देव सुधा पद सं० २६२ पृ० सं० १४१

की आभा को और बढ़ा देता है -

दास की नायिका के सौंदर्य को देखकर मनुष्य ही नहीं पशु तक भ्रमित हो जाते हैं । भौंरा नायिका के मुख को देखकर कमल का फूल समझता है । शुक होठों को बिम्ब फल, मोर वेणी के सर्पिणी, मृग नायिका की बोली को बीन समझता रहे हैं । सब की सुध-बुध नायिका के सौंदर्य को देखकर बकरा रही है[1]। दास ने नायिका को परम्परा के अनुसार दीपशिखा के समान भी कहा है ।

दीप सिखा सी मसाल प्रभा सी कहउं चपला सी की चन्द कला सी[2]

तोष कवि ने दास कवि के भाव के समान नायिका के रूप सौंदर्य का चित्र खींचा है और सर्प के भ्रम में नायिका की अलकें पकड़ लेते हैं । बोली सुनकर कोयल शोर मचाने लगती है । नाक से तोता झगड़ा करता है । जिस वन में वह जाती है पक्षी गण सिकाते हैं । मोती की माला को मराल चुगते हैं और मुख को चन्द्रमा समझ कर चोंच चलाते हैं[3]। इन की नायिका को पक्षी गण परेशान करते हैं । वह चिन्तित है कि इन पक्षियों से कैसे बचे ।

सोमनाथ ने नायिका के सौंदर्य का वर्णन किया है । स्वर्ण का सा रंग, सुन्दर वस्त्र तथा भूषण, प्रेम रस में पगी हुई नायिका को देखकर भौंरे और चकोर भ्रम में पड़ जाते हैं । शरद की चन्द्रमा के समान उस का मुख है । जहाँ ऋतुओं की छटा उस में फैली रहती है[4]।

रघुनाथ की कविता में राधिका रानी का सौंदर्य चांदनी के सदृश है । श्री राधिका जी चन्द्र देखने के लिए बाहर आकर बैठती हैं तो वास, भौं तथा नयन की छवि से ही वह पहचानी जाती है अन्यथा उनका रूप सौंदर्य चांदनी

१- रीति शृंगार दास पृ० १५६

२- शृंगार निर्णय पृ० २१ - दास पद सं. ६१

३- रीति शृंगार तोष पृ० १६०

४- रीति शृंगार सोम नाथ पृ १६३

में मिल गया है[1]। नायिका के झरोखे से देखते समय का भी चित्र है जिस में दर्शक भ्रम में पड़ जाते हैं कि ज्वालामुखी है कि सोने का पहाड़ है कि मुका है कि चन्द्रमा है[2]।

बेनी प्रवीन कहते हैं राधिका रानी प्रियतम के प्रेम में अनुरक्त होकर सब शृंगार करके बैठी हैं । उन के सारे शरीर में उमंग है । उन की सारी के नग जगमगा रहे हैं -

मलक मलक मांति
झलक झलक झाँई झांझरीन मानो मनि महल समानी दीपमालिका[3]

पद्माकर की नायिका ने झरोखे से जैसे ही झांका चारों ओर चाँदनी तथा उस के स्वास की सुगन्ध फैल गई । वस्त्र और बालों की सुन्दरता, मोती की माँगयुत नथ, मुसकान तथा नेत्रों की छवि से श्याम इतने प्रभावित हुए कि सब भूल गए[4]।

मांग सँवारि सिंगारी सुधारिय बेनी
गुही सु छबानि की छावै ।
त्यों 'पद्माकर' आ विधि और हू
साजि सिंगार सु श्याम को भावै ।
रीझे सखी लखि राधिका को रंग
जो अंग जो गहिनो पहिरावै ।
होत यों भूषित-भूषन गात ज्यौं
ऊँकत ज्योति जवाहिर पावै ।[5]

१- रीति शृंगार रघुनाथ पृ० १८१

२- हजारा रघुनाथ पद सं. पृ. सं. १५४/११२ - हस्तलिखित

३- रीति शृंगार बेनी प्रवीन पृ० १८८

४-५ पद्माकर ग्रंथावली पद सं० २२२/२५१ पृ० सं० १९९, १५१

ग्वाल कवि ने नदी पर स्नान करती हुई नायिका का वर्णन किया है । वह रूप की ज्योति है । रति, रमा, उमा का सौंदर्य उस के आगे फीका है । धोती निचोड़ती हुई वह सब का चित्त हरती है[१]।

प्रताप साहि ने नायिका का भावात्मक चित्र खींचा है । वह सखी तथा गुरुजनों का कहना नहीं मानती । घूंघट में नैन नचा कर सब को आकर्षित करती है । आँखों में अंजन लगा कर सब का मन मोहती है उस में चंचलता अधिक है इसी से वह बाहर भीतर आती जाती है[२]।

आलम कवि की नायिका काम देव के समान नवीन ज्योति लिए हुए आंगन में खड़ी है । गोरा रंग सफेद साड़ी, मोतियों की आभा सब मिल कर चन्द्रकला को फैलाते हैं । उस की चमक सोने के [illegible] के समान है । ऐसा प्रतीत होता है कि क्षीर निधि को मथकर किसी ने चन्द्रमा निकाला है[३]। इन्होंने नेत्रों को कमल के सदृश बताया है । वैसे ये रीति ग्रन्थ रचना करने वालों में नहीं हैं पर रूप वर्णन में उपमान परम्परा के अनुसार ही लिख हैं ।

घनानन्द के रूप के वर्णन में शारीरिक सौंदर्य के स्थान पर प्रभाव का वर्णन मुख्य है । इन्होंने नायिका की अन्तर्वृत्ति का निरूपण किया है इसी से और कवियों की तरह इन की नायिका नहीं है । इन की नायिका का रूप सौंदर्य इतना अधिक है कि उस के छलकने का डर होता है । सारे शरीर में सौंदर्य की तरंगें उठा करती हैं ।

१- हजारा ग्वाल पद सं० ३३० पृ० सं० १५७ - [illegible]

२- रीति श्रृंगार प्रताप साहि पृ० २२१

३- रीति श्रृंगार आलम और शेख पृ० ८२

झलकै अति सुन्दर आनन गौर

छके दृग राजत काननि छ्वै ।

हँसि बोलनि मैं छबि-फूलन की

बरषा, उर-ऊपर जाति है ह्वै ।

लट लोल कपोल कलोल करैं

कल कंठ बनी जलजावलि द्वै ।

अंग-अंग तरंग उठै दुति की परिहै

मनौ रूप अबै धर च्वै ।[1]

परम्परा के अनुसार इन्होंने नेत्र का वर्णन किया है । अलकों का वर्णन किया है पर मानसिक सौंदर्य दिखाने के कारण अन्य कवियों से इन का रूप वर्णन भिन्न है ।

बोधा कवि ने नायिका के रूप का वर्णन करते हुए कहा है नायिका के मस्तक पर रोरी लगी ऐसी प्रतीत होती है मानो चन्द्रमा के बीरबहूटी लगी है । यह उत्प्रेक्षा रूप की सुन्दरता को उतनी नहीं बढ़ाती जितनी कवि की कल्पना[2]।

ठाकुर कवि ने नायिका के रूप का वर्णन किया है गुलाब से नायिका ने सुगन्धि ली, कमल से कोमलता ली, चन्द्रमा से प्रकाश लिया, रति से सौंदर्य लिया, बुद्धिमानों से चतुराई ली -

सोने से सुरंग लै स्वाद लै सुधा को

बसुधा को सुख लूटि कै बनायो मुख तेरो है ।[3]

१- घनानन्द मूल ग्रंथ पृ० ९ पद सं. २ - घनानंद कवित्त - सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

२- इश्कनामा बोधा कृत पृ० २० पद सं. २०

३- हजारा - ठाकुर कवि - पद सं. पृ. सं. १२५/११२

इतनी सुन्दर वस्तुओं से बनाया हुआ मुख का सौंदर्य दर्शनीय होगा ही ।

पजनेस कवि ने मुख मंडल का वर्णन किया है कि नायिका की ज्योति दीप मालिका के समान जगमगा रही है । शरीर कुंदन के समान है

परत न ताब लखि मुख महताब आब

निकसी सिताब आफताब के मसक की ।[1]

द्विजदेव की नायिका के सौंदर्य को देखकर दास कवि की नायिका की तरह पक्षीगण प्रभावित हैं -

कलधौत, मयूर, कलानिधि, कुंद

हंसी-सी हंसी अति मंद किये ।

मुख-बास है कंज सुगंध-समेत

पराजित पीन सुछंद किये ।

'द्विजदेव' कटाच्छ ही तें जन

बीन्ह के दूरि सबै छल-छंद किये ।

पिक, चातक, मोर, चकोरन के

इक बात ही तें मुख बंद किये ।

नायिका की जुन्हाई की धारा तथा शशि की कला के समान कहा है[2]। कृष्ण जी का रूप वर्णन भी किया है । कमर में काछनी, पीताम्बर धारण किये हुए मस्तक पर मोर पंख शोभायमान है ।

दीन दयाल गिरि ने कृष्ण जी के रूप का वर्णन किया है । उन की बोली तथा हंसी अनमोल है । कुंडलों का हिलना, कपोल की झलक, दाँतों की चमक देखने को जी ललचाता है ।

१- हजारा पद सं० १५५ पृ० सं० ११३ — पजनेस प्रकाश [illegible]

२- मान मयंक पद सं० १२९ पृ० सं० ९१

३- " " ५२ " ६९

पलकैं न लगैं लखि कलगी सुमोर वारी
हलकैं हिये में वे मरोरवारी अलकैं ।[1]

<u>संयोग शृंगार</u>

संयोग शृंगार में प्रेमी प्रेमिका की मानसिक प्रतिक्रियाएं मिलती हैं । इस में या तो नायिका नायक को किसी प्रकार से मुग्ध करती है अथवा नायिका मुस्करायमान, प्रसन्न, लज्जित तथा स्तब्ध हो जाती है ।

गोस्वामी तुलसी दास जी ने एक चित्र कवितावली में राम और सीता के संयोग का खींचा है । इस का भाव अन्य कवियों से पूर्णतया भिन्न है पर वास्तविक संयोग के आनंद को उत्पन्न करने वाला है । विवाह के बाद दूलह दुलहिनी को कोहबर में सखियां ले गईं । वहां का चित्र है -

दूलह श्री रघुनाथ बने ,
तुलसी सिय सुंदर मंदिर माहीं ।
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि,
बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं ।
राम को रूप निहारति जानकी
कंकन के नग की परछांहीं ।
याते सबै सुधि भूलि गई,
कर टेकि रही पल टारति नाहीं ।[2]

इस में सीता जी के मनोभावों का चित्र है ।

रसखान में प्रेम की एकनिष्ठता के दर्शन होते हैं । इन्होंने सगुण भक्ति में अपनी स्वच्छंद वृत्ति लीन की है । इन का प्रेम भावनात्मक है शारीरिक नहीं है । इन के संयोग में अभिलाष वर्णन मिलता है । रसखान की नायिका कृष्ण जी को देखकर आनंदित होती है इस का वर्णन है । सुन्दर स्याम

१- दीनदयालगिरि-ग्रंथावली- सं. श्यामसुंदरदास पद सं. पृ. सं. ४४/८
२- तुलसी ग्रंथावली (रचनावली) - कवितावली पद सं० पृ० सं० १०। १७१

की दृष्टि बड़ी बांकी है वह देखने से चित्त को हर लेती है । उन के देखने से बाद कुल की लाज भी छूट जाती है ।[1] जिस दिन से नंदनंदन को देखा उस दिन से मन मतवाला हो गया है । जैसे सागर में सरिता दौड़ कर मिलती है वैसे ही कुल की लाज छूट गयी[2]। कृष्ण जी की हंसी नायिकाओं के मन को हरती है इस का वर्णन है _

बंक बिलोकन है दुख मोचन,
दीरघ लोचन रंग भरे हैं ।
घूमत बारुनी पान किये जिमि
झूमत आनन रंग ढरे हैं ।
गंडन पै झलकै छबि कुंडल,
नागरि नैन बिलोकि अरे हैं ।
रसखानि हरैं ब्रजबालनि के मन,
ईषद हांसी की फांसी भरे हैं ।[3]

पर रीति परम्परा के अनुसार इस के अन्तर्गत नव दम्पति की रस चेष्टायें सुरत विहार आदि का वर्णन आता है । यही रीति काव्य का मुख्य विषय है । इस की भित्ति दर्शन, श्रवण, स्पर्श, संलाप आदि की नींव पर खड़ी है । इस में मानसिक और शारीरिक सुख गाढ़े रंग से रंजित मिलता है । संयोग के वर्णन सुरत एवं सुरतांत के चित्र, परिहास के प्रसंग, मान वर्णन तथा विहार इस में सम्मिलित हैं । प्रद्युम्न ने संयोग के अन्तर्गत प्रेम क्रीड़ा का वर्णन किया है । सेज से उठ कर मनमोहन ने नायिका का चीर पकड़ लिया, मृगनयनी सूरज निकलने की ओर इंगित करती है

पदावली - सं. प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
1- रसखान, पद सं० ११ पृ. सं. २४
2- रसखान सुजानरसखान सवैया पदावली - पद सं. पृ. सं. २४।२९
3- रसखान सुधा पद सं० पदावली ३९ पृ० सं० २८

उसी कार्यकलाप का चित्र खींचा है ।[1] गंग ने ब्रज के बहुत से चित्र खींचे हैं । कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं को चित्रित किया है । चीर हरण का भी चित्र मिलता है । ग्रीष्म में मिलन का एक चित्र खींचा है -

स्वेद समेह भी टटियां है
सउ अभिलाष के पार न पावैं ।
भोजे में ही रति रंग करैं गंग क्यों न
पीठि अंगीठि मिलावैं ।[2]

केशव दास मनोभावों को व्यक्त करने में अत्यन्त निपुण हैं । उन्होंने एक चित्र राधा और कृष्ण के संयोग का खींचा है । वृषभानु की पुत्री राधिका रानी को यशोदा रानी ने न्यौते में बुलाया । भोजन कर पान खा कर वह अकेली ही ऊपर चली गईं । वहाँ कृष्ण मिल गए

देखत देखत हरि भावते को भामी
देखि दौरि गही ब्याल बेनी बेनी डर डारि कै ।
बैठी भरि अंक मन भायो करि आतुरी गुंह केसरि सों
माहि लई केसरि उतारि कै ।[3]

सेनापति गम्भीर प्रकृति के कवि हैं । इस से उनका संयोग वर्णन अधिक हृदयस्पर्शी है । "नायक ने नायिका के फूलों से बाल सजाए हैं, कस्तूरी की बेंदी लगाई, भूषण पहनाए, अपने हाथ से पान खिलाए उस के बाद मतावाले पैर में महावर लगाने के लिए जब पैर छूने लगे तब नायिका ने उस के हाथ चूम लिए और कहा प्राणपति आप अनुचित कर रहे हैं" । पद में इन के हृदय की व्यक्ति

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, ब्रहत् ग्रन्थ परशिष्ट भाग पद सं० ९९ पृ. सं. २४८
२- महाकवि श्री गंग के कवित्त- प्रो० श्री हरिनारायण " ३६ पृ. सं. ८
३- रसिक प्रिया केशव दास पद सं० ३४ पृ० ३०

प्रतिध्वनित होती है तथा सम्य नायक नायिका का वर्णन किया है ।[1]

चिन्तामणि त्रिपाठी की नायिका नायक की स्मृति में बैठी है । नायक के आते ही उस का दुख दूर हो जाता है । वह उमंग से पुलकित ऐसी प्रतीत होती है जैसे ब्रह्मा जी का कमंडल भगीरथ की तपस्या से गंगा जल से भर गया ।[2]

मतिराम ने इन्द्रिय मिलन का चित्र खींचा है प्रातः काल नायक नायिका दोनों के नैन अलसाने हुए हैं । नायिका के अंगों में लज्जा है । आलस्य की जंभाई बड़ी सुन्दर लग रही है ।[3]

भूषण ने संयोग वर्णन के अन्तर्गत सम्भोग का चित्र वीरता के रूपक में खींचा है ।

घाटि घरे बारन को बाँधि कै
आलिंगन सो भूषण छूटत भई घाटि घरे मेरे हैं ।[4]

देव के मिलन के प्रसंग में विशेष रस-मधुरता मिलती है । इन्होंने भावना के द्वारा मांसलता में रंग भर दिया है । इन के वर्णन में मन और शरीर दोनों को ही आनन्द मिलता है

आजु में रासमें रही बही
बनि राधिका कुंज बिहारी ।
स्यामा सराहति स्याम की पागहिं
स्याम सराहत स्यामा कि सारी ।
एकहि आरसी देखि कहै तिय
नीके लगौ पिय प्यौं कहि प्यारी ।
'देव' सु बालम बाल को बाद
बिलोकि भई बलि हौं बलिहारी ।[5]

१- सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० ३६ पृ० सं० ५३
२- रीति शृंगार चिन्तामणि त्रिपाठी पृ० सं० ४९
३- मतिराम रस राज पद सं० ३४०, पृ० सं० ३४३
४- भूष० ग्रंथावली पद सं० ६२, पृ० सं० ११२
५- देव सुधा पद सं० १४० पृ सं० ८२

श्यामा और श्याम एक दूसरे के सौंदर्य को देखकर आनंदित होते हैं । एक ही आरसी में देख रहे हैं पर अश्लीलता नहीं । मतिराम की भाँति कवीन्द्र की नायिका के नैना आलस से भरे हैं। मन्द धीरे धीरे मुस्कराती है तथा व्याकुल भी है क्यों कि प्रातः काल होने वाला है । दोनों बार बार अधर रस पीते हैं बातें करते हैं तथा मिलन से उन की इच्छा की पूर्ति नहीं होती है ।[1] इस में कवि ने ऐन्द्रिय सुख को खुले शब्दों में चित्रित किया है। इस में नायक नायिका के मनोभाव के नहीं उठते हैं इस से प्रयोजन नहीं केवल शारीरिक सुख का वर्णन है ।

दास जी के संयोग वर्णन में विलासता का चित्रण हुआ है । इन्होंने शिष्ट शब्दों में रति सम्बन्धी चित्र चित्रित किए हैं । कहीं कहीं भावात्मक चित्र भी मिल जाते हैं । एक चित्र है जिस में श्यामा और श्याम एक दूसरे से बातें करते रहते हैं । एक दूसरे को टकटकी दृष्टि से देखा करते हैं । श्यामा के अनुराग में श्याम लीन है और श्याम के अनुराग में श्यामा। दोनों एक दूसरे के नैनों के तारे हैं ।[2]

बेनी प्रवीन ने एक चित्र मिलन का खींचा है । प्रातः काल कृष्ण को आता हुआ देखकर नायिका दौड़ी और लिपट गई ।

साँवरो रंग लगी हरि रावरी
साँवरी ह्वै गई गोरि पिछौरी ।[3]

इस में मिलन से शारीरिक सौंदर्य बढ़ गया । साथ में मानसिक परिवर्तन का भी चित्रण है ।

पद्माकर के मिलाप में सुन्दरता का वर्णन अधिक है । सोलह शृंगार कर के नायिका केलि मन्दिर में बैठी है । गुलाब तथा जल की सुगन्धि फैल रही है । चारों ओर गुलाब जल से हौज भरे हैं । चाँदनी रात में चमेली की चौकी

१- श्यामा-संयोग वर्णन-कवीन्द्र - पद रा. पृ. सं. ७४/२७८-हस्तलिखित प्रति
२- रीति शृंगार दास पृ० १९९
३- बेनीप्रवीन- नवरस तरंग पृ० ७० पद सं. १२७

पर दोनों चौसर खेलते हैं[१]। इस में कहीं भी अश्लीलता नहीं है। चित्र खींचा है :-

ढोल बजावती, गावती गीत,

नचावती घूंघुरि धूरि के धारन,।

पैठि फते की कहैं द्विजदेव

यूं चंचलता-बस अंचलतारन ।

औचक ही बिजुरी-सी छुरी

दृग देखत मूंदि लियो दिखरावन,।

दामिनि सी चमत्कार मही बैठि

गई गहि गोरी गुपाल के हाथन ।[२]

संयोग के आनन्द और प्रेम के गर्व को प्रगट करने के लिए परिहास एक सुन्दर माध्यम है। यह प्रेम में चमत्व प्रदान करता है इस से वाणी में वक्रता आती है। इस प्रसंग में कवियों ने प्रेम जनित आत्म समर्पण, गर्व, प्रेमातिशय आदि अनेक प्रकार की भावनायें व्यक्त की हैं।

केशव दास ने एक सुन्दर चित्र खींचा है एक गोपी खाली मटकी को सिर पर रख कर कुछ छाछ की छींटें मटकी पर डाले हुए उस मार्ग से होकर निकलती है जहां कृष्ण खड़े हैं। कृष्ण तुरन्त आगे बढ़ कर उस मटकी को उतार लेते हैं। खाली देखकर खिसिया जाते हैं उधर गोपी हंसने लगती है।[३] रस के प्रसंग में कौतुक और विनोद खेल के भी काव्य में मिलता है। राधा अपनी सखियों सहित गली में से होकर आ रही है।

१- पद्माकर पंचामृत पद सं० २०३ पृ० सं० १२५

२- भाव पचासा पद सं० ४७ पृ० सं० ७०

३- रसिक प्रिया केशव दास पद सं० १७ पृ० सं० ८३

लागी प्रेम-डोरि, जोरि सांकरी ह्वै कढ़ी
आनि अनाइ नेह सों निहोरि जोरि आली मनमानती ।
उतते उताल वेस आये नन्दलाल, इत सौंहें
भई बाल नव लाल मुख जानती ।
कान्ह कह्यो टेरिकै, कहाँ ते आई, को है
तुम, लागती हमारे जान कोई पहिचानती ।
प्यारी कह्यो फेरि मुख हेरि तू जोई
जाहु, हमें तुम जानत, तुम्हें हूं हम जानती

इस में नायिका के न पहचानने का भाव बड़ा मधुर है । कृष्ण भी खिसिया कर रह जाते हैं । प्रेम की अटलता प्रेमी में ऐसे विश्वास को जन्म देती है कि जिस में कृत्रिमता के लिए कोई स्थान नहीं रहता । वैसे तो प्रेम धीरे धीरे बढ़ता है पर इन कवियों ने प्रेम की तीव्रता का वर्णन बड़े मार्मिक ढंग से किया है । केशव दास जी ने एक चित्र खींचा है सखी एक बार सौगन्ध दिलाकर वन में ले गई । वहाँ कृष्ण की मूर्ति जिस समय नेत्र में बस गई है पता नहीं चला

लाख के लाख चरेड़ रहे तन नैनन लै
मन ही सो मिलाये ।[1]
कैसी करौं अब क्यों निकसौं री
हरेइ हरे हिय में हरिआये ।[2]

दास ने प्रेम को अनुपम बनाने के लिए उन के व्यवहारों और आचरणों को मर्यादा में बांधा है । एक चित्र है नायिका बाहु बढ़ा लेती है पंचबाण की चोट सह लेती है लाख भी खोकर भी जाती है पर उस का प्रेम एकनिष्ठ है ।

१- प्रेम सुधा पद सं० २१९ पृ० सं० १९१
२- रसिक प्रिया केशव दास पद सं० १५ पृ० सं० २२

वह अपने प्रेमी को देखना , उसी के विषय में चर्चा चलाना पसन्द करती है । रघुनाथ कवि ने कृष्ण जी के साँवले रंग का कारण उन के प्रति सब की प्रेम भावना कहा है । वह कहते हैं सभी ने उन्हें अपने नयनों में बसा लिया है ।

संग रहै ते लगी झलकैं
पुतरीन के रंग की अंग जुनाई ।[1]

देव कवि को प्रेम की अनुभूति का गहरा अनुभव था । वह कहते हैं कि राधिका और कृष्ण दोनों का प्रेम एक रूप हो गया । कृष्ण जी का स्वरूप बादल के समान है । राधिका जी के पीले वस्त्र हैं । कृष्ण जी में बादलों की सी बिजली की चमक है । राधिका के तन में अंगराग लगा है । दोनों ही एक दूसरे के मूर्ति रूप हैं । एक ही आत्मा दोनों शरीर में व्याप्त है । देव की वाणी में हलका आवेश नहीं वरन् गम्भीर अनुभूति का भार है इसी से कवि की सम्पूर्ण चेतना प्रेममय हो जाती है । राधा और मोहन दोनों ही रीझते हैं, [हारते हैं] खीझते हैं बात करते हैं ।

दुहुन को रूप गुन दोउ बरनत फिरैं
घर न थिरात रीत नेह की नई नई ।
मोहि-मोहि मोहन को मन भयो
राधामय राधामन मोहि-मोहि मोहन मई मई ।[2]

पद्माकर ने प्रेम उत्पन्न होने का चित्र खींचा है । वे सखी जू राधिका से कृष्ण जी का सौंदर्य वर्णन कर आई है तब से उसे कुछ अच्छा ही नहीं लगता । उसी की याद कर रही है ।

१- रीति शृंगार रघुनाथ पृ० १०५
२- देव सुधा पद सं० १४३ पृ० सं० ८३

मानहु नीर भरी घन की घटा
आँखिनमैं रही आनि उमैसी ।
ऐसी भई सुनि कान्ह-कथा
जो सुविलोकहिं गो तब होइगी कैसी ।[1]

घनानन्द में हृदय की मार्मिक अनुभूति मिलती है । प्रेम को इन्होंने सर्वोपरि प्रधानता दी है । इन का प्रेम मानसिक है वासनिक प्रधान है । वह प्रथम दर्शन से उत्पन्न होता है । अनन्यतः प्रेम का मूल तत्व है । प्रेम तत्व का वर्णन किया है ।

रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै ।
त्यौं इन आँखिन बानि अनोखी
अघानि कहूँ नहिं आनि तिहारियै ।
एकहि जीव हुतौ सु तौ वारयौ
सुजान! सकोच औ सोच सहारियै ।
रीझि रहै न, रहै घन आनन्द
बावरी रीझि के हाथनि हारियै ।[2]

बोधा में प्रेम की पीड़ा की अनुभूति अधिक है । वे प्रेम के पंथ को तलवार की धार के समान कठिन बताते हैं[3] । बोधा की नायिका कहती है कि ऐसी सुन्दरता देखने को नहीं मिलती । एक बार देखने पर देखने की इच्छा नहीं जाती तथा और किसी आनन को देखने की इच्छा नहीं होती जैसे सावन के अंधे को हरा ही हरा दीखता है[4] ।

१- पद्माकर ग्रंथावली पद सं० ३२५ पृ सं० १४८
२- घनानन्द मूल ग्रंथ पद सं० १५ पृ० सं० ८
३-४ रीति शृंगार ईश्कनामा पृ० १५२, १५४

ठाकुर कवि कहते हैं कि नायिका नायक को देखकर प्रेम में विभोर हो गई है । मन मोहन के दर्शन करने के बाद से आँखें उसी में लग गई हैं । कुल की कोई चिन्ता नहीं रह गई है । हृदय में उन के प्रति प्रेम जग गया । वे कहते हैं -

अब गांव नांवरे कोई धरो,

हम सांवरे रंग में रँगीं सो रँगीं ।[1]

<u>मान वर्णन</u> :-

मान में प्रेमी युगल का विच्छेद नहीं होता वरन् अनेक दशाओं में शारीरिक संयोग भी रहता है । कवियों ने ईर्ष्या-जन्य रोष और आक्रोश दो रूप में व्यक्त किया है । कथन रूप में और संवाद रूप में । कथन रूप में उतनी वक्रता नहीं पाई जाती । ब्रह्म कवि ने मान के प्रसंग पर कम ध्यान दिया है केवल साधारण सा निर्वाह कर दिया है । एक चित्र है कृष्ण मानवती राधिका का मान दूर करने के लिए अनुनय विनय करते हैं पर राधिका का हृदय मुर्झाया ही रहता है । वह गले में हाथ डाले फिर नीचा किए प्रेम की अधिकता के कारण कुछ कह नहीं पाती [2]।

गंग कवि की नायिका मान किए बैठी है । सखी कहती है चकई बिछुड़ कर मिल गई पर तुम प्रियतम से न मिलीं। भानु और चन्द्रमा डूब गए पर तुम्हारा कोप नहीं गया । गुलाब की कली खिल गई पर तुम ने मुंह नहीं खोला । शीतल वायु चली । रात बीत गई दीपक बुझ गया तुम्हारा मान न गया ।[3]

१- रीति श्रृंगार ठाकुर पृ० सं० १९८

२- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि ब्रह्म परिशिष्ट भाग पद सं० ५८ पृ० सं० ३५३

३- गंग के कवित्त पद सं० ५२ पृ० सं० १२

मतिराम की नायिका को आक्रोश हो आया है । नायक रात बिताकर आया है इस से नायिका भौंहें चढ़ा कर बैठी है । नायक बातें बनाने में चतुर है । वह पैर पकड़ने लगता है इस से मान टूट गया । क्रोध के आंसू आनन्द के आंसू में परिणित हो गए और क्रोध की लालिमा प्रेम की लालिमा में बदल गई[1]। ब्रह्म और गंग की नायिका का मान अनुनय विनय से भी नहीं गया ।मतिराम की नायिका प्रौढ़ा सी प्रतीत होती है तभी उस का हृदय पिघल गया । देव की नायिका का मान उड़ जाता है

भौंहन ते उठि पीठ पै बैठि
कन्धान पै ऐंठि मुरको मुख मोरनि ।
नैन कटाच्छनि ते कढ़ि कोप
लिलार चढ़्यो चढ़ि भौंह मरोरनि ।
अंक में आये मयंक मुखी
लई लाल को अंक पिरे भुज-कोरनि ।
आंसुन धोयो उसास उड़्यो
बिथ्यौं मान गयो हिलकी की हिलोरनि ।[2]

नायिका का मान रोने के साथ ही उड़ गया ।

तोष कवि ने संवाद रूप में इस का वर्णन किया है । नायक दरवाजा खटखटा रहा है तथा कह रहा है हम घनश्याम हैं । नायिका उत्तर देती है कि दामनी को जाकर देखो ।नायक कहता है सखी मैं वनमाली हूं तो वह उत्तर देती है फूल जाकर बेचो । वह कहता है हम वनमाली हैं तो वह कहती है कुंज में जाओ । नायक कहता है क्यों खिझा रही हो हम तो मुरलीधर दास हैं[3]।

१- मतिराम रस राज पद सं० २३२ पृ० सं० ३२१

२- देव सुधा पद सं० २९५ पृ० सं० १२३

३- रीति शृंगार तोष पृ० सं० १००

रघुनाथ की नायिका मान में बिना ब्यारू बिना अंजन बिना हार बिना बेंदी बिना नथ खुले बाल तथा भौंहें चढ़ाए हुए है । मुँह पर रूखापन है । नायक आकर मनाता नहीं वरन् उस का मान देख रहा है[1]। रघुनाथ का नायक कुछ परिहास प्रकृति का सा प्रतीत होता है ।

पद्माकर का नायक मानिनी को देख कर घबड़ा जाता है । वह अकुलाया हुआ है ।

> आगे को धरत पद पीछे को धरत पग,
> पौर ही से आजु कछु और छवि छाये हौ ।
> कहाँ आये ? तेरे धाम, कौन काम ? घर जानि,
> वहाँ जाउ कहाँ ? जहँ मन धरि आये हौ ।

इस में संवाद रूप में नायिका की भावना का वर्णन है । नायक की आन्तरिक स्थिति का पता चलता है पर उद्वेगों का चित्रण नहीं है ।[2]

<u>विहार</u> - संयोग के अन्तर्गत विहार वर्णन में सभी कवियों को बड़ा उत्साह है । इस में ऋतुओं के विभिन्न उत्सवों पर प्रेमी प्रेमिका के आनन्द का वर्णन किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि कवि का मन पर्वों और उत्सवों पर हर्षोन्मत्त होकर नाच उठता है ।

केशव दास भी शृंगार प्रिय कवि हैं, इसी लिए उन्हों ने वर्षा वर्णन को भी अलंकारों से सुसज्जित किया है । वे इतने आनन्दित हैं कि भ्रम में हो गए कि ये वर्षा है कि कालिका महारानी । उन्हें उमड़े हुए बादल इन्द्र धनुष तथा बिजली कालिका के पयोधर भौंहें तथा भूषण प्रतीत हुए । मोरों का शब्द उस की बाल की भनक तथा आकाश में बादल नीलकंठ से प्रतीत हुए । उन्हों ने कहा है

१- शृंगार सुधाकर रघुनाथ पद सं. ५. पृ. ३०/१९६२

२- पद्माकर पंचामृत पद सं० ५९ पृ० सं० ९७

वर्षा सभी को हर्षोन्मत्त कर रही है ।[1]

मतिराम की नायिका बादलों को देख कर कुछ साथ बाहर सहेट स्थल पर पहुंचती है -

नागरि के नैनन में नीर को प्रवाह बढ्यो
निरखि प्रवाह बढ्यो यमुना के तीर को ।[2]

कालि दास ने वर्णन किया है असाढ़ के महीने में मोर बोल रहे हैं । वायु झकझोर रही है शीतल कदम्ब की छांह में नायिका इन्द्र के नगर को देख रही है। ऐसे कुसुम के नाचे और प्रेम कुसुम झरते हैं । नये नये अम्बर के समान ब्रज के घन मंडल आ गए हैं[3]।

देव के चित्रों में आनन्द प्रस्फुटित है । इस में वर्णन ऐन्द्रिय उल्लास तक ही सीमित नहीं किन्तु प्रेम के रस का चित्रण भी करते हैं । देव ने वर्षा के आगमन का एक चित्र खींचा है चातक, मोर, कोकिल की ध्वनि सुनाई देती है, घटा झुकी हुई है ।

रंगराती हरी हहराती लता झुकि जाती
समीर के झूकन सों ।[4]

श्रीपति ने वर्णन किया है कि सावन के महीने में पथिक के आने से आनन्द छा गया । क्षितिज में अंधकार है । चारों ओर बादल छाये हैं पर सब के मन में उल्लास है[5]।

१- कवि प्रिया केशव दास पद सं० ३१ पृ० सं० १३०

२- मतिराम रसराज पद सं० ८६ पृ० सं० २८१
कवित्त पावस के - स्फुट

३- संग्रह कालि दास ।

४- देव सुधा पद सं० ६४ पृ० सं० ३३

५- हजारा दूसरा भाग, श्रीपति पद सं० ४८ पृ० सं० २२८

रघुनाथ कवि ने चित्रित किया है बादल आकाश में बढ़ रहे हैं नायक नायिका दोनों महलों की छतरी छिप हुए पानी में बढ़े हुए भाव पूर्ण बातें कर रहे हैं ।[1]

बेनी प्रवीन ने वर्णन किया है कि पानी बोरों से बरस रहा है । तेज हवा चल रही है उसी में नायक नायिका का मिलन हो गया -

बेलि के धोखे गही इन मोहि
तमाल के धोखे इन्हें लपटानी ।[2]

द्विजदेव कवि ने नए मेघों का चित्र खींचा है । सब जगह नवीन अंकुर आ गए हैं । कदम्ब के नए गुच्छे लगे हैं । सखी नायक से कहती है शीघ्र हो आप कुंजों में चलिए । आप लोगों का प्रेम भी तो नया नया है ।[3] उत्सवों में झूले का उत्सव भारतवर्ष में बड़ा महत्वपूर्ण है । इन कवियों ने इसे युवक और युवतियों का क्रीड़ा-स्थल माना है । इस में प्रकृति को भी सुन्दर बताया गया है । पावस में हिंडोला और बसन्त में होली यही मुख्य उत्सव हैं । देव ने झूले का वर्णन किया है । सखी नायिका को झुलाती है । इधर नायक का मन उस के साथ हिंडोले पर झूल रहा है ।

आली झुलावति झूलनि सों
झुकि जाति कटि झननाति झकोरे ।
चंचल अंचल की चपला, चल
बेनी बड़ी सी बड़ी चितचोरे ।
या विधि झूलत देखि गयो तब ते
कवि देव सनेह के बोरे ।
झूलत है हियरा हरि को हिय
मौंह हिलोरे हरा के हिंडोरे ।[4]

- -
१- पावस कवित्त रत्नाकर रघुनाथ पद सं० ३८ पृ० ६
२- रीति शृंगार बेनी प्रवीन पृ० १८
३- माम मयंक पद सं० २१ पृ० ६४
४- देव सुधा पद सं० ६१ पृ० ६१

इस में ऐन्द्रिय उल्लास ही नहीं आभ्यन्तर प्रेम भी व्यक्त हुआ है । श्री श्रीपति कवि ने हिंडोले का वर्णन किया है नायिका का घाघरा हिंडोले पर आने जाने में फैल जाता है । उस की सुन्दर चुनरी हवा में उड़ रही है । उस की भौंहें तिरछी हैं । गाल पर बाल आए हुए हैं बड़ी बड़ी आंखों से देख रही है । कानों में जड़ाऊ कुंडल हैं, मुख पर आनन्द के कारण स्वेद के जल कण हैं, हिंडोले पर चढ़ी वह गुमान भरे गीत गा रही है ।[1]

दीन दयाल गिरि जी ने झूले का वर्णन किया है -

घुमी घुमी बूंद भरै नीर बारि बाहन तैं
कुहू कुहू कुनी परै कूक कोकिलानि की ।

ऐसे समय पर परमात्मा स्याम झूलते हैं । उनकी भृकुटी, कुंडल सुन्दर लग रहे हैं कहते हैं -

झूलनि सखी की सुधि भूलति न भूलति री
उझकनि झुकनि मरोरनि सुजान की ।[2]

होली वर्णन इन लोगों का प्रिय विषय रहा है । संस्कृत काल का मदनोत्सव हिन्दी साहित्य में होली का उत्सव है । इस में नायक नायिका के शारीरिक और मानसिक निकटता की स्थिति एक विशेष प्रकार के उल्लास का संचार करती है । प्रकृति की उपस्थिति उनके मनोनुकूल ही नहीं होती वरन् दोनों के भोग का उपकरण बन जाती है ।

रसखान कवि ने होली का वर्णन किया है । जब से फागुन लगा है तब से ब्रजमंडल में धूम मच गई है । सांझ सबेरे गुलाल का ही खेल हो रहा है ।[3]

१- रीति शृंगार श्रीपति पृ० सं० १४१

२- दीन दयाल ग्रंथावली पद सं० १२१ पृ० २३

३- रसखान पदावली पद सं० ५१ पृ० ५८

सेनापति ने बसन्त में प्रेमियों के उल्लसित जीवन का वर्णन किया है । भाँति भाँति के बाग बगीचों में फूल खिले हुए हैं । कोकिल गा रही है और गुंजार कर रहे हैं । चारों ओर पुष्पों की सुगन्धि आ रही है । बसन्त अपने साज बाज सहित पदार्पण कर रही है[1] । इस में इन्होंने बसन्त ऋतु को राजा रूपक में दिखाया है । देव ने बसन्त ऋतु के वर्णन में कहा है कोकिल पपीहा तथा मधुकर मतवाले होकर शोर मचा रहे हैं । कमल फूले हैं उन पर भौंरे मंडरा रहे हैं । शीतल मन्द सुगन्ध पवन बह रही है । चारों ओर आनन्द छाया हुआ है । घर बाहर सभी उमंग में हैं ।[2] पशु पक्षी तक बसन्त की अगवानी से प्रसन्न हैं । बसन्त ऋतु ने होली खेलना भी शुरू कर दिया -

माधुरी भौरनि फूलनि भौंरनि
बौरनि बौरनि बेलि बनी है ।
केसरि किंसु किंसुक करी
कचनार कनौरनि रंग रची है ।
फूले अनारनि चंपक डारनि
लै कचनारनि नेह तची है ।
कोकिल रागनि मूर परागनि
देखुरी बागन फाग मची है[3] ।

कविन्द की नायिका कुंज कुंज में फूलों को देखकर कोकिल का गान सुनकर सुगन्धित वायु को प्रसारित देखकर जाते हुये नायक को रोकती है । कहती है हम सौगन्ध खिलाती हैं हम अवगुन करेंगी पर तुम्हें जाने न देंगी[4] ।

पद्माकर का बसन्त बहार का कवित्त प्रसिद्ध ही है ।

कूलन में केलि में कछारनि में कुंजनि में[5]
क्यारिनि में कलित कलीन किलकन्त है ।

१- सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० १ पृ० सं० ५६
२-३- देवसुधा - पद सं. पृ.सं. १३।६१, ७०।६२   ४- हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास- कविन्द पृ. ४२५
५-१५- हजारा - पद्माकर, हस्तलिखित प्रति पद सं० पृ० सं० । १२।२८६

चारों ओर बसन्त की बहार छाई हुई है । गली गली में ब्रज के रहने वाले सभी उमंगित हैं । देश-देश में बसन्त की महिमा छा गई है । बन बाग तक उस से अछूते नहीं हैं[1] । बेनी प्रवीन ने चित्र खींचा है आम में बौर फूल गए भौंरे गुंजार कर रहे हैं । कोयल और कपोत कतार में बैठे आनन्दित हो रहे हैं, शीतल मन्द सुगन्धित वायु बह रही है ऐसे आनन्द के अवसर पर नायिका का मान कैसे रह सकता है[2] ।

ग्वाल कवि ने बसन्त के वर्णन में खेतों का सौंदर्य निहारा है केवल फूल ही नहीं सरसों के खेत भी लहलहा रहे हैं । चारों ओर बसन्ती साज फैला हुआ है

राग राग में बसन्त बाग बाग में बसन्त
फूल्यो साग में बसन्त क्या बहार है बसन्त की ।[3]

प्रताप साहि ने वर्णन किया है वृक्ष पल्लव और फूलों के वस्त्र पहने हुए हैं, भौंरों का अंजन लगाए हुए हैं, शरीर में पराग शोभायमान है, कुंद कली के समान हंसी है, गुलाब की सेज बिछी है । कोकिल गान सुनाती है । बसन्त ऋतु ने प्रियतम का रूप धारण कर लिया है[4] ।

घनानन्द ने बसन्त को राजा माना है । वृन्दावन देश में उस का राज्य है । चारों ओर सुद्धि फैली हुई है । सुगन्धित वायु बह रही है कोकिल का समाज लगा हुआ है । आनन्द छाया हुआ है ।[5] कुछ कवियों ने होली का

१- पद्माकर पंचामृत पद सं० १०८ पृ० सं० १५७
२- बेनी प्रवीन- षट्-ऋतु काव्य संग्रह - पद सं. पृ. सं. २१|८५
३- कविता कौमुदी भाग १ - ग्वाल कवि पद सं. पृ. ७. ६| ४९३
४- रीति शृंगार प्रताप साहि पृ० २२५
५-

वर्णन किया है । कालिदास ने एक चित्र खींचा है मधुबनियाँ और गोपाल प्रसन्न होकर होली खेल रहे हैं । उनकी नथ के मोती, कपोल तथा भाल की सुन्दर छवि झलकती है । बरौनी, पलकें तथा भौं और बालों पर गुलाल भरा है ।[1]

रघुनाथ ने वर्णन किया है रसिक जन आनन्दित होकर होली खेल रहे हैं । केसर और गुलाल से सभी भरे हुए हैं । शाम के समय उन की सुन्दरता देखने योग्य है । इस में कवि ने होली के बाद का सौंदर्य वर्णित किया है ।[2]

पद्माकर ने होली खेलते समय का चित्र खींचा है जिस में नायिका नायक का संयोग होने के कारण चित्र सजीव हो जाता है । वैसे इन के वर्णन में वही बातें हैं जो परम्परा से चली आ रही हैं पर नायक नायिका का एक दूसरे के ऊपर गिरना होली के अवसर पर परिहास का भी अच्छा चित्र खींचता है ।

अजब ऐसो भयो ब्रज में
सबै रंग तरंग उमंगनि सींचि ।
त्यों पद्माकर छज्जनि छातनि
छ्वै छिति छाजति केसरि कीचि ।
दै पिचकी भजि भीजि तहाँ
परे पीछे गोपाल गुलाल उलीचि ।
एकहि संग इहाँ रपटे सखि
ये भये ऊपर हौं भई नीचे ।[3]

गुमान कवि ने वर्णन किया है -

काम गुरु भयो काम गुरु भयो
देखिये बाग बसन्त की पांचै ।[4]

१- षट्ऋतु हजारा हफीजुल्ला खाँ काली दास पृ० [illegible] ४१ पद सं. १८२—

२- रीति शृंगार रघुनाथ पृ० १८३

३- पद्माकर पंचामृत पद सं० ८९ पृ० सं० १०३

४- षट्ऋतु वर्णन गुमान कवि पद सं० ८ पृ. सं. ३

ठाकुर कवि ने खेलते समय का चित्र खींचा है । होली खेली जा रही है, गुलाल चल रहा है । नायक नायिका एक दूसरे की ओर नजर लगाए हुए हैं । आड़ में होकर पिचकारी से चोटें की जा रही हैं । नायिका नैनों की कोरों से प्रहार करती है[1]। पजनेस कवि ने भी इसी तरह का वर्णन किया है । होली की भीड़ चारों ओर से उमड़ रही है गुलाल खेला जा रहा है उसी में रस केलि भी होने लगती है । नायक नायिका आनन्दित हैं[2]। द्विजदेव ने कहा है कि बसन्त आगमन से भौंरे गुंजार करते हैं । कोयल बोलने लगी, गुलाब की कलियां खिलने लगीं, नई नई प्रीति की बातें होने लगीं, स्नेह बढ़ने लगा[3]।

दीन दयाल कवि ने होली का एक चित्र खींचा है ।

होरी होरी करत अबीर भरि लीन्हें
चोरी चोरी फिरै गुपाल बाल समुदाई है ।

श्याम और किशोरी मिल कर होली खेल रहे हैं ।[4]

<u>वियोग शृंगार</u> -

शृंगार वर्णन का प्रमुख अंग विरह वर्णन है । संयोग के अनन्तर वियोग होना प्राकृतिक नियम है । इसी परम्परा का इन कवियों ने पालन किया है । प्रेमी के लिए प्रिय से विछोह कितना दुखदाई होता है इस का चित्रण इन कवियों ने बहुत चित्त होकर किया है । संस्कृत के आचार्यों ने तो मान वर्णन को वियोग के अन्तर्गत लिया है पर जैसा कि हम पहले कह चुके हैं मान वर्णन संयोग के अन्तर्गत माना जा सकता है । वियोग वर्णन के अन्तर्गत प्रवास वर्णन को लिया गया है पर रसखान के वियोग वर्णन में प्रेम की एकनिष्ठता होने के कारण अन्य कवियों से भिन्नता है । इन्होंने भावों का विश्लेषण किया है । इन का वियोग शारीरिक न होकर मानसिक है । इन्होंने लिखा है -

---

1- ठाकुर - षट्-ऋतु काव्य संग्रह पद सं. प. सं. ३०/३८
2- पजनेश - - - - ४१/४२
3- द्विजदेव मानमयंक - - - १५०/८७
4- दीन दयाल गिरि ग्रंथावली - - - ११८/२२

उनही के सनेहन सानी रहैं,
उनही के जु नेह दिवानी रहैं ।
उनही की सुनै न औ बैन त्यौं,
सैन सों चैन अनेकन ठानी रहैं ।
उनही संग डोलनि मैं रसखानि,
सबै सुख सिंधु अघानी रहैं ।
उनही बिन ज्यौं जलहीन ह्वै
मीन सी, आँखि मेरी अँसुवानी रहैं ।[1]

बाँसुरी की आवाज सुनकर व्याकुल हो जाती है । कहती है इस ध्वनि को सुनकर कोई नहीं जी सकता ।[2] कहते हैं वियोगिनी उन की व्यथाएं कुछ कह नहीं पाती । रात में जिस तरह से प्रियतम ने प्यार किया था उस की व्यथा झकझोरे दे रही है । वियोग की व्यथा बँसुरी में देकर चले गए ।[3]

अन्य कवियों में गम्भीर जीवन की दृष्टि नहीं है । प्रेम में एकनिष्ठता नहीं है । इस की जगह विलास और रसिकता ने ले ली है । इसी से विरह वर्णन में गम्भीरता नहीं है । इन कवियों ने इस विषय की आत्मा तक पहुँचने का प्रयत्न नहीं किया । अधिकांश काव्य उहात्मक भावों से भरा है कहीं कहीं ऊँची कल्पना का आश्रय लेकर प्रेम की अनन्यता और तल्लीनता भी व्यक्त की गई है । इस प्रकार की रचनाओं में प्रेम के मनोवैज्ञानिक पक्ष का भी परिचय मिलता है । प्रहुन कवि की नायिका कहती है कल ही तो कृष्ण गए हैं पर ऐसा लगता है कि मानों युगों बीत गए हैं । चारों ओर विरहाग्नि लगी हुई है काले बादलों का घुमड़ना

१- रसखान सुधा पद सं० १०६ पृ० ८०

२- " " ८१ पृ० ८१

३- । रसखान पदावली, पद सं० पृ. सं. ७२।२५

विरहणी के दृगों से आंसू की धार जल बहता है ।[1] गंग कवि की नायिका व्यथित है जिस दिन से कृष्ण जी गए चारों ओर दावाग्नि फैल गई है । सब व्रजवासियों की शोभा और श्रृंगार का अन्त हो गया । प्रसन्नतादायक वस्तुएँ डरावनी हो गई हैं । अब फूलों की सेज में कालिन्दी के तट पर वस्तुओं पर जगह जगह विष ही विष व्याप्त हो गया है ।[2]

केशव की नायिका को प्रीतम के बिना फूल शूल की तरह माला सर्प के समान लगती है । चंवर डुलाने तथा पंखा चलाने को मना करती है । चन्दन से दावाग्नि बढ़ती है । कुंकुम आग समान प्रतीत होता है ।[3]

सेनापति की स्नेहभरी नायिका तप रही है । आधी घड़ी हजार वर्ष के समान बीतती है । वह अंगारे की तरह जल रही है । गुलाब डालने से लपटें और उठने लगती हैं । उस के गले में कमल के फूलों की माला हृदय शीतल हो जाने के लिए पहनाई गई तो कमल मृणाल के समान सूख कर पापड़ हो गया ।[4] सेनापति की उक्तियाँ भी वेदना नहीं प्रगट करतीं । विरहाग्नि की ज्वाला का सुन्दर कवि ने भी वर्णन किया है । नायिका को चम्पा, चन्दन, चांदनी किसी से भी चैन नहीं पड़ती । कमल और कपूर से आग बढ़ जाती है । उस की विरहाग्नि के कारण जो कुछ भी उस के सामने रख दो वही आग हो जाती है ।[5] मतिराम की नायिका को पति के विरह में चांदनी, गुलाब जल, कपूर, सुगन्धित शीतल वायु सभी दाहक बने हुए हैं । लाज के कारण वह कुछ नहीं कहती । केवल इतना ही कहती है कि सुगन्धित वायु तीर के समान लगती है ।[6] इस में कवि के कहने का भाव यह है

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि प्रमुख परिशिष्ट भाग पद सं० ५१ पृ. सं. २४२
२- " " गंग " " ४० पृ. सं. ६२८
३- रसिक प्रिया पद सं० ४ पृ० सं० ४०
४- सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० ५२ पृ० सं० १०
५- रीति श्रृंगार सुन्दर पृ० ७०
६- मतिराम रसराज पद सं० ११४ पृ० सं० २९५

कि वास्तव में कष्टदायक यह भी वस्तु नहीं है पर विरह में इन चीजों से काम भावना उत्पन्न होती है । प्रियतम की स्मृति से दुख बढ़ जाता है इसी से विरहिणी को शीतल उपचार कष्टदायक प्रतीत होते हैं । कवि ने यहाँ विरहिणी के हृदय की टीसन का वर्णन किया है —

दुरयो समीर सीरो   तीर सो लगत है ।[1]

देव कवि की विरहिणी को सारा संसार अग्निमय प्रतीत होता है । उन के विचार से चाँदनी नहीं वरन् कामदेव की आग तीनों लोकों में फैली है । सागर से बड़वाग्नि चारों ओर फैल रही है। उस में कमल भी जल जल रहे हैं । तारे चिनगारी के समान चारों ओर चमक रहे हैं सारा संसार भभूके सा जल रहा है ।[2] देव के विरह की गंभीरता ताप पर ही समाप्त नहीं होती है । उन्हों ने मरण तक का वर्णन बड़े कौशल के साथ चमत्कार पूर्ण होते हुए भी कारुण्य की रक्षा करते हुए किया है ।

साँसनि ही सों समीर गयो, अरु
आँसुन ही सब नीर गयो ढरि ।
तेजु गयो गुन लै अपनो, अरु
भूमि गई तन की तनुता करि ।
'देव' जियै मिलिबेही की आस,
कि आसहु पास अकास रह्यो भरि ।
जा दिन ते मुख फेरि, हरै हँसि
हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि ।[3]

१- [illegible]
१- देव सुधा छंद सं० २०६ पृ० सं० ११२
२-   "   २०३   "   ११३

केवल प्रियतम की आशा में प्राणपखेरू रह गए हैं । कृष्ण की विरहिणी भी अग्निमय है । वह विरह में संतप्त है । हवा उस के पास से होकर गाँव वालों के पास जाती है । वे सब समझते हैं कि गर्मी आ गई है लू चल रही है । लोग उस के पास से भाग जाते हैं । उस के ऊपर सखियों ने गुलाब जल छिड़कना चाहा । उस के ऊपर गुलाब जल डालते ही जल ही नहीं सूख गया वरन् शीशी भी पिघल गई ।

बेनी प्रवीण ने एक ऐसी नायिका का चित्र खींचा है जिस की मानसिक स्थिति के कारण हाथ से छुई वस्तु का परिवर्तन हो जाता है । एक नायिका सखियों के साथ जाकर पानी लाई । उसके विरह में आँसू टपक रहे हैं हृदय जल रहा है । उस को अपने शरीर की सुध बुध नहीं पर उस के मन का हाल कोई नहीं जानता । उस के हाथ का लाया हुआ पानी उबलता जल रहा है सास उसे गाली देती है और ननन्द उसे कोस रही है ।[2]

पद्माकर ने न तो नायिका के विरहाग्नि का वर्णन किया है और न शीतल उपचारों का । उन्होंने विरहिणी के आहों का जग पर क्या प्रभाव पड़ा है इस का चित्र खींचा है । हे व्रजचन्द्र तुम व्रज चल कर देखो । वहाँ बसन्त ऋतु में भी लू चलने लगी है । पलाश के फूल अग्नि के समान हो गए हैं बिचारी विरहिणियों के हृदय से हूक उठती है उसी से कोयल कूकने लगती है ।[3]

प्रताप साहि ने विरहिणी का चित्र खींचा है वह दिन रात रोया करती है । सोचती रहती है, खीज रहती है । सहेलियों का साथ छूट गया । किसी का दुख दूसरा कैसे जान सकता है । केवल अपने में जलना ही रह गया है । अपने प्रियतम का दुख किस से कहे ।[4]

१- शृंगार निर्णय पृ० सं० १०० - दास ग्रं० पृ.सं. ३२४

२- नवरस तरंग पद सं० १० पृ० सं० १६

३- पंचामृत पद्माकर - जगद्विनोद पद सं. पृ. सं. ३२७/१५८

४- रीति शृंगार प्रताप साहि पृ० सं० १२२

जिनको निरखे दिन बारि गए

छिन मैं मकनूर हुवै धूर समाये ।[1]

<u>स्मृति</u> - विप्रलम्भ शृंगार के विवेचन में स्मृति एक मुख्य भेद है । ब्रह्म कवि की विरहिणी कहती है जब से नन्द लाल को देखा है उन्होंने हमारा मन हर लिया । हमारे दोनों नेत्र तड़प रहे हैं । उनकी बड़ी बड़ी आँखों की स्मृति हमें बड़ा दुख दे रही है । कृष्ण की चितवन स्मृति में निरन्तर रहती है ।[2] गंग की विरहिणी भी प्रियतम की याद में लीन है ।

कालिन्दी के कूल कूल कुंजन की छाया माँहि
कोकिल की कूकन करेजा फारियतु है ।
दोहिनी को नाम सुनै सूनो सुख होत दई
बाँसुरी की सुधि आय आँसू डारियतु है ।
कहै कवि गंग तुम दीनबन्धु दीना नाथ
हैं हो गोपीनाथ अबकौं बिसारियतु है ।
गोधन की छाया में छिपाय राखै छाती तर
मेह ते बचायें अब मेह मारियतु है ।[3]

उस समय की प्रीति अब दुख को और भी बढ़ा डालती है । प्रियतम की स्मृति वास्तव में बड़ी दुखदायिनी होती है । मतिराम की नायिका भी प्रियतम के नेत्रों की स्मृति में व्याकुल है । प्रियतम के नेत्र आलस्य सहित लज्जायुक्त हँसी तथा गर्व सहित मृगों के नेत्रों से भी सुन्दर हैं । वरुनी पनी, तीक्ष्ण धार वाले नेत्र अभी भी हृदय में पीड़ा पहुँचाते हैं । वे कटाक्ष रूपी बाण न तो निकाले ही निकलते हैं और न भूले ही जा पाते हैं ।[4] देव की नायिका को रात-दिन आँखों

१- दीनदयाल गिरि ग्रंथावली पद सं० ३२ पृ० सं० १४६
२- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग पद सं० ५० पृ० सं० ३५२
३- " " गंग " ४७ " ३५५
४- मतिराम रसराज पद सं. पृ. सं. ४०७/३५२

के सामने प्रियतम नाचते से दिखाई देते हैं । ये बातें हर समय विरहाग्नि को बढ़ाती रहती हैं । बाँसुरी का स्वर कानों में नाचता सा रहता है । रात दिन प्रियतम ही दिखाई देते हैं ।[1] दास ने एक सुन्दर चित्र विरहिणी के मनोगत भावों का किया है :-

नैनन को तरसैये कहाँ लौं,
कहाँ लौं हियेहू बिरहागी में तैइये ।
एक घरी न कहूँ कल पैये
कहाँ लगि प्रानन को कलपैये ।
आवै यही अब जी में बिचार
सखी चलि सौतिहु के गृह जैये ।
मान घटे ते कहा घटिहै
जु पै प्रान पियारे को देखन पैये ।[2]

अब उस में तरसने और विरहाग्नि में झुलसने की शक्ति नहीं रही । ग्वाल कवि की विरहिणी यही सोचती है कि कृष्ण जी मथुरा गए । अब उन में बड़ा परिवर्तन हो गया होगा पर एक ही बात नहीं सोच पाती कि -

सुधि केलनि की सुख मेलनि की वह खेलनि की कहं भूल गई ।

उस को इस बात का विश्वास है कि यह बात कभी नहीं भूल सकती ।[3]

प्रताप साहि ने एक चित्र खींचा है । बाँसुरी की आवाज़ सुनकर नायिका प्रियतम को न पाकर उसकी याद में बेहाल होकर घूम रही है ।

१- देव सुधा पद सं० २०४ पृ० सं० ११३

२- कवित्त कौमुदी भाग १ - दास - पद सं. ५८ पृ. सं. ७/४६०

३- हजारा ग्वाल कवि पद सं० १२६ पृ० सं० ३३७

वह बिना अपने शरीर को संभाले हुए आँसू बहाती हुई 'हरी-हरी' पुकारती हुई लताओं में ढूंढ़ रही है ।[1] आलम कवि ने एक चित्र खींचा है जिस थल विरहिणी ने अनेकों विहार किए हैं वहां बैठी हुई वह कंकड़ चुनती रहती है । उन की बातें ही याद करती रहती है । जिस जगह पर केलि की है वहीं पर फिर चुनती है जो सबैन सामने रहा करते थे उन्हीं की कहानी बराबर सुनती है ।[2]

दीनदयाल गिरि ने कहा है कि कृष्ण जी की कलगी हृदय को चंचल करती रहती है ।

लखि मोहन मुरति माललि मैं
छवि सो मति मैं अति सालति है ।[3]

इन कवियों ने विरह में नायिकाओं की विह्वलता के चित्र खींचे हैं । केशवदास जी का एक चित्र है विरहिणी भौंरों के समान वनवीथिकाओं में भ्रमण करती रहती है । चातकी के समान पिय पिय की रट लगाए रहती है । चन्द्रमा को देखकर चुप हो जाती है ।

हिरिणी ज्यों हेरत न केसरि के काननहि को
केका सुनि व्याली ज्यों बिलान हीं चहति है ।
'केशव' कुंवर कान्ह विरह तिहारे ऐसी,
सुरति न राधिका की मुरति गहति है ।[4]

मतिराम की नायिका प्रियतम के विरह में नींद भूख प्यास सभी भूली है । वह क्षीण चन्द्रमा तथा पुष मल्ली के समान हैर गई है ।कामाग्नि

१- हजारा प्रताप साहि पद सं० १३४ पृ० सं० ३३९
२- रीति-श्रृंगार- आलम के कवित्त पृष्ठ सं० ८७
३- दीनदयाल गिरि ग्रंथावली पद सं० ६५ पृ० सं० १२
४- रसिक प्रिया केशव दास पद सं० १० पृ० सं० ६८

घनानन्द कवि ने नायिका का चित्र खींचा है । वह सबेरे से शाम तक मग की ओर देखती है और शाम से सबेरे तक तारे गिना करती है । यदि कहीं भी प्रेमी की झलक मिल जाती है तो आंसुओं की धारा बहने लगती है ।

मोहन-सोहन-जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ।[1]

बोधा कवि ने मानसिक कल्पनाओं को चित्रित किया है । नायिका सोचती रहती है कभी तो मिलेंगे ही । मिलने की वह अपने मन में गुनती रहती है न तो वह विरह व्यथा को सह पाती है और न कह पाती है । मन ही मन में पीर पियै करै वाली दशा है ।[2] ठाकुर की नायिका प्रियतम के दर्शन के बाद से विरह में अचेत पड़ी है ।

'हेम की लता सी चपला सी चारु चाँदनी सी
मदन सताई पै न पै बनाई भुरई
ठाकुर कहत भूमि विकल बिहाल पड़ी परी ---- ।[3]

दीनदयाल की विरहिणी कृष्ण जी का वेश बनाकर उन्माद में कुंजों में जाकर राधा राधा नाम रटती है ।[4]

द्विजदेव की नायिका विरह में व्याकुल होकर कहती है चित्त जिन से अवलम्बन से विछोह हुआ है हृदय में ऐसी कसक पैदा हुई है कि उसे चैन नहीं

मन ही मनमोहन संग मनै गौ
तन-लाज मनोज के मेल परौ ।[5]

१- घनानन्द मूल ग्रंथ पद सं० ६ पृ० सं० ४

२- रीति शृंगार बोधा पृ.सं. १८३

३- रीति शृंगार ठाकुर पृ० सं० २०१

४- दीनदयाल गिरि ग्रंथावली पद सं० ११० पृ० सं० ६२

५- भाव मयंक पद सं० ६८ पृ० सं० ७६ - द्विजदेव

रीति काल की नायिका के विरह का अतिशय रूप में वर्णन परम्परा से चला आ रहा है । विरह की विकलता में ताप मान बढ़ जाता है । उस में कितने ही उपचार किए जाँय सब व्यर्थ होते हैं । सखियाँ विस्मित रहती हैं पर कुछ कर नहीं सकतीं । इस भाव को किसी कवि ने भावात्मक और किसी ने ऊहात्मक वर्णन किया है । ब्रह्म कवि ने विरहिणी को सुख वस्तुएँ दुखदायी हो गई हैं ऐसा वर्णन किया है । कहती है कि कृष्ण के बिना सारा संसार आग में भून रहा है । चन्द्रकिरण जैसे सिर पर चढ़ी सी है

जीवन ज्यों जुगुन्यों मनि को मनिमाल ज्यों यह रैन बढ़ी है ।[1]

इस में विरहिणी का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्रण किया गया है । सुख के दिन मणि के हम के समान हो जाते हैं । कवि ने विरहिणी की ज्वाला नहीं वरन् विरहिणी की भावना में सारा संसार ज्वालामय हो गया है ऐसा वर्णन किया है । गंग कवि ने ऊहात्मक वर्णन किया है । नायिका ने प्रियतम के जाने का जैसे ही सुना वैसे ही वियोग की अग्नि भड़क उठी । शीतल मन्द सुगन्ध वायु के स्पर्श से उस की व्यथा और भी बढ़ गई । उस वायु में इतना परिवर्तन हो गया कि जब वह मानसरोवर पहुँची तो मानसरोवर की गति भी बदल गई । मानसरोवर के कमल जल गए, सिवार जल गई, कीचड़ तक सूख गया और उस में दरार हो गई ।[2] इस में कवि ने नायिका के तापमान का चित्रण किया है । केशवदास जी की विरहिणी अश्रुपूर्ण नेत्रों से चकित होकर इधर उधर देख रही है । मन में कुछ सोचती है और उस से काँपने लगती है । उस का शरीर जल रहा है । कभी रोती है कभी गाने लगती है कुछ बात बात सा बकती है । कहती कुछ है निकलता मुंह से कुछ है ।[3] विरह में देव की नायिका हंसती ही रहती है

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग ब्रह्म पद सं० १०० पृ.सं.३५५

२- महाकवि गंग के कवित्त पद सं० ९९ पृ० सं० ७

३- केशवदास - रसिकप्रिया - पद सं. पृ.सं. ६४।२३

रीझ सी रीझ सी रूठ सी रिसानी सी ।
छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी सी
छिन जकी सी टकी सी लागी थकी थिरकानी सी ।
बींधी सी बंधी सी विष बूड़ी सी विमोहित सी
बैठी बैठी इधर उधर देखती और बकती रहती है ।[1]

पद्माकर की नायिका विरह में जलती है भुनती है सिसकती है किसी से बोलती नहीं । आंसू की धारा निरन्तर आंखो से बह रही है । अपने प्राणों से समझा कर कहती है कि अवधि के दिन तक तो प्रतीक्षा करो । जब प्रियतम जाने लगे थे तब गए नहीं अब किधर जाना चाहते हो ।[2] इन सब कवियों ने विरहिणी के उद्वेग का भावात्मक चित्रण किया है । आलम कवि ने ऊहात्मक चित्रण करते हुए कहा है कि नायिका का कुछ पता ही नहीं लगता । वह कभी गरम हो जाती है कभी ठंडी कभी चुप हो जाती है ।न कुछ कहती है न सुनती । कभी तो आग की तरह लपटें उठने लगती हैं कभी ओले की तरह गलने लगती है । उस को कोई सुध बुध नहीं रही । आंसुओं से अपने को भिगो रही है । सोने का सा शरीर नमक की तरह गला जा रहा है ।[3] घनानन्द की वियोगिनी आन्तरिक पीड़ा से आहत है। उसका अन्दर ही अन्दर मन घुटता जा रहा है । इसी का वर्णन इस चित्र में किया है । नायिका मौन धारण किए कभी हंसती है कभी रोती है । प्राण और नेत्र विरह में सब से ज्यादा दुर्दशाग्रस्त हैं ।मार्मिक पीड़ा का आघात प्राणों पर होता है ।

१- देव काव्य, रत्नावली पद सं० १०२ पृ० सं० ३५
२- पद्माकर पंचामृत · पद सं. पृ. सं. १५८/१९२
३- रीति श्रृंगार आलम और देव पृ० सं० ८६
४- घनानंद - मूलग्रंथ पद सं. पृ. सं. २०/९५

अन्तर उदेग-दाह, आँखिन प्रवाह-आँसू
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है ।
सोइबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोइबो हू,
खोइ खोइ आप ही मैं चेटक-लहनि है ।
जान प्यारे प्राननि बसत पै अनंदघन
बिरह-बिषम-दसा मूक लौं कहनि है ।
जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यौ आय
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है ।[1]

<u>स्वप्न दर्शन</u> -

रीति कालीन कवियों ने स्वप्न दर्शन का वर्णन परिपाटी के अनुसार किया है । यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि प्रियतम की स्मृति करते करते स्वप्न में भी वही रूप दिखाई देता है । देव कवि ने स्वप्न का वर्णन किया है । स्वप्न में देखा कि कृष्ण जी गाय रहे हैं । मुस्करा कर नाम बताकर उन्होंने नायिका के कपड़े पकड़ लिये । इतनी देर में गाय बोल उठी दूध दुहने का समय हो गया । जब आँख खुली तो देखा न कहीं कदम्ब है न कुंज है न कालिन्दी का तट है ।[2] स्वप्न के बाद विरहिणी की दशा और भी बुरी हो जाती है । विरह दुगना हो जाता है । दास ने विरहिणी के स्वप्न का चित्र खींचा है स्वप्न में मोहन मुस्कराते पास आते आय । नायिका पलंग पर बैठी थी मिलने को उठी । इसी बीच में दासी ने दरवाजा खटखटा कर जगा दिया । हरि से मिलना-जुलना हो गया वह ठगी सी रह गयी । उस के हाथ से हीरा गिर गया ।[3] कितना सुन्दर स्वाभाविक चित्र है सारी आशाओं पर पानी फिर गया । ठाकुर कवि ने भी एक ऐसा ही

१- घनानन्द कवित्त पद सं० ३९ पृ० सं० २२

२- देव सुधा पद सं० १७० पृ० सं० १५१

३- शृंगार निर्णय पृ० सं० ६६ पद्यं. ६६२८

चित्र खींचा है -

> सापने हौं बुलाई गई हरि अंक
> भरी सुख कंठनि मेली ।
> हौं चकुची कोउ सुन्दरी देखत
> है जिन बांह सो बांह सहेली ।
> ठाकुर भोर भये गये नींद के
> देखहुं सी घर मांझ अकेली ।
> आंख खुली तब पास न सांवरो
> बाग न बावरो कुंज न बेली ।[1]

द्विजदेव की विरहिणी ने स्वप्न में प्रियतम को देखा कि कृष्ण जी मिलने आए हैं । वैसे ही वह मिलने के लिए उठी पपीहा बोलने लगा । आज ब्रजराज का मिलना स्वप्न में संपत्ति के समान हो गया ।[2] एक अज्ञात कवि का भी कवित्त इसी भाव का मिलता है । हे सखी जिस दिन से कृष्ण जी गए हैं तब से नींद ही नहीं आती। एक दिन सोई तो स्वप्न में प्रियतम से रात भर लिपट कर सोई । आँखें खोलकर जब चारों ओर देखा तो प्रियतम कहीं भी नहीं दिखाई दिए । हे सखी यह दुख किस से कहें । पहले तो वह मुस्करा कर हंसी कि प्रियतम मिल गए लेकिन याद कर के कि वह स्वप्न था वह रोने लगी ।

<u>सन्देश</u> -

विरह के वर्णन में व्यक्ति द्वारा एवं पशु द्वारा संदेश की परम्परा संस्कृत काल से चली आ रही है । इन संदेशों में एक विशेष प्रकार की मार्मिकता रहती है जिस से विरहिणी का शारीरिक एवं मानसिक स्थिति का

१- रीति शृंगार ठाकुर पृ० सं० १००

२- भाव [illegible] पृ० सं० ७९ पद नं. ८२ - द्विजदेव

३ - नं. ३१० - शृंगार के कवित्त - अज्ञात कवि - चौहरे गजाधर प्रसाद, इटावा

वर्णन होता है । सेनापति की नायिका ऊधौ के द्वारा सन्देश भेजती है । वह कहती है प्रेम मैं तथा कुब्जा दोनों ने ही प्यार किया, तन, मन न्योछावर किया । उधर कुब्जा को अब चैन मिली है और हम यहाँ कलप रही हैं । हम दोनों एक समान हैं । उन को सुख है हम को दुख ।[1] मतिराम की नायिका ऊधो से कहती है प्रतिदिन हम बाँसुरी सुनते रहते हैं । कालिन्दी के तट पर वन कुंजों में सब जगह उन की रूप छवि देखा करते हैं । ऊधो तुम कहते हो कि हम ऐसा करें पर जिसको वियोग हो वह योग करे हम तो बराबर रूप निहारा ही करते हैं ।[2] देव कवि की विरहिणी के पास कृष्ण जी का सन्देशा लेकर ऊधो आए हैं । उसी का चित्र कवि ने खींचा है । यह सुनकर कि ऊधो आए हैं गोपियों को धैर्य नहीं होता वे भाग पड़ी हैं उनकी बुद्धि चकरी के समान भ्रम रही है । गुरु लोगों का उन को कोई डर नहीं है पर जब विरहिणी ने योग की बात ऊधो से सुनी तब उन का शरीर जलने लगा । गोपियों की हालत बुरी हो गई -

> भारी भये भूषन सँभारे ना परत अंग
> आगे को धरत पग पाछे को परत है ।[3]

बेनी प्रवीन की नायिका ऊधो को संदेश भेजती है आप कृष्ण जी से न तो योग की बात ही कहियेगा न वियोग की, न हित की न अहित की । केवल इतना कह दीजियेगा कि सुहावना सावन आ गया है । सावन के आने से उन को केलि की स्मृति आएगी ।[4]

१- सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० ६६ पृ० सं० ९१

२- मतिराम ललित ललाम पद सं० ३०५ पृ० सं० ४३६

३- देव सुधा पद सं० २५५ पृ० सं० १३६

४- नवरस कविता संग्रह-बेनी प्रवीन पृ० सं० ~~[illegible]~~ पद सं. २ - बा. हरिश्चंद्र द्वारा संगृहीत-पत्रिका 'रंग विलास' प्रेस बांकीपुर १८-८६

ग्वाल कवि की नायिका ऊधो से कहती है कहने को तो हमें कृष्ण जी का वियोगिनी पर वास्तव में कृष्ण जी अलग रूप से दर्शन करते हुए हैं। यहाँ घर घर में मनोहर मूर्ति बसी हुई है। मन प्राण आदि अंग तथा रोम रोम में रसिक बिहारी बसे हुए हैं अतः हे ऊधव हम को कुछ समझाना व्यर्थ है।[1]

पद्माकर की विरहिणी ऊधो द्वारा यह सन्देश भेज रही है कि -

> पात बिन कीन्हें ऐसी भाँति गण बेलिन के
> परत न चीन्हे जे ये लरजत लुंज हैं ।
> कहै पद्माकर बिसासी या बसंत कैसी
> ऐसे उतपात गात गोपिन के भुंज हैं ।
> ऊधो यह माधो सों संदेसो कहि दीजो
> भलो हरि सों हमारे ह्याँ न फूले बन कुंज हैं ।
> किंशुक गुलाब कचनार औ अनारन की
> डारन पै डोलत अंगारन के पुंज हैं ।[2]

भूषण की विरहिणी परम्परा के अनुसार पथिक से सन्देश भेजती है कि आम में बौर आ गए हैं, केतकी फूल गई कोकिला की कूक सुनाई पड़ने लगी। यह सन्देश कह देना बसन्त ऋतु आ गई है।[3]

बोधा की विरहिणी ऊधो से कहती है तुम योग की क्या बातें करते हो। हम तो अब संसार ही त्याग चुकी हैं। हमारा चित्त तो कृष्ण जी में लग गया अतः हमें मृत्यु का भी कष्ट नहीं। हम योग वियोग कुछ नहीं

१- रीति शृंगार ग्वाल कवि पृ० सं० २५८

२- पद्माकर पद्मृत काव्य संग्रह पद सं० १८ पृ० सं० ११

३- भूषण ग्रंथावली पद सं० ४८ पृ० सं० ११४

जानती ।[1] दीनदयाल गिरि की नायिका कहती है कि -

स्याम की संजोगी हम गोरख की जोगी
ऊधो कैसे बनि जोगी जोग गाँठ मन लावहीं ।[2]

पत्र द्वारा सन्देश

सेनापति की विरहिणी का कष्ट पत्र पाकर थोड़ा कम हो गया है । उसी का वर्णन है, 'ज्यों ज्यों सखियाँ शीतल उपचार करती हैं त्यों त्यों विरह की पीड़ा बढ़ती जाती है । कभी ध्यान करती है कभी गुनती है बिचारती है कभी सुमिरन करती है । बिना मिले कष्ट नहीं मिट सकता । कहीं ओस कण से प्यास बुझाती है पर मिलने के समय पत्र पाने से मन में कुछ चैन हो जाता है '।[3] पद्माकर ने सन्देश का एक चित्र खींचा है बसन्त शुरू होते ही विरहिणी ने पत्र लिखा कि यहाँ विरहानल में तन जल रहा है ।

ऊधौ जब की उसासन की पूरी, परगास ही
सौ नियट उदास पौन हूँ तें पतिआवनी ।
नैनन को अंम्बु सों अनंग चिनकारिन तें
गातन को रंग पीरे पातन तें जानवी ।[4]

द्विजदेव ने विरहिणी का चित्र खींचा है उस में नायिका के मनोभावों की रेखाएं स्पष्ट हैं

१- रीति शृंगार बोधा इश्कनामा पृ० सं० १९६

२- दीनदयाल गिरि ग्रंथावली पद सं० २९२ पृ० सं० ४८

३- सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० ३९ पृ० सं० ४३-४४

४- पद्माकर पंचामृत - जगद्विनोद पद सं० पृ. सं. १५० / ११४

कृष्ण के वियोग में राधा की विरह अग्नि के कारण आकाश का रंग लाल हो गया है ।[1] नायिका के तन तेज से चन्द्रमा का रंग भी लाल हो गया है प्रकृति वर्णन में इन की अत्युक्ति पूर्ण कल्पना मिलती है ।

केशवदास ने वर्षा में विरहिणी की व्याकुलता का वर्णन किया है ब्रज में पानी बरस रहा है , ब्रज नाली पूर है अतः दुख कैसे सहा जावे । सावन में घनश्याम के बिना रहना कठिन है ।[2] इन में आकारों में प्रकृति का वर्णन हुआ है । सेनापति प्रकृति चित्रण के कवि कहे जाते हैं । उनके वर्णन अधिकांश में उद्दीपन रूप में ही हैं । वर्षा ऋतु काम को उद्दीप्त करने वाली होती है, इसी से वर्षा में उल्लास की वस्तुएं दुखद प्रतीत होती हैं । विरहिणी कह रही है पावस की ऋतु आ गई है पर प्रियतम नहीं आए इस से हृदय जल रहा है । उधर बादल गरज रहे हैं इधर हमारा तन मन व्याकुल है नैनों से अश्रुधारा बह रही है । चातक और पपीहा बोल कर हमारे अंगों को भंग कर रहे हैं । कोकिल की ध्वनि विरह को बढ़ाती है पर केका के बोल सुनकर थोड़ा धैर्य होता है क्योंकि वह समझती है ।[3] सुन्दर की विरहिणी को प्रियतम के जाने से भवन भयानक लगता है । इन्द्र धनुष आरे के समान तथा वर्षा अग्नि के समान लगती है झड़ी छुरा तलवार तथा बूंदें बाण लगती हैं । चातक तथा चकोर के बोल हृदय में चुभते हैं ।[4] चिन्तामणि त्रिपाठी की नायिका व्याकुल है । वह कहती है शरद के चन्द्रमा तथा शिशिर से वह आधी बच पाई । बसन्त की वायु ने वधिक के समान उसे मारा गर्मी के कष्ट से भी बच गई पर इस पापी वर्षा ने आकर बिल्कुल व्याकुल कर दिया । सब तरह से बच गई पर अब इस

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग प्रथम पद सं० ५५ पृ० सं० ३५३

२- रसिक प्रिया केशवदास पृ० सं० ६४ · ६५ पद नं. ४

३- सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० २५ पृ० सं० ६२

४- रीति श्रृंगार सुन्दर पृ० सं० २६

बिजली की चमक से न डर जाऊँगी ।[1] मतिराम ने वर्षारम्भ में पति के आगमन का संदेश न पाकर जो अभाव अनुभव किया उस का वर्णन किया है । बादल धूम ध्वजा की तरह फहराने लगे । पूरा आकाश मंडल बिजली की चमक से चमकने लगा । विरहिणी कम्पित होने लगी उस को लगा कि प्रियतम के बिना कामदेव मुझ पर चढ़ाई करने को आए हैं ।[2] भूषण की नायिका को वर्षा ऋतु में बादल कुलिश के समान लगते हैं । सावन की रात भयानक प्रतीत होती है ।[3] कालीदास कहते हैं सावन के दिनों में प्रियतम के बिना झिल्लियों का शोर विरहिणी को बड़ा कष्टदायक प्रतीत होता है । बादल के उमड़-उमड़ कर गरजने से वह चौंक पड़ती है । दादुर और मोर की आवाज़ उसे व्याकुल कर देती है । उसी के हृदय की हूक से कोयल कूक उठती है तथा मोर कुहुक उठते हैं ।[4] काली दास ने एक जगह कहा है -

हिये में वियोगिन के विरह की हूक उठी
कूक उठी कोकिला कुहुँक उठे मोर हैं ।[4]

देव कवि ने भी विरहिणी का वर्णन किया है । उन का कहना है मोर का नाचना, चातक का बोलना दादुर का टर्राना कोकिला की किलकार आदि को विरहिणी को विष के घूंट के समान पीना पड़ता है । चारों ओर बादल घिरे हैं । आकाश की नीलिमा कृष्ण जी की स्मृति को बढ़ाती है । दाम्पत्य देखकर वह और भी अधिक व्याकुल हो जाती है ।[5] कवीन्द्र ने वर्षा काल का वर्णन किया है वायु चलने लगी, मेघ छा गए । विरहिणी का बदन यह सब देखकर मलीन हो गया ।[6]

१- रीति शृंगार चिन्तामणि पृ० सं० ४८
२- षट् ऋतु काव्य संग्रह पद सं० ६१ पृ० सं० ११७ मतिराम
३- भूषण ग्रंथावली पद सं० ४०१ पृ० सं० ११५
४- रीति शृंगार कालीदास पृ० सं० ८०
५- देव सुधा पद सं० ६५ पृ० सं० ३७
६- पावस ऋतु कवीन्द्र पद सं० १० पृ० सं० ३६२

श्रीपति ने एक चित्र खींचा है -

छहरि छहरि छिन कहरि कहरि करि

थहरि थहरि छिन बीते चित गाढ़ै ।

लहरि लहरि बिज्जु कहरि कहरि आवै

घहरि घहरि उठै बादर अगाढ़ै ।

ऐसे वातावरण में विरहिणी प्रियतम के बिना व्याकुल है । काम का वेग बढ़ता ही जाता है ।[1] दास की नायिका को भी प्रियतम के परदेश में होने के कारण वर्षा काल दुखदायिनी हो रही है । बगुला की पंक्तियाँ चारों ओर उड़ रही हैं । वायु झकझोर रही है । कोयल की बोली से हृदय में हूक उठती है ।

परी अलबेली छिन खरी अकेली

ढरी ढरी ढरी बेली नवै व्याकुल ढरी ढरी ।[2]

तोष की विरहिणी बादल की गर्जन मोर की बोली, वायु का वेग देखकर डर रही है । पीउ पीउ पपीहा बोलते हैं वह पूछती है प्रियतम कहाँ है ।[3] सोमनाथ ने कहा है कि विरहिणी घनघोर घटा से चातक की बोली से बहुत व्याकुल है । वह उन्मत्त है । चारों ओर से उसे 'आए घन आए घन' सुनाई देता है ।

१- रीति श्रृंगार श्रीपति पृ० सं० १३७

२- रस सारांश भिखारी दास पृ० सं० ८६

३- रीति श्रृंगार तोष पृ० सं० १०४

४- रीति श्रृंगार सोमनाथ पृ० सं० १३७

रघुनाथ की बिरहिणी बादर देखकर बहुत घबराने लगती है ।[1]

बेनी प्रवीन की नायिका कहती है

आरी हौं बसन्त कै तैयारी भारी ग्रीषम की

पावस कलंक सीस तेरे चढ़ बैठेगो ।[2]

पद्माकर की नायिका की विनती बड़ी मर्मभेदी है । वह

कहती है -

साँझ के सलोने घन सबुज सुरंगन सो,

बैठे है अनंग अंग-अंगनि सताउती ।

कहै 'पद्माकर' झकोर झिल्ली-सोरन को,

मोरन को महतन कोऊ मन ल्याउती ।

काहू बिरही की कही मानि लेतो

जो पै दई जग मैं दई तौ दया सागर कहाउती ।

पावस बनायो तौ न बिरह बनाउतो

जौ बिरह बनायो तौ न पावस बनाउती ।[3]

ग्वाल कवि ने परम्परा के अनुसार चातक, पिक, दादुर,

का वर्णन किया है । बिरहिणी की दशा का वर्णन है

बूँदन की बुन्द धुनि भारी धूँधि धूँधि

लेत आयो सखी सावन संभारे समसेर की ।[4]

प्रताप साहि की नायिका को भी घनश्याम के बिना पीयूष

१- रीति-श्रृंगार रघुनाथ पृ० सं० १८२

२- नव-रस-तरंग पद सं० ३८६ पृ० सं० ५४

३- पद्माकर पंचामृत पद सं० ३१४ पृ० सं० १४६

४- पावस ऋतु संग्रह ग्वाल पद सं० ४ पृ० सं० ३३१ - हजारा - [illegible]

नहीं होता । घनघोर घटा छा गई । कोकिल,कपोत, शुक, चातक, चकोर, मोर आदि पक्षी बोल रहे हैं इसी सब से वह व्याकुल है [1]। घनानन्द ने विरहिणी की वर्षा ऋतु के रूप में पाया है । विरहिणी के नैनों से निरन्तर अश्रु धार बहती रहती है । इसी का भावात्मक चित्र खींचा है -

विरहा-रवि सों घट-व्योम तच्यो
बिजुरी सी खिवैं इकली छतियाँ ।
हिय-सागर तें दृग मेघ भरे
उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ ।
घनआनन्द जान अनोखी दसा
न लखी कई कैसे लिखौं पतियाँ ।
निज दावन डीठि जु बैठक में
टपकै बरुनी लिखि ओलतियाँ ।[2]

बोधा कवि की नायिका पावस ऋतु में घटाओं को देखकर मन में धीरज नहीं रख पाती । दादुर पपीहा का शोर चित्त को व्याकुल कर देता है । अपने दुख की बातें किस से कहे यह भी समझ में नहीं आता इसी से अधीर चिन्तित है ।[3] ठाकुर ने वर्षा का चित्र खींचा है बिजली चहुँओं दिशाओं में चमक रही है । घनघोर घटा छाई है। प्रियतम के बिना नायिका दुखी है

झूमि झूमि झुकि झुकि झमकि झमकि आली
रिमझिम झिमकि अषाढ़ बरसतु है

१- रीति-शृंगार प्रताप शाहि पृ० सं० २३५
२- घनानन्द मूल ग्रंथ पद सं० ८९ पृ० सं० ५३
३- इश्कनामा बोधा कृत - रीति काव्य संग्रह पद सं. ८ पृ. १५८
४- रीति शृंगार ठाकुर पृ० सं० ३०४

पजनेस की नायिका को भी वर्षा में शान्ति कैसे मिल सकती है ।

घुमड़त घुमड़ि घुमड़ि घन आये घने तड़पनि बाढ़ी बढ़ि तड़पनि सोहैं।[1]

दीनदयाल गिरि की नायिका को सावन भयावना लगता है । जुगनुओं की ज्योति जलाती है । पपीहा पीउ पीउ पुकार कर व्याकुल कर देता है तथा बिजली मारे डाल रही है ।[2]

द्विजदेव कवि कहते हैं पावस राजा ने चारों ओर से घेर कर आक्रमण किया है । चातक चकोर मोर उस के सैनिक हैं । कालिन्दी के किनारे पावस राजा की सेना ठहरी है । नायिका कहती है कृष्ण की बताइये अब हम क्या करें ।

<u>वियोग में बसन्त ऋतु</u> -

बसन्त ऋतु के आगमन से विरहिणी का दुख बढ़ जाता है इस का वर्णन किया है । गंग कवि ने विरहिणी के मनोभाव चित्रित किए हैं । भौंरे कमलों पर मंडरा रहे हैं । कोयल बाग में बोल रही है । वियोग में चैत की चांदनी को देखना कठिन है ।[4] केशव दास ने बसन्त ऋतु के वर्णन में कहा है कि प्रकृति की सभी वस्तुयें विरहिणी को कष्टप्रद प्रतीत होती हैं । पलाश फूले हुए अग्नि की ज्वाला के समान हैं चारों ओर अंगार ही अंगार फैले हुए हैं जिस से चकोर मुंह फैलाए हुए घूमता रहता है । सेनापति की विरहिणी कहती है जब गए थे तब हम साथ में न गए उस से पछतावा हो रहा है । हमारे केश उन्हीं के हाथ

१- षट्ऋतु काव्य संग्रह पजनेस पद सं० ८९ पृ. सं. ५०१ [illegible]

२- दीनदयाल गिरि ग्रंथावली पद सं० २१९ पृ० सं० ३९

३- षट्ऋतु काव्य संग्रह द्विजदेव पद सं० ११ पृ० सं० ९४

४- गंग के कवित्त पद सं० ३५ पृ० सं० ९

५- षट्ऋतु काव्य संग्रह केशवदास पद सं० ८९ पृ० सं० ५१

के फूलि फूले हैं । अब फागुन का महीना भी आ गया है । बान का तीर हृदय को दुःख पहुँचाता है । लाल परदेस में है इस से गुलाल मत मेलो । इस में होली के अवसर पर नायिका की मनोदशा का चित्रण हुआ है ।[1] कालीदास की विरहिणी व्यथित है कि बसन्त ऋतु आ गई अब कैसे जिऊँगी ।

मधुकर माते बननेलिन के बास पर
कोकिल रसाल पर कूकत अमन्द की ।
मन्द पौन सीतल सुवास भई बावन
विलास भई कालीदास रास मकरन्द की ।
देखिए सयान बैसास में पयान करै
कान्ह को कहा न होत गोपिन कुन्द की ।
कैसे देखि जीहौं चढ़ि चाँदनी महल पर
सुधा की लहर वसुधा की चारु चन्द की ।[2]

देव की नायिका होली के अवसर को आता हुआ जानकर घबरा रही है । अब तो बसन्त आ गया है । जीते ही मरना है । जैसे जैसे बन में बौर आ रहा है हम तो पागल होते जा रहे हैं । कोकिल की ध्वनि हमें डरा रही है । अब जब होली में अबीर भरी और छड़ियाँ घूमेंगी तब हम बचा कैसे कहाँ रहेंगी । इस में नायिका के मानसिक व्यथा का चित्रण है ।[3] दास की विरहिणी बहुत शक्तिशाली है । वह चन्द्रमा से उपालम्भ से कहती है कि हम ने कोकी की कूक समीर का ताप आदि कष्टों को सहन किया है । फूलों की आग में जल चुके, चन्दन से जल गए तो तू ही क्या मेरा बिगाड़ लेगी । भले ही तुम अपने तीक्ष्ण किरणों से

१- सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० ५९ पृ० सं० ७९

२- काली दास षट्ऋतु काव्य संग्रह पद सं० २ पृ० सं० ३१

३- देव सुधा पद सं० ८० पृ० सं० ४३

मेरे शरीर को छेद डालो पर मैं मरूंगी नहीं ।[1] तोष कवि की विरहिणी कहती है कि चारों ओर बसन्त का आगमन हो गया है । फूल फूले हैं और भौंरे गुंजार कर रहे हैं, कोकिल बोल रही है । सभी भाव मधुर हैं । उसके सामने कठिन समस्या हो गई है कि अब वह कहाँ जाय ।[2] एलनाथ कवि की भाव व्यंजना सुन्दर है । प्रकृति की वस्तुयें तो परम्परागत ही ली गई हैं पर उन की व्यंजना दूसरी तरह की है । विरहिणी कहती है अनार कचनार आम सिरीष के फूल फूलेंगे और शूल की भाँति लगेंगे । मालती अभिलाष , सेमर पलास भी आग के समान फूलेंगे । कनेर, माधवी, चमेली, गुलाब ये भी फूल कर मन को उद्विग्न करेंगे पर विरह का वृक्ष जो आज लगा गया है वह भी तो बसन्त आने पर फूलेगा तब क्या हाल होगा ।[3]

घनानन्द ने विरह को फाग के रूपक में बाँधा है । ललनाओं के शरीर से रंग लिया, उनके विरह की निरविच्छिन्नता को विरह की गर्मी के द्वारा गरमा कर सुगन्धित द्रव्य निकाला । विरह ने आनन्द की और सब सामग्री भी खोज कर इकट्ठा की । अब वह गोपियों के प्राण रूपी अबीर को फेंट में बांधे मतवाला होकर घूम रहा है । बिना प्रियतम के ब्रज को वह नाश करने वाला बन रहा है ।[4] ठाकुर कवि की विरहिणी की भावना है कि हमारे कपट प्रियतम को पता न चले

१- पं० हरिराम भिखारी दास पृ० सं० ७६ पद ८ २'८

२- ~~षट्~~ ऋतु काव्य संग्रह पद सं० २ पृ० सं० १ - तोष कवि

३- एलनाथ षट् ऋतु काव्य संग्रह पद सं० ८४ पृ० सं० २५

४- घनानन्द मूल ग्रंथ पद सं० ३०२ पृ० सं० ४३

बौरे रसालन की चढ़ि डारन

कूकत क्वैलिया मौन गहैना ।

ठाकुर कुंजन कुंजन गुंजत भौंर

न कोचै चुपैबो चहैना ।

सीतल मन्द सुगन्धित बीर

समीर लगे तन धीर रहैना ।

ब्याकुल कीन्हीं बसंत बनाय कै

जाय कै कंत सो कोऊ कहैना ।[1]

द्विजदेव की विरहिणी फूले पलाश और भौंरों की भीड़ देखकर पगला गई । उसके हृदय से ज्ञान भाग गया । धैर्य ने कब साथ छोड़ दिया कुछ का उसे पता नहीं । पराग की भीनी वायु में किसके नेत्र अन्धे नहीं हो जाते ।[2] कुछ कवियों कर छोड़कर और सब ने परम्परागत वर्णन किया है । कोयल, भौंरा, पपीहा, चातक की आवाज़, पलाश, किंशुक, अनार, कचनार आदि फूलों का तथा चाँदनी रात का वर्णन हुआ है ।

दीन दयाल गिरि का कहना है कि जो कोई भी ब्रज में जाता है उसे आश्चर्य ही देखने को मिलता है ।

कनक लता पै कंज सूचि रहै कुंदा पुंज

जाकी अंबरीट बैठि मोती उगलत है ।[3]

बसंत में फूल तथा कोकिल का बोल विरहिणी को व्याकुल कर देता है ।

दिन है बसंत अब वामें कंत को वियोग

सोगमई भरि भरि बाल ज्यों बिहाल हैं ।[4]

१- ठाकुर षटऋतु काव्य संग्रह पद सं० ६१ पृ० सं० ३५
२- भाव मर्मक पद्य० ८० ८० ५१/६१
३-४ दीनदयाल ग्रंथावली पद सं० ३१० पृ० सं० ६०, पद सं० ८९ पृ० सं० १५८

श्रृंगार परक बरवै की परंपरा

बरवै के रचयिता रहीम हैं । इन्हों ने बरवों में नायिका का सौंदर्य वर्णन किया है । गोस्वामी तुलसीदास ने बरवै छंद में रामायण लिखी है उस में सीता जी का सौंदर्य वर्णन तथा थोड़ा सा रामायण की कथा का अंश मिलता है । कुछ विशेष कथा की धारा प्रवाहित नहीं होती । पर जितने स्पष्ट भाव एवं वर्णन के रहीम के बरवों में मिलते हैं उतना किसी में नहीं । विक्रम सतसई, इश्कनामा बोधा कृत तथा सबल श्याम के छुट पुट बरवै मिलते हैं । सबल श्याम ने षट्ऋतु वर्णन भी किया है ।

रहीम कवि की चलाई हुई यह परंपरा श्रृंगार परक काव्य में प्रस्फुटित हुई है । कहा जाता है कि पहला बरवै रहीम ने एक युवती की विरह वेदना प्रकट करने के लिए ही लिखा है । रहीम के बरवै श्रृंगार के दोहे के समान मिलते हैं । नायिका के नैनों की ओर सब को अभिभूत कर लेती है । उस के पैरों में घुंघरू चंचलता के कारण ठहरते नहीं[1] । इन्हों ने ठेरिन के रूप को कहा है कि जैसे मोती थाली में नहीं ठहरता वैसे ही उस में चंचलता है ।[2] कहते हैं -

छीन, मलीन, बिष भइया, औगुन तीन ।
मोहि कह चंद बदनियाँ पिय मति हीन ।[3]

- -

१- रहीम बरवै नायिका भेद पद सं० पृ० सं० ६।३१
२- " नगर शोभा वर्णन " १।५२
३- " बरवै नायिका भेद " ३५।३६

झरोखा से झाँकने का सौंदर्य चित्रित किया है । यह परम्परा से चला आ रहा है । झरोखा से झाँक कर फिर देखती है कि नायक पर कुछ प्रभाव हुआ कि नहीं ।[1]

इसी भाव को गोस्वामी जी ने कहा है कि सीता जी का मुँह शरद कमल की तरह भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह रात में कुम्हला जाता है दिन में खिलता है ।[2] रूप की अतिशयोक्ति तभी पूर्ण हो जाती है जब वह कहते हैं -

चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ ।
जानि परै सिय हियरे जब कुंभिलाइ ।[3]

विक्रम कवि कहते हैं नायिका आँखों में अंजन लगाकर अपने सौंदर्य को द्विगुणित कर लाल को नचाती है ।[4]

<u>संयोग शृंगार</u> - रहीम कवि कहते हैं बहुत दिनों पर प्रियतम घर आये हैं इस से नव-वधू अति प्रसन्न होकर सब काम कर रही है ।[5] गोस्वामी जी ने बड़ा सुन्दर भाव दिखाया है -

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन ।
सिय रघुबर के भए उनींदे नैन ।[6]

विक्रम कवि ने नायिका नायक के संमिलन का वर्णन

१- बरवै नायिका भेद पद सं० पृ० सं० १०६।४७

२-३ बरवै रामायण तुलसी रचनावली गोस्वामी तुलसीदास पद०सं० पृ० सं० ३।४३२,५।४३२

४- सतसई सप्तक - विक्रम सतसई पद सं० पृ० सं० २७०।३६०

५- रहीम बरवै नायिका भेद " ८७।४४

६- तुलसी रचनावली, गोस्वामी तुलसीदास - बरवै रामायण पद सं० पृ० सं० १८।४३३

किया है । कहते हैं यमुना तट सूना देखकर प्यारी के कपोल को चूम लिया ।[१] संयोग में बसंत भी सुहावना लगता है । शीतल मंद सुगंध बह रही है । जगह जगह भौंरों की गुंजार सुनाई देती है ।[२]

प्रेम वर्णन - रहीम की नायिका प्रियतम के प्रेम का वर्णन नहीं कर सकती । सोने के गहने उस के लिए गड़ता रहता है ।[३] इन्हों ने भी चातक की प्रीति को प्रेम की कसौटी माना है

है जग साँची प्रीति न चातक टारि ।[४]

बोधा कवि का कहना है कि कमल की सी प्रीति करे । शरीर और मन का अंत कमल कर देता है तभी पिय जी के मस्तक पर चढ़ता है ।[५]

विरह वर्णन - रहीम की नायिका उठ उठ कर नायक को देखती है । सूनी बाट को देखकर व्याकुल है ।[६] जब से मोहन गए तब से कोई सुधि नहीं ली । पलकों पर प्राण आ गए हैं । नैन रास्ते में बिछे हुए हैं ।[७] जब से हरि गए तब से हृदय में भभूका सा उठता है ।[८] गोस्वामी तुलसी दास भी कहते हैं कि सीता जी की विरह की अग्नि जब-जब बढ़ती है तब तब बैरी आँखें आँसू से उसे बुझा देती हैं ।[९] विक्रम की नायिका कहती है जब जब आँगन में पैर रखती है तभी तभी कलेजा कसकने लगता है ।[१०] बोधा कवि कहते हैं कि पड़ोसिन आकर नायिका की सहायता करना चाहती है पर वह जल उठती है ।[११]

लीने संग प्रदच्छिने भखिय वियोग ।
रोयत फिरत अंबरवा, करि है सोग ।[१२]

१-२ सतसई सप्तक - विक्रम सतसई पद सं० पृ० सं० २२१।३६०, २११।३५१
३- रहीम - दानशाला कृत बरवै पद सं० पृ० सं० १।४५
४- इश्कनामा बोधा कृत
५-८ रहीम - बरवै नायिका भेद पद सं० पृ० सं० ६२।१६, ६०।६४, ५८
९- तुलसी रचनावली - गोस्वामी तुलसी दास - बरवै रामायण पद सं० पृ० सं० ३६।६८।
१०- सतसई सप्तक - विक्रम सतसई पद सं० पृ० सं० २३५।३६०
११-१२ इश्कनामा बोधा कृत ८।२०, १२।२०

अध्याय ५

नीति परक दोहों की परम्परा

नीति तत्व का विवेचन दर्शन के अन्तर्गत आता है जो व्यक्ति के परिस्थिति सापेक्ष आचारों का विवेचन करती है । इस में बुद्धि के द्वारा प्रमाणात्मक एवं काव्यात्मक शैली में मानव मंड के आधार व्यवहारों का निरीक्षण किया जाता है, और जीवन के सुगम तथा दोषरहित बनाने का उपदेश रहता है । वास्तव में मनुष्य के जीवन का बड़ा भाग व्यवहारिक ही है । इसी से प्रत्येक काल के कवियों ने इसका विवेचन किया है । ऋग्वेद में सूक्तियों के रूप में नीति तत्व का विवेचन मिलता है । ऐतरेय ब्राह्मण, उपनिषद्, महाभारत आदि सभी में यह तत्व पाया जाता है । भर्तृहरि का नीतिशतक नीति परम्परा का पहला ग्रन्थ है । इसमें अन्योक्तियों के माध्यम से जीवन के सत्य का काव्यमय विवेचन किया है । इसी परम्परा में प्राकृत में वज्जालग्ग अपभ्रंश में पाहुड़दोहा तथा सावयधम्म दोहा है । इसी परम्परा का सिद्धों के काव्य में निर्वाह हुआ है । हिन्दी साहित्य में संतों ने सिद्धों की परम्परा को आगे बढ़ाया ।

इन संतों के दृष्टिकोण में व्यापकता की कमी थी । इसी से बहुत से विषयों पर इन्होंने ध्यान नहीं भी दिया । जैसे सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं पर इन कवियों ने अपने विचार नहीं प्रकट किये । कुछ बातें नवीन पाई जाती हैं जैसे मोह त्याग, गुरु भक्ति आदि । इन भावनाओं की परम्परा संस्कृत में नहीं है पर प्राकृत काल से आरम्भ हो गई थी। संस्कृत नीति काव्य में शरीर को स्वस्थ बनाने पर बल दिया है । प्राकृत काल से शरीर को अशुचि, नश्वर कह कर उसकी उपेक्षा करने की परम्परा चल पड़ी । मानसिक नीति में इस काल में सिद्धान्त पर बल न देकर पोथी पंडितों की उपेक्षा की है । इन सब ने शुद्ध आचरणों को ही प्रधान माना है । आध्यात्मिक नीति पर बल दिया है । पारिवारिक नीति के

प्रति सांसारिक सम्बन्धों को झूठा माना है । इसी का स्थान मज़बूत है । गुरु को भगवान से भी ऊँचा कहा है । राजा के कवियों की ओर इन कवियों का ध्यान नहीं गया है । इन कवियों ने व्यक्ति सम्बन्धी (आचरण, मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक) पारिवारिक, राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक विचारों पर विवेचन किया है ।

<u>व्यक्ति सम्बन्धी</u> - व्यक्ति के जीवन का आवश्यक पक्ष उस के आचरण हैं । कबीर ने आचरण की ओर विशेष ध्यान दिया है । कबीर का कहना है दूसरों के प्रति तुम्हारा व्यवहार ऐसा हो कि यदि कोई तुम्हारे साथ बुराई करे, तब भी तुम भलाई करो ।[1] न तो बहुत बोलो और न चुप ही रहो ।[2] जो कल करना है वह आज ही कर लो ।[3] धैर्य धारण करो ।[4] कुसंगति से दूर रहो ।[5] व्यवहार में मधुर वचन पर बल दिया है । कटु वचन तीर के समान होते हैं ।[6] दूसरों के प्रति उचित व्यवहार करना चाहिए । कहते हैं -

हेत प्रीति से जो मिले, ता को मिलिए धाय ।
अंतर राखे जो मिले, ता से मिले बलाय ।[7]

शरीर के प्रति इन की नीति थी कि रहना तो यहाँ है नहीं, अतः पाहुने की तरह रहना उचित है ।[8] इस दुनिया से प्रेम करना व्यर्थ है । इस से तो अच्छा है कि गुरु के चरणों में प्रीति की जाय ।[9] मन के प्रति इन का विचार है 'मन के मते न चालिए, मन के मते अनेक' ।[10] गर्व नहीं करना चाहिए ।[11] विद्वत्ता के लिए इन का कहना है पोथी पढ़ने से कोई पंडित नहीं होता । 'ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो ही पंडित होता है' ।[12]

१-५ कबीर साहिब की साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० १।१०५, ६।८०, १४।६०, ३।१४९, १०।५५

६- कबीर वचनावली पृ० १३५।४९६

७-१२ कबीर साहिब का साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ४।१४४, १९१।०७, ५५।६४, १।१५६, ५८।६१, ७।१००

<u>पारिवारिक</u> - कबीर की मुख्य नीति यही है कि बिना हरि भजे मुक्ति नहीं मिल सकती । संसार से प्रीति न होने के कारण परिवार को झंझट समझते हैं, केवल सुमिरन को ही सार कहते हैं ।

नर नारी सब नरक हैं, जब लग देह सकाम ।
कहै कबीर ते राम के, जे सुमिरैं निहकाम ।[1]

<u>सामाजिक</u> - सामाजिक नीति में गुरु को ही समाज का मुख्य अंग माना है । साधु का दर्शन ही मुख्य ध्येय है ।

दादू आवत देखि के, चरनन लागूं जाय ।
ना जानूं यहि भेष में, हरि ही जो मिलि जाय ।[2]

साधु की संगति गंधी की बास के समान है । 'जो कुछ गंधी दे नहीं तो भी बास सुबास' है ।[3] मूर्ख के समझाने से कुछ लाभ नहीं होता ।[4] सेवक के प्रति उन का कहना है

फल कारन सेवा करै, तजै न मन से काम ।[5]
कहै कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ।

रैदास ने केवल आध्यात्मिक नीति व्यक्त की है । हरि के समान हीरा छोड़कर और किसी की आशा नहीं करना चाहिए ।[6] दादू का कहना है केवल अल्लाह का नाम लेने से ही मिहरबान हो जाता है । कितना भी पढ़ कर पंडित हो जावे पर नाम के अतिरिक्त और कोई आधार नहीं है ।[7] जब तक शरीर है

१- कबीर ग्रंथावली पद सं० पृ० सं० ४१।१९ .

२- कबीर साहिब का साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ६५।१३२

३-५ ५।५१, ६।५४, २११५२।१५

६- मनमुख का अंग पद सं० १ कबीर साहिब का साखी संग्रह

७- दादू दयाल की बानी भाग १ पद सं० पृ० सं० ९०।१५

तब तक राम को सम्हाल लो नहीं तो अन्त में पछताना पड़ेगा ।[1] सामाजिक नीति व्यक्त की है कि मन की बात नहीं सुनना चाहिए । गुरु की महिमा गाई है ।[2] हिन्दू मुसलमान समाज में भाई भाई हैं ।[3] शरीर के प्रति उनका विचार है

हरि भज साफल जीवना, पर उपकार समाइ ।
दादू मरणा तहँ भला, जहँ पशु पंखी खाइ ।[4]

जगजीवन साहिब कहते हैं तुमको भेजा किस लिए गया है और तुम कर क्या रहे हो ।[5] सुख पर न भूलो सचेत हो जाओ । संसार में अपना कोई नहीं है ।[6] इन्होंने पारिवारिक सम्बन्धों को नहीं माना है । धरनीदास जी ने कहा है कि भक्ति से ही भला होता है ।

धरनी खेती भक्ति की, उपजे होत निहाल ।
सबै भाग निबरे नहीं, परै न दुक्ख दुकाल ।[7]

इनके विचार से अपना मत किसी से नहीं कहना चाहिए ।[8] रज्जब जी ने भी वेद की वाणी को व्यर्थ कहा है ।

वेद सुवाणी कूप जल, दुख सूं प्रापति होइ ।
सबद साखि सरवर सलिल, सुख पीवै सब कोइ ।[9]

दरिया साहिब मारवाड़ वालों का कहना है कि मूर्ख को कोई नहीं समझा सकता । कौवा मूर्खता में कोयल के अंडों का पालन पोषण करता है पर अंत में वे सब कोयल हो जाते हैं[10] । गरीबदास जी ने सहजभक्ति को मुख्य माना है । सुखी की तरह सहजभक्ति हो जो खोजने पर आसके नहीं[11] । पवन के समान हो

१-३ दादू दयाल की बानी भाग १ पद सं० पृ० सं० ५८।१९, १०।९, ७/२३५

४- ________ सन्त वाणी संग्रह प.सं.-पृ.सं ५/७८

५-६ संत बानी संग्रह भाग १ जगजीवन साहिब पद सं० पृ० सं० २।११०, ४।१०७.

७-८ " " " " धरनीदास ५।११४, ११।११५

९- रज्जब संत सुधासार पृ० सं० ५३२ पद सं. ७५

१०- बानी - दरिया साहेब मारवाड़ वाले पद सं.पृ.सं. ३६।४

११- संतबानी संग्रह - गरीबदास " - ९।२०४

कुटिल वचन न प्रभावित कर सके । तुलसी साहिब का कहना है कि समाज में सभी सज्जन सदा होते हैं । संतों की शैली और भाषा का विवेचन तो उपासना परक दोहों के साथ हो ही गया है । पर इनकी कुछ विशेषतायें हैं । इनका उल्लेख कर देना उपयुक्त ही है । संतों की नीति काव्य की दृष्टि पारमार्थिक है, आदर्शवादी है । आत्मिक नीति पर बल दिया है, कर्तव्यपालन की दृष्टि नहीं है । धन-संपत्ति तथा नारी की निन्दा की है ।प्रभु की प्राप्ति ही मुख्य ध्येय है । इस में अधिकतर धर्म का उपदेश है, नीति तत्वों का विवेचन नहीं है ।

<u>आचरण</u> - संत साहित्य की तरह भक्ति साहित्य में भी हमें नीति के दोहों का संग्रह मिलता है । इन कवियों ने भक्त होते हुए भी लोकोपकार तथा अपने इन्तोष के लिए नीति की परम्परा को आगे बढ़ाया । राम भक्त गोस्वामी तुलसी दास जी की दोहावली नीति काव्य का एक सुन्दर पुष्प है । इस में गोस्वामी जी ने आचरण की शुद्धि पर बल दिया है । नीति के पथ पर चलना बड़ा आवश्यक बताया है । नैतिक आचार विचार तो परम्परा से चले आ रहे हैं कि सच बोलना उचित है । गोस्वामी जी ने इसी भाव का निरूपण किया है ।

मिथुमा माहुर सुजन कहं सकहिं गरल सम साँच ।
तुलसी धरति धराइ् विधि चारत चायक आँच ।[1]

दैनिक जीवन में काम आने वाले आचरण की ओर भी इनकी दृष्टि गई है ।कलह छोटे बड़े सब को नष्ट कर देती है ।[2] अवसर चूकने से बाद कितना भी कोई दे लाभ नहीं होता ।[3] जो कभी याद न करते हों तथा प्रिय वचन न बोलते हों उन के घर भी यदि कोई जाय तो उनके मूर्ख नहीं है ।[4] बुद्धिमान पुरुषों से सुकृत

१-२ सतसई सप्तक - तुलसी सतसई पद सं० पृ० सं० १११।६३, ७३६।९८

३-४ तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० ४०१।१६१, ३२९।११३

तक को मना करते हैं । क्रोध में आकर काम करने से काम की पूर्ति नहीं होती ।[1]

बचन कहे अभिमान के पारथ पेखत सेतु ।

प्रभु तिय लूटत नीच भर जय न मीचु तेहि हेतु ।[2]

अधिक मान की इच्छा से सुख नहीं मिलता क्यों कि उस में संतोष नहीं रहता, सदैव मन में चिन्ता रहती है ।[3] कौरवों को क्रोध की, और पांडवों को क्षमा की सीमा समझिए । क्रोध के कारण ही कौरव पांच पांडवों को नहीं मार सके ।इधर अकेले भीम ने सौ के सौ कौरवों का नाश कर दिया ।[4] किसी को तीखे बचन न कहो वरन् सेवा और सहायता से वश में करो।[5] इस तरह की हार को अपनी जीत समझो । वे कहते हैं -

जो मधु मरै न मारिए माहुर देइ सो काउ ।

जग जिति हारे परसुधर हारि जिते रघुराउ ।[6]

विवेक पूर्वक व्यवहार करना ही उत्तम है । शत्रु के प्रति भी जो विचार कर व्यवहार करता है वही बुद्धिमान, पुण्यात्मा तथा चतुर है ।[7] कहते हैं सात वस्तुओं का रस बिगड़ने से पहले छोड़ देना चाहिए । नगर, स्त्री, भोजन, मंत्री, सेवक, मित्र तथा घर ।[8] जो अपनी कीर्ति दूसरों की कीर्ति खोकर पाना चाहता है उसे अन्त में दुख उठाना पड़ता है ।[9] कवि उदैराज कहते हैं कि लोग अपने स्वारथ के लिए कितना झुक जाते हैं । जल लेने के कारण कुंए पर झुकना ही पड़ता है ।[10] जान कवि का कहना है कि व्यवहार कुशल इतना होना चाहिए कि निर्बल को भी शत्रु बनाना उचित नहीं ।[11] अपने मन का भेद किसी को भी नहीं कहना चाहिए ।[12]

१-२ तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० ४२५।१४५, ४३०।१५०

३-९ " " ३२४।१११, ४२८।१४७, ४४९।१४७, ४३३।१४८, ४०१।१६१, ४०५।१६३, ३७५/१३२

१०- उदैराज रा दूहा ० साहित्य में हस्तलिखित हिंदी में नीतिकाव्य का विकास पृ. २०५ पर उद्धृत

११-१२ जान कवि ३।१।१२८, ३।१।१३० -सिन्धुसागर

कबीर दास ने भी इसी विचार को एक जगह कहा है कि भेद कह देने से लोग हंसते हैं पर सहायता कोई नहीं करता । जैसे कवि कहते हैं -

सनमुख उज्वल मुख मिलै, पीठि दिये अंधियार ।
दुबिधा तबत न आरसी, तऊ बरत मुख छार ।[1]

क्रोध आने पर उसे कैसे शान्त किया जावे इस का बड़ा अच्छा उपाय बताया है । खड़ा हो तो बैठ जावे और बैठा हो तो लेट जावे, लेटा हो तो करवट ले ले किसी तरह क्रोध को शान्त कर लें ।[2] इन्हों ने सत्कर्म के प्रति आस्था और कुकर्मों को भी मिटाने की प्रेरणा दी है, यदि तुम्हारी छवि अच्छी है अर्पित कर्म अच्छे हों तो दर्पण में देखो अन्यथा व्यर्थ है । नीच कर्म से अच्छा मुख नहीं होता ।[3]

नीति काव्य की परम्परा को पूर्णतया विकसित करने में रहीम का बड़ा भारी योग है । इन की दृष्टि मानव व्यवहार सम्बन्धी सभी विषयों पर गई है । रहीम का कहना है कि बिना विद्या, बुद्धि, धर्म, यश तथा दान के शरीर धारण करना बिना पूंछ के पशु के समान है । जो उत्तम प्रकृति का होता है उस पर कुसंग का प्रभाव नहीं पड़ता । बिना मान के तो अमृत भी व्यर्थ है । इस से अच्छा तो प्रेम सहित मरना है । रहीम ने भी साधारण से साधारण आचरण को भी परखा है । सीधी सीधी चाल चलने से प्यादा शतरंज में वजीर हो जाता है पर फ़ीला टेढ़े चलकर भी वजीर नहीं हो पाता ।[4] व्यवहार में गीता के उपदेश के समान अति को अच्छा नहीं समझा ।

१-३ विद्या सागर दास कवि ३।२।१०४, ३।१।६३, १।२।३४-३२
४-५ रहीम कवितावली पद सं० पृ० सं० १५-५।१२ , ६।७१
६ - रहीम सतसई - - ७४।७
७ - रहीम कवितावली - - १६२।१७

रहिमन अती न कीजिए, गहि रहिए निज कानि ।
सहिंजन अति फूले तऊ, डार पात की हानि ।[1]

छोटे काम करने से बड़े भी छोटे कहे जाते हैं जैसे बामन ने तीन पग में पृथ्वी नाप ली, फिर भी बामन का नाम नहीं छूटा ।[2] खीरा की तरह प्रीति करने को मना करते हैं, क्यों कि ऊपर से तो एक सा लगता है पर अन्दर तीन फाँके होती हैं ।[3] दूसरे के घर जाने से इज्जत घट जाती है ।[4] रहीम ने माँगने वाले को मर जाने के समान कहा है तथा जो नहीं कर देते हैं वे तो माँगने वालों से पहले ही प्राण हीन हो गए ।[5]

वृन्द शृंगारी कवियों के समय के थे । अतः से इनकी कविता भक्तकाल के कवियों से कुछ भिन्न है । नीति की दृष्टि इनकी संस्कृत कवियों के समान थी । अतः से व्यवहार में थोड़ा झूठ बोलना, झूठ को सत्यवत् कहना, उद्यम विद्या, धन आदि की भी चर्चा की है । वे न तो धार्मिक कवि थे और न सदाचार का प्रतिपादन करने वाले, इन्होंने तो लोक व्यवहार की चर्चा की है, और संसार में अपने को सफल बनाने की नीति पर बल दिया है । इनका कहना है कि बड़े के पास जाने से चाहे अपमान हो जाने पर फिर भी भला है क्यों कि हाथी के गिरने से दाँत टूट जाता है फिर भी उस का लोग बखान करते हैं ।[6]

बहुत न बकिए कीजिए, कारज अवसर पाय ।
मीन गहे बक दाँव पर मद्दरी लेत उठाय ।[7]

माँगने को सब से तुच्छ कहा है, बलि माँगने के कारण ही बावन कहलाए ।[8] बात बिगड़ जाने के बाद भी रसीली बात कहे जिससे बिगड़ी सुधर जावे ।[9] अपने मतलब के लिए ही सब बोलते हैं ।[10] दूसरों के दोष तो सभी देख पाते हैं पर अपना कोई नहीं देख पाता जैसे चिराग के नीचे अँधेरा रहता है ।[11]

१-५ रहीम कवितावली पद सं० पृ० सं० १०५।२०, १९९।२९, २१५।२४, ३८।५, १००।२०

६- सतसई सम्पादक वृन्द सतसई पद सं० पृ० सं० ७६।२९२

७-११ " " " " " ३२७।३१३, २१९।३०३, १९१।३०१, ६९।२९४, ~~[illegible]~~ २५१।३०५

साहसी व्यक्ति कभी छोटे काम नहीं कर सकता ।[1] सोच विचार कर ही काम करना चाहिए ।[2] कपट से व्यवहार नहीं करना चाहिए, क्योंकि बार बार ऐसा नहीं हो सकता ।[3]

दीनदयाल ने भी आचरण पर बल दिया है । समय पर काम न करने पर पछताना पड़ता है ।[4] बुद्धिमान लोग हित के लिए ताड़ना देते हैं जैसे माली हार बनाने के लिए फूलों को छेदता है ।[5] धन धन नहीं वरन् संतोष ही परम धन है ।[6] कहते हैं -

सब विधि प्रबल विरोध तें होति मित्र की हानि ।[7]
कुसुम कुसुम गुल करि करै बरै तरुनि की बानि ।

शृंगारी कवियों ने शृंगार की कविता के साथ साथ मनुष्य के आचार विचार की ओर भी ध्यान दिया । परम्परा से प्राप्त कुछ नीति के नियमों को अपने काव्य में प्रस्फुटित किया है । रसनिधि कवि कहते हैं

धरि सोने कै पींजरा राखौ अमृत पिआइ ।[8]
विष कौ कीरा रहत है, विष ही में सुख पाइ ।

कहते हैं जिस गुलाब के फूल में सदा एक सा रंग न रहे वहाँ से मधुकर तुम क्यों स्नेह लगाते हो ।[9] बिहारी कहते हैं कि सोने में धतूरे से अधिक मादकता होती है । धतूरे को खाकर आदमी पागल होता है पर सोने को पाकर ही पागल हो जाता है ।[10] धन के लिए कहा है

बढ़त बढ़त संपति-सलिलु मन-सरोजु बढ़ि जाइ ।
घटत घटत सुन फिरि घटै बरु समूल कुम्हिलाइ ।[11]

१-३ सतसई सप्तक वृन्द सतसई ४१९।३१९, २६१।३०७, ३५।१८९

४-७ दीनदयाल गिरि ग्रंथावली पद सं० पृ० सं० १०१।८०, ११६।८५, ३१।७५, १९।७६

८-९ सतसई सप्तक रसनिधि सतसई " ६५३।१११, १००।११४

१०-११ " बिहारी सतसई " १९.२।६५, २२१।८६

जो बुरे होते हैं उन्हीं का सब सम्मान करते हैं जैसे खोटे ग्रहों को सब वन्दन करते हैं और अच्छे ग्रहों की कोई चिन्ता भी नहीं करता ।[1] समय पर सब चीज सुन्दर होती है । जैसी मन की रुचि होती है वैसा ही होता है ।[2] पद्माकर कवि का कहना है जो प्रबल से बैर करते हैं वह कुछ सोचते नहीं हैं । वे मानो बगल में बारूद बाँध कर अंगारे पर सोते हैं ।[3] गठियाकर धन जोड़ना अच्छा नहीं, खाने खरचने के बाद जो बचे वह जोड़ना चाहिए ।[4]

भिखारी दास का कहना है जिसे अपनी इन्द्रियों और स्वभाव पर विश्वास है उसी को आत्म सन्तोष होता है ।[5] लोभ से मोह, मोह से गर्व, गर्व से कोप, कोप से कलह और कलह से व्यथा उत्पन्न होती है ।[6]

बिछुआ देती विनय कौ विनय पात्रता मित्त ।
पात्रतै धन धन धरम, धरम देत सुख मित्त ।[7]

एक हस्त लिखित प्रति मारन कृत मिलती है । उस में कहते हैं -

मीठ वचन औ दीनता मारन निंदा त्याग ।
बिन धन बहु पाइओ अहो आपनो भाग ।[8]

<u>शारीरिक</u> - शारीरिक सम्बन्धी नीति पर सभी कवियों का ध्यान नहीं गया है । वृन्द कवि ने शरीर के लिए उद्यम बहुत आवश्यक बताया है । जो उद्यम से मिलता है उस में बहुत आनन्द आता है । जैसे पंगु अंधे के कन्धे पर चढ़ कर

१-२ सतसई सप्तक भिखारी सतसई पद सं० पृ० सं० ३८१।१०, ४१२।१४।

३- पद्माकर पंचामृत पद सं० पृ० सं० ११५।५३

४- बिहारी रत्नाकर - - १७८।४८१

५-७- काव्य निर्णय - भिखारीदास - पृ. सं. १०४, १८३, १०

८ - मारन कृत दोहावली - हस्तलिखित

सब कुछ काम कर लेता है ।[1] श्रम से ही सब मिलता है, सीधी अंगुली से घी नहीं निकलता है ।[2] उदैराज कवि ने कहा है अच्छा खाने, अच्छा पहनने तथा अच्छी रहनी रहने से सुख मिलता है । बूढ़ा नहीं होता ।[3] दीनदयाल गिरि ने कहा है श्री को उद्यम बिना कोई नहीं पाता ।[4]

मानसिक - गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं कि बिना संतोष के मानसिक शांति नहीं मिलती, बिना जल के नाव नहीं चलती ।[5] राम नाम के प्रेम से ही स्वार्थ और परमार्थ होता है ।[6] रहीम को मानसिक शांति प्रीतम के गले में हाथ डालने से मिलती है, बैकुंठ, कल्पवृक्ष सब व्यर्थ है ।[7] प्रेम पंथ बड़ा कठिन है । अग्नि में चलने के समान है ।[8] रहीम शृंगार प्रिय कवि हैं इस से उन्होंने नीति के वचनों में शृंगार प्रियता का परिचय दिया है । उनका कहना है कि आंसू मन की व्यथा को कह देते हैं । जिस को घर से निकालो वह क्यों न घर का सब हाल कह देगा ।[9] रत्नावलि ने लिखा है कि एक एक अक्षर से पुस्तक पूरी होती है । वैसे ही थोड़ा थोड़ा धर्म नित करने से गति बन जाती है ।[10] वृन्द कवि का कथन है जिस का चित्त से मन लग जावे वही उस के काम का है।

भाल मयन चित चुंद चित लीऊ बिना सहाय ।[11]

प्रेम का बन्धन मुख्य है ।यथा

१-२ सतसई सप्तक - वृन्द सतसई पद सं० पृ० सं० २६६।३०८, १२८।३०१

३- उदैराज रा दुहा १ दोहा १६, अप्रकाशित ग्रंथ, अभय जैन ग्रंथालय-बीकानेर-

४- दीनदयाल गिरि ग्रंथावली पद सं० पृ० सं० ८।७४

५-६ तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० २०५।९५, १५।८६

७-९ रहीम कवितावली पद सं० पृ० सं० ३५।५, ४८।६, १८२। २१

१०- रत्नावली पद सं० पृ० सं० ९५।७०

११- सतसई सप्तक - वृन्द सतसई पद सं० पृ० सं० ९०।२२४

मुबारक कवि ने लिखा है एक अक्षर प्रेम का पढ़ने वाला पंडित होता है ।[१] रसनिधि कहते हैं हरि बिना मन की कोई भी कामना पूरी नहीं होती । स्वप्न के धन से घर नहीं भर जाता ।[२] बिहारी कहते हैं जब तक कपट के कारण हृदय के कपाट बंद हैं तब तक हरि हृदय में कैसे आ सकते हैं ।[३] उनका कहना है लम्बी लम्बी साँसें क्यों लेते हो, साईं को मत भूलो । जो भगवान ने दिया है उसे कबूल करो । जो आया उसे सिर नवा लो ।[४]

जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम ।
मन काँचै नाचै वृथा साँचै राँचै राम ।[५]

मतिराम कहते हैं जिन्हें राधा मोहन प्रिय न हो उनकी आखों में धूल पड़े ।[६] भिखारी दास का कहना है संसार में मनुष्यों को अनेकों कष्ट हैं उनकी रक्षा केवल भगवान के ही हाथ है ।[७]

पारिवारिक - गोस्वामी तुलसीदास जी की आसक्ति परिवार में न थी, पर फिर भी उन्होंने गृहस्थ की निंदा नहीं की है । गृहस्थ को चाहिए कि वह घर में अनासक्त भाव से रहे । उनका कहना है घर करने से घर जाता है, घर छोड़ने से घर जाता है, इस लिए घर और वन के बीच, राम के प्रेम में लीन होकर रहे ।[८] साथ ही वह नारी के लिए कहते हैं

दीपशिखा सम जुवति जन मन जनि होसि पतंग ।
भजहिं राम तजि काम मद करहिं सदा सतसंग ।[९]

१- अलकशतक मुबारक कवि पद सं० २ पृ.सं.१

२- सतसई सप्तक रसनिधि सतसई पद सं० पृ० सं० ३२।१७५

३-५ " बिहारी सतसई " ३३।८८, ५१/६५, १४१।७१ .

६- " मतिराम सतसई " ४।११८

७- शृंगार निर्णय, रस-सारांश भिखारी दास पद सं० पृ० सं० १२३

८-९ तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० २५६।८९, २५१।९३

उनका कहना है सज्जनों के घर में भी कुसंतान हो सकती है ।[१] उनका आदर्श है माता, पिता, गुरु, स्वामी की आज्ञा स्वभाव से माननी चाहिए, नहीं तो जन्म व्यर्थ जाता है ।[२] संपत्ति के लिए उन का विचार है कि संपत्ति से विमुख होने से वह पीछे लगती है पर उसे पकड़ने से वह छाया की तरह भागती है ।[३] रत्नावली ने लिखा है युवक, पिता, भ्राता, पुत्र, श्वसुर, देवर भाई किसी से भी एकांत में बात नहीं करनी चाहिए ।[४] घी का घट स्त्री है पुरुष अग्नि है अतः सम्हल कर उसका सहयोग करना चाहिए ।[५]

रहीम ने कहा है कि गोत्र बढ़ने से सुख होता है ।[६] अपनी गर्व किसी से कहते नहीं बनती । उनका कहना है स्त्री पुरुष यदि अलग अलग रास्ते पर चलते हैं तो ठीक नहीं रहता । पुरुष मन्दिर पूजे और स्त्री रघुनाथ की पूजा करे यह उचित नहीं है ।[७] कहते हैं दीपक और कपूत की गति एक ही नहीं होती है ।

'जो रहीम गति दीप की कुल कपूत गति सोइ' ।[८]

वृन्द कवि कहते हैं सुपुत्र शुभ लक्षणों से पता चलता है । 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' ।[९] संतान के लिए उन का विचार है

भले बंस संतति भली, कबहूं नीच न होय ।
ज्यों कंचन के खान से कांच न उपजै कोय ।[१०]

दीनदयाल कवि का कहना है कि कुपुत्र सारे परिवार को नष्ट कर देता है ।[११] जो अपने पुत्र को न पढ़ाए वह अभागा है ।उन्नतिशील पुत्र ही सौभाग्यवान होता है ।[१२]

१-३ तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० ३६८।१२९, ५४०।१८८, २५७।८९

४-५ रत्नावली लघु दोहा संग्रह पद सं० पृ० सं० ४३।७०, ४४।७०

६-८ रहीम कवितावली पद सं० पृ० सं० १५०।१७, ११२।१३, ७२।९

९-१० सतसई सप्तक वृन्द सतसई पद सं० पृ० सं० ३४०।३१३, ४१०।३१६

११-१२ दीनदयाल ग्रंथावली पद सं० पृ० सं० १४०।८५, ११९।८२

सामाजिक - गोस्वामी जी की नीति समाज के प्रति सन्तों की तरह की ही थी । समाज में सज्जनों की प्रशंसा तथा दुष्टों से बचने की नीति अपनाई । कहते हैं बादल बरस कर सारे संसार को प्रसन्न करते हैं पर यदि जवासा जल जाय तो उसका क्या दोष ।[1] पर साथ ही में दीर्घ रोगी, दरिद्री, कटु वचन बोलने वाला तथा लालची को अत्यन्त प्रिय होते हुए भी छोड़ देना चाहिए ।[2] नीच को चाहे जितना सत्संग मिले उस का स्वभाव नहीं छूटता ।[3] कपटी का व्यवहार बताते हैं -

हंसनि मिलनि बोलनि मधुर, कटु करतब मन मांह ।
छुअत जो सकुचइ सुमति सो तुलसी तिनकी छांह ।[4]

नीच पतंग के समान होते हैं जो कि खींचने से आकाश पर चढ़ते हैं तथा ढील देने से गिर जाते हैं ।[5] बगुला हंस की पहचान क्षीर नीर अलग करते समय ही होती है ।[6]

रत्नावली का कहना है कि भिक्षुओं पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए, वह सब को ठगते फिरते हैं ।[7] उदैराज का कहना है मलिनता दुर्जन का लक्षण है और स्वच्छता सज्जन का ।[8] कवि नरहरि का कहना है सोना और सज्जन विपत्ति रूपी कसौटी में ही कसे जाते हैं ।[9]

रहीम कहते हैं सज्जन दूसरों के हित के लिए संपत्ति जोड़ते हैं ।[10] पर नीच खजूर के पेड़ की तरह दूसरों का रास्ता रोकते हैं ।[11] जैसी संगति

१-३ सतसई सप्तक तुलसी सतसई पद सं० पृ० सं० ४५०।३६, ४३६।५१, ४२९।५१

४-६ तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० ४०९।१४०, ४०१।१३८, ३३३।११५

७- रत्नावली पद सं० पृ० सं० ७५।७०

८- उदैराज राजुहा ~~पद सं०~~ पृ० सं० [illegible]।५

९- नरहरि पद सं० पृ० सं० ८०।१९८ - अकबरी दरबार के हिंदी कवि

१०-११ रहीम कवितावली पद सं० पृ० सं० ८६।११, १२।५

ऊपर बरसै सुमिल सी अंतर अनमिल आंक ।

कपटी जन की प्रीति है हीरा की सी फांक ।[1]

काम पड़ने पर ही मनुष्य की पहचान होती है ।[2]
दुष्टों को चाहे जितना कोई भला कहे, पर भला नहीं होता ।[3] दुष्ट के हृदय से
मीठी बात निकल ही नहीं सकती ।[4] तुच्छ व्यक्तियों की प्रीति को नष्ट होते
देर भी नहीं लगती ।[5] पर सज्जन अहित करने पर भी हित ही करते हैं ।[6]
सत्संगति में ही कलुषता मिटती है ।[7]

रसनिधि कवि ने शृंगारिक कविता के साथ साथ नीति
के वचनों को भी कहा । उनका कहना है सज्जन के बोलने, चलने, देखने का ढंग और
ही होता है ।[8] सज्जन व्यवहार से ही पहचाना जा सकता है । वे नासमझी की
बातें नहीं करते ।[9]

दीनदयाल गिरि कहते हैं -

नहीं रूप कछु रूप है, विद्या रूप निधान ।

अधिक पूजियत रूप ते, बिना रूप विद्वान ।[10]

सुजन की प्रीति पत्थर की लकीर के समान होती है जो
कभी नहीं मिटती तथा सुख देने वाली होती है ।[11] नीच भी बड़ों के साथ ऊंची
पदवी पा जाते हैं ।[12] बिना विद्या के मनुष्य शोभायमान नहीं होता ।[13] बिना
शील सुमति और सुबुधा के बुद्धिमान की संगति होते हुए भी दुष्टजन नहीं सुधरते ।[14]
मांगने वाले का कुल, शील, गुण, विद्या सब घट जाता है ।[15] जहां कोई गुण का
पारखी नहीं होता वहां नहीं जाना चाहिए ।[16] नीच का नीच के साथ मिलन ही
फल होता है ।[17] साधु के लिए कहते हैं -

२२०।३०४

१-७ सतसई सप्तक - वृन्द सतसई पद सं० पृ० सं० ४७०।३९३, १७५।३००, ४०७।३१८
३२४।३१२, ८३।२६३, ११८।२९६

८-९ सतसई सप्तक - रसनिधि पद सं० पृ० सं० ८०।२०९, ८५।२०६

१०-१७ दीनदयाल - दृष्टान्त तरंगिनी पद सं० पृ० सं० ९७।८१, १०९।८२, ३।७३, ११०।८३
१२४।८३, ७२।७९, २५।७५, ४।७३

काहु न बांधत कृपिन हों भरे विपुल जो नीर ।
बिन घन काहु न बांचहीं चातक ध्यावत नीर ।[1]

बिहारी कहते हैं छोटे आदमियों से बड़ों का काम नहीं हो पाता ।[2] एक जगह कहा है बुरा यदि बुराई छोड़ भी दे तो भी बड़ा डर लगता है ।[3] नीच के प्रति कहते हैं :-

नीच हिये हुलसे रहैं गहे गेंद के पोत ।
ज्यों ज्यों माथे मारियत त्यों त्यों ऊँचे होत ।[4]

कुमति के फंदे में पड़े हुए लोग सतसंगति से भी सुमति नहीं पाते
~~कुसंगति में पड़कर बुद्धिमान~~ भी सुमति नहीं पाते ।[5]

बिना गुण के केवल प्रशंसा से ही कोई बड़ा नहीं हो जाता ।[6]

मतिराम का कहना है सुजन का रास्ता दुर्जन रोकते हैं ।[7] दुर्जन के हृदय में किसी के उपदेश नहीं ठहरते ।[8] पर सज्जन के हृदय को कुटिल वचन नहीं बेध सकते ।[9]

<u>राजनैतिक</u> - राजनैतिक नीति पर कुछ विचार इन कवियों के मिलते हैं । गोस्वामी जी का कहना है कि भानु के समान राजा बड़े भाग्य से मिलता है । जब बरसते हुए देखकर सब प्रसन्न होते हैं पर कर लेते समय पता नहीं चलता ।[10] जो राज्य करते समय व्यर्थ ही परेशान करते हैं वे कौवों की तरह नष्ट होते हैं ।[11] शूर वीर अपनी करनी करके दिखाते हैं कहते नहीं पर कायर केवल प्रलाप करते हैं ।[12]

१- दीनदयाल - दृष्टान्त तरंगिनी पद सं० पृ० सं० ४१।७६

२-६ सतसई सप्तक - बिहारी सतसई पद सं० पृ० सं० १३१।७१, ५८४।१०६, ४९१।९८, ३२८।७८, १९१।७५

७-९ सतसई सप्तक - मतिराम सतसई पद सं० पृ० सं० ६५६।१६७, १०९।१३०, ३१५।१४२

१०- सतसई सप्तक तुलसी सतसई पद सं० पृ० सं० ३२८।५०

११-१२ तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० ४१७।१४३, ४२१।१५०

रहीम कहते हैं नीच के संग से कालिख अवश्य लग जाती है ।[1] संपत्ति और धर्म खोकर कुछ नहीं रह जाता ।[2] जैसी पड़ती है वैसी सहनी ही पड़ती है ।[3] कहते हैं

खैर खून खाँसी खुसी, बैर प्रीति मद पान ।[4]
रहिमन दाबे ना दबै, जानत सकल जहान ।

जन्म से ही बैर, प्रीति यश नहीं होता, अभ्यास होते ही यह सब आता है ।[5] धन स्थिर नहीं होता ।[6] मूर्ख कि, राजा, माँगने वाला तथा कामुक कभी किसी की बात नहीं सुनते, न तो किसी की प्रार्थना सुनें और न किसी की आवश्यकता देखें ।[7] वृन्द कवि का कहना है अपनी कीर्ति सुनकर कौन नहीं प्रसन्न होता ।[8] अपनी अपनी जगह पर सब अच्छे लगते हैं ।[9] गुण और स्नेह से सौंदर्य बढ़ता है ।[10] सबल के सभी सहायक होते हैं, निर्बल की कोई सहायता नहीं करता ।[11] हृदय का हाल नेत्र बता देते हैं ।[12] तत्वज्ञानी पुरुष सोच विचार कर काम करते हैं ।[13] उचित स्थान पर बुरी चीज़ भी अच्छी लगती है ।[14] धन और गेंद का एक ही स्वभाव होता है क्षण में हाथ में आता है क्षण में चला जाता है ।[15] उचित समय पर फीकी बात भी अच्छी लगती है ।[16] कहते हैं

जो जाकौं प्यारी लगै सो तिहि करत बखान ।
जैसे विष को विषभखी, मानत अमृत समान ।[17]

दीनदयाल गिरि का कहना है कि अपनी भुजाओं में बल के कारण ही सिंह जंगल का राजा बनता है, उस का अभिषेक किसने किया । योग्य व्यक्ति के व्यवहार के कारण सब मानने लगते हैं ।[18] बुरा भला कुछ नहीं होता, उचित समय पर सभी वस्तु ठीक होती है ।[19] संसार में सब से बड़ा दुख पराधीनता तथा सुख स्वाधीनता है ।[20]

१-७ रहीम कवितावली पद सं० पृ० सं० १०९।२४, २४०।३७, ६५।८, ४१।५, १४३।२७, ३०।३, ८।१

८-१७ सतसई सप्तक वृन्द सतसई पद सं० पृ० सं० ३५३।३१४, 258।305, ४३८।३२०, ५६।२९१, ३७।२८९, ६६५।३४८, 405।329, ४९८।३३५, ५।२८७, ७।२८७

१८-२० दीनदयाल गिरि ग्रंथावली - दृष्टांत तरंगिणी पद सं० पृ०सं० ८९।७०, १५३।८५,

सरल सरल तें होय हित नहीं सरल अरु बंक ।
ज्यों सर सूधहिं कुटिल धन होरे दूर निसंक ।[1]

रसनिधि के विचार से बिना अवसर चंदन भी नहीं अच्छा लगता और अवसर के समय प्रसन्नता में गाली भी अच्छी लगती है ।[2] चकोर चंद्रमा के बल पर ही चिनगी खाता है यदि वह जलाने लगे तो वह कहाँ जावे ।[3] वास्तव में चकोर ही चंद्रमा से सच्चा व्यवहार करना जानता है ।[4] बिहारी का भी यही कहना है उचित स्थान पर सब अच्छा लगता है ।[5] तुच्छ व्यक्ति तुच्छ ही रहता है चाहे जितना वह दिखावा करे ।[6]

नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जोइ ।
जे तो नीचा ह्वै चले ते तो ऊँचो होइ ।[7]

मतिराम कहते हैं सरल स्वभाव वाला प्राण हरने की बात क्या जाने ।[8] कुसंग से किसी को ऊँचा स्थान नहीं मिल सकता ।[9] धन के बढ़ने से विवेक का नाश हो जाता है ।[10] भिखारी दास भी व्यक्त करते हैं कुकर्मों का फल अवश्य मिलता है, दावाग्नि वन से पैदा होती है ।[11]

<u>नैसर्गिक</u> - इन कवियों ने कुछ नीति तत्व विधि के विधान से लिए हैं । इन में साधारण विवेचन होते हुए भी उक्तियाँ सुन्दर बन पड़ी हैं । गोस्वामी तुलसी दास भी कहते हैं, हानि, लाभ, जस, विजय, ज्ञान , मान, सम्मान, धाम, धाम में पूर्विज्ञाता , रुचि और अरुचि यह सब विधि के विधान से होते हैं ।[12]

१- दीनदयाल गिरि - कुण्डलिया तरंगिनी पद सं० पृ० सं० १००।८१ .
२-४ सतसई सप्तक रसनिधि सतसई पद सं० पृ० सं० ६२१।२२०, ६६१।२२४, ३०३।२२४
५-७ " बिहारी सतसई " ४३२/५४, ३४१/५०, ३२१/५२
८-१० " मतिराम सतसई " ६३२/१५५, ६५६/१५७, ६६१/१२२.
११- भिखारी दास काव्य निर्णय पृ.सं. १५०
१२- सतसई सप्तक - तुलसी सतसई पद सं० पृ० सं० ५०५।२४.

इस के अतिरिक्त

प्रेम बैर अरु पुन्य अघ जस अपजस जय हान ।

बात बीज इन सबन को तुलसी कहहिं सुजान ।[१]

कहते हैं जैसा होना होता है वैसा ही होता है, होनी यदि स्वयं नहीं आती, तो वह स्वयं उस के पास जाता है ।[२] रहीम कवि का कथन है कठपुतली के सदृश, कर्म जीव को नचाते हैं ।[३] अपने कर्म अपने हाथ में हैं पर भावी अपने हाथ में नहीं है ।[४] भावी प्रबल होती है ।[५] औषधि करने से भी काल नहीं जीता जा सकता है ।[६] कहते हैं

जो रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि ।

चंद दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि ।[७]

वृन्द कवि की उक्ति है, उद्यम करने से क्या फल, जो भगवान ही प्रतिकूल हों ।[८] विधाता ने सब अच्छी वस्तुएँ दोष सहित बनाई हैं कामधेनु को पशु, मणि को कठोर, सागर को खारा, और चंद्रमा को क्षीण होने वाला ।[९] दिनों के फेर के कारण सुखदाई वस्तुएं दुख देने लगती हैं ।[१०] जो समय विचार कर काम करता है उस का काम पूरा होता है ।[११] बुराई करने पर भी सुख कैसे मिल सकता है ।[१२] सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख होता है ।[१३] यह सच बात है कि देने से सहस्र गुण होकर मिलता है ।[१४] जैसी भवितव्यता होती है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है ।[१५] कर्म ही सब को झकझोर देते हैं ।[१६] विधि के उलटे लिखे हुए अंकों को कोई मेट नहीं पाता है ।[१७]

१- सतसई सप्तक तुलसी सतसई पद सं० पृ० सं० १०२।४८०

२- तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० ४५०।१५४

३-७ रहीम कवितावली पद सं० पृ० सं० ८२।१०, १०४।१३, १२७।१५, २२५।२६, ७५।१,

८-११ सतसई सप्तक - वृन्द सतसई पद सं० पृ० सं० ११।२८७, ६४०।३३६, ४०।२९०, ~~२२०।३०९~~ २५०।३०८

१२-१७ " " " १४८।२९८, ११७।२९५, १५०।२९८, ~~१५३।२९६~~

जाहि मिले सुख होतु है, ता बिछुरे दुख होय ।
सूर उदै फूलै कमल, ता बिन सकुचै सोय ।[1]

दीनदयाल गिरि का कहना है सब सम्बन्धी अवश्य तुम्हारा साथ छोड़कर चले जायेंगे ।[2] रसनिधि कवि कहते हैं -

रूप दुपहरी छाँह कब ठहरानी इक ठौर ।[3]

नीति परक कवित्त सवैयों की परम्परा -

वैयक्तिक आचरण - संतों की विचारधारा नीति की ओर बराबर ही रही है । व्यक्ति के लिए आचरण बड़ी महत्ता रखता है । सुन्दर दास का कहना है व्यक्ति को निश्चिंत रहना चाहिए जिस ने पेट दिया है वह स्वयं ही पेट भरेगा ।[4] उन का कहना है -

पान उहै जु पियूष पिवै नित,
दान उहै जु दरिद्र हूं भानै ।
कान उहै सुनियै जस के सब,
मान उहै करिहै सनमानै ।
तान उहै सुर तान रिझावत,
जान उहै जगदीशहिं जानहि ।
घ्रान उहै मन बेधत सुन्दर,
ज्ञान उहै उपजै न अज्ञानै ।[5]

इस में शरीर के सब अंगों के कर्तव्य कर्म बता दिए हैं । कहते हैं

१- सतसई सप्तक - वृन्द सतसई पद सं० पृ० सं० ३००।३१५
२- दीनदयाल ग्रंथावली पद सं० पृ० सं० १६४।८६
३- सतसई सप्तक रसनिधि पद सं० पृ० सं० २१९।१८२
४- सुन्दर विलास विश्वास को अंग पद सं० १ पृ. सं. ४८
५- सुन्दर विलास पद सं० १ पृ. सं. २४

दुष्ट स्वभाव को छोड़ देना चाहिए ।[१] अक्षर अनन्य का कहना है - एक ही साचे सब सधते हैं ।[२] गंग कवि ने आचरण पर बड़ी विशद चर्चा की है । उन का कहना है जो राजा नीति पर चले वह राजा होता है । काम जो ठीक करे तभी नौकर की पहचान होती है । बातों में ही पुत्र कुपुत्र पता चलता है । स्त्री का स्नेह नेत्रों में झलकता है ।[३] एक जगह कहा है

बुरो प्रीति को पंथ, बुरो जंगल को बसिबो ।
बुरो नारि को नेह, बुरो मूरख को हंसिबो ।
बुरी सेन की सेव, बुरो भगिनी घर भाई ।
बुरी कुलच्छन नारि, सासुरो बसे जमाई ।
बुरो पेट कंगाल है, बुरो जंग है भागनो ।
---------- सब से बुरो है मांगनो ।[४]

गंग कवि कहते हैं अग्नि का निवारण जल की बूंद से, सूर्य के ताप, का निवारण छत्र से हो सकता है । सबकी औषधि है पर स्वभाव की कोई औषधि नहीं बनी है ।[५] समय पर सीख देने वाला बहुत कम मिलता है ।[६]

सेन कवि ने निरभिमानता, सुशील स्वभाव, मधुर भाषण तथा विनय के महत्व पर बल दिया है ।

"है अभिमान तजे सनमान वृथा अभिमान को मान न कहिये"। अन्त में कहते हैं । "सैन कहीस लखैन जो सीख तभी रहिये सब ऊंची कहैये"।

१- सुन्दर विलास पद सं० ४ पृ० सं० ५८ .

२- अक्षर अनन्य ज्ञानयोग पद सं० १६ पृ० सं० ६

३-५ गंग के कवित्त पद सं० पृ० सं० १९।५, २५१।६६, २५२।६६

६- " " " " " " " २६६।६८

७- सेन सुधा पद सं० पृ० सं० १६।८

बोधा कवि कहते हैं, जो हिले मिले उस से मिलिए । जो गर्व दिखावे उसे गर्व दिखाइए । जो आप को सराहे उसे सराहिए । जो तुम्हें न चाहे उसे न चाहिए ।[1] भिखारी दास जी ने नीर क्षीर के समान प्रीति करने को कहा है । दूध अपने साथ ही जल को भी बिकाता है । जब अग्नि दूध को जलाने लगती है तब वह अपने को जलाता है ।

नीर की पीर निवारन कारन

छीर घरीहि घरी उफनात है ।[2]

आध्यात्मिक - सुन्दर दास जी कहते हैं जड़ देह रूपी मन्दिर में चैतन्य देव आत्मा है यह समझ कर मन लगा । इस मन्दिर को बिगड़ते देर नहीं लगेगी इस से देव की आराधना करो ।[3] कहते हैं संसार में जितने जीव हैं सब का प्रतिपालन होता है पर तुझे विश्वास नहीं होता । पता नहीं किस धोखे में भूल रहे हो क्यों नहीं प्रभु के भरोसे बैठ जाते हो ।[4]

सुंदर कहत यक, प्रभु के विस्वास बिनु ।

जातहिं यूं वृथा सठ, पचि के मरतु है ।[5]

मलूक दास जी कहते हैं तू साईं को क्यों भूल गया । जिसका नमक खाता है उसी को भूल गया । कहता मलूक अब तोबा कर साहेब से, छांडि दे कुराह चलि जाहि घर आपा है ।[6]

रसखान कवि का कहना है चाहे इतनी संपत्ति हो जावे कि कुबेर को भी संकोच होने लगे, चाहे कामदेव का सा रूप हो जावे, भोग देखकर इन्द्र ललचाने लगे, पर जब तक राधिका रानी का रंग चित्त पर नहीं चढ़ता तब तक सब व्यर्थ है ।[7]

१- इश्कनामा बोधा कृत पद सं० ८ पृ. ५४६ - कविता कौमुदी भाग १
२- काव्य निर्णय पृ० १५० ११६ छन्द. १२
३-५ सुन्दर विलास १९, ७, १३ पृ. सं० ११४, ४७, ४८
६- मलूक दास की बानी पद सं० ७ पृ० सं० २९
७- रसखान सुधा पद सं० १० पृ० सं० ४७

इसी भाव को ब्रह्म कवि ने व्यक्त किया है इतने बड़े प्रभु का ध्यान करने से ही मन में वह आसक्त है पर तुम उसे लाते नहीं । उसे पहचानने में ही सुख मिलता है वह तुम करते नहीं । बार बार तुम से कहते हैं जो तुम्हें जानना चाहिए उस को तुम जानते नहीं ।[1] सेनापति कवि का कहना है जिन्हों ने प्रह्लाद का पालन किया, गज तथा ग्राह को उबारा, जिसको सनकादि वेद आदि गाते हैं ऐसे रघुवीर को ही अपने कष्ट सुनाना चाहिए । और दूसरा कोई दुख को हरने वाला नहीं है ।[2] वह व्यक्ति के व्यवहार से व्यथित है उस से कहते हैं

तोरि मरी चाउ करी कोटिक उपाउ
सब होत है अचाउ, चाउ चित्त कौं फलत है ।
हिय न भगति जागी, दुख गति तन
तीरथ चलत मन तीरथ चलत है ।[3]

देव कवि ने ब्रह्म की प्राप्ति कैसे होती है यह न कह कर बाह्याचारों का खंडन किया है तथा कहा है

साधु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यौ,
पाइयौ प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं ।[4]

रघुनाथ कवि को कुरुक्षेत्र में ब्राह्मणों को दान देने, जप तप तीर्थ आदि सब व्यर्थ जान पड़े । केवल राम नाम लेने से ही फल मिल जाता है ।[5] दास कवि ने वर्णन किया है देश के बिना राजा, सूर्य के बिना कमल, मणि बिना सर्प, चंद्रमा बिना रात, तेल बिना दीपक, घर के बिना संपत्ति, कवित्त बिना

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग ब्रह्म पद सं० ५ पृ० सं० ३४५
२-३ सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० पृ० सं० ३।९७-९८, ३२।१०६
४- देव सुधा पद सं० पृ० सं० १७।८
५- हजारा - रघुनाथ पद सं० पृ० सं० १९।२२

भिखारी, छंद के बिना कविता, जल के बिना मछली, जैसे शोभायमान नहीं है उसी तरह 'दास भगवंत बिनु संत अति व्याकुल बसंत बिन लतिका सुकंत बिनु कामिनी है'।[1] एक जगह कहा है सेमल के फूल पर तू काहे भूला है । आशा लिए हुए दुखी होकर तू बिलखता हुआ फिर रहा है ।[2]

दीनदयाल कवि ने कहा है व्यक्ति चाहे राजकाज, धन धाम में अनुरक्त रहे, चाहे नृत्य गान आदि में लगा रहे, किंतु इन सब की अनुरक्ति व्यर्थ है यदि वह अंत में राम से न अनुरक्त हुआ ।[3]

मानसिक - सुन्दर दास जी का कहना है हे मूर्ख तू क्यों दिवा भ्रमता हुआ क्यों फिरता है । कितना भी धन तेरे पास भर दिया जावे पर जब तक मन में सन्तोष नहीं होगा तब तक सब व्यर्थ है ।[4] कहते हैं कितने दिन से समझा रहे हैं पर मन मानता ही नहीं । विषयों के सुख में भूला रहता है । मन के न तो हाथ है और न पांव फिर भी पता नहीं कहां से निकल जाता है ।[5] सारी त्याग तपस्या व्यर्थ है यदि मन न मारा जावे ।[6]

रसखान की इच्छा है कि यदि वह मनुष्य हो तो ब्रज में रहे, पशु हो तो नंद की गायों के बीच में रहे, पत्थर हों तो उसी पहाड़ का जिसको कृष्ण जी ने उठाया तथा यदि पक्षी हों तो बसेरा करौं कालिंदी के कूल कदंब की डारन ।[7]

ब्रह्म कवि का कहना है कि हे मन तू क्यों सोच करता है

१- काव्य निर्णय पृ० १६०-१६१

२- रस-सारांश - दास पृ० सं० ~~१८०~~ ८० पद सं. ५८१

३- दीनदयाल पद सं० ८४, पृ० सं० १५७

४-६ सुंदर ग्रंथावली - सुन्दर विलास पद सं० ५, ९, ११ पृ. सं. ४४४, ४४५, ४४

७- रसखान सुधा पद सं० ३, पृ० सं० ४५

जब दांत न थे तब दूध पियो,

अब दांत भये कहा अन्न न देहै ।

जीव बसेहि जल में औ थल में

तिनकी सुधि लेइ सो तेरिहु लैहै।

जान को देत अजान को देत

जहान को देत सो तोहू कूं देहै ।

काहे को सोच करै मन मूरख

सोच करै कछु हाथ न ऐहै ।[१]

सामाजिक - सुन्दर कवि कहते हैं कि ज्ञानी बाहर भीतर शुद्ध होता है उस की कोई बराबरी नहीं कर सकता, वैसा ही व्यक्ति होना चाहिए ।[२] नारी की निंदा की है । कोई व्यक्ति ही नारी रूपी विष बेलि से बच जाते हैं ।[३] बालू से तेल नहीं निकल सकता । वर्षा होने से पत्थर नहीं भीजता । ऊसर में अन्न नहीं होता इसी तरह मन का असाध रोग नहीं जाता ।[४]

ब्रह्म कवि ने कहा है जो व्यक्ति अपना कर्तव्य पालन नहीं करता वह डुबोने लायक है[५]। इन्होंने प्रत्येक बुरी से बुरी वस्तु का भी उपयोग होता है इस के लिए निराली सूझ का परिचय दिया है ।

टूटे पर ईस ताकी मिस्त्री गुर्ह बंद करो,

ताको है प्रभाव देवदेविन चढ़ाइये ।

फूटे के कपास पर राखत है आलम को,

ताके होत ~~बसन~~ वस्त्र (सन ?) कहां लौं गिनाइये

सड़े जब सन ताके स्वेत बने कागज़ के

तापर कुरान औ पुरानहू लिखाइये ।

कहे कवि ब्रह्म सुनो अकबर बादसाह

टूटे फूटे सड़े ताको या बिधि सराहिये

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि परिशिष्ट भाग ब्रह्म पद सं० पृ० सं० ३५।३५४

२-४ सुन्दर विलास प०अ०प०ज० १८/१५, २/४२, १८/१३

५-६ अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० ३५६।७६, ३५६।७८ - ब्रह्म कवि

गंग कवि ने दुर्जनों का स्वभाव, स्त्रियों की चंचलता, मूर्ख मित्र आदि का वर्णन किया है । उन का कहना है क्रूर से सदा दूर रहना चाहिए ।[१] जिसके गांठ में रुपिया है वही समाज में बड़ा है ।[२] चंचल नारी की प्रीति अंगार के समान है ।[३] मूर्ख को जैसे अंधे को आरसी दिखाना है ।[४] आपस की फूट में किसी का भला नहीं होता ।[५] मूर्ख मित्र करना न करना बराबर है ।[६] ऐसे ही कहते हैं

लहसुन गांठ कपूर के पुट में,
    बार पचासक धोय मंगाई ।
केसर के पुट के गंग सुगंधन
    वृच्छ की छांह सुखाई ।
मोंगरे माहिं लपेट धरी वही
    बास कुबास हि आइ जु आई।
ऐसे ही नीच को ऊंच की संगति,
    कोटि करो पर कुटेव न जाई।[७]

दास जी का कहना है कि वे धन्य हैं जो दूसरों के लिए दौड़ते हैं, जो अपना भला कर देता है उस का गुण गाया करते हैं । यदि हो सकता है तो बदले में उपकार भी करते हैं । दूसरों के लिए प्राण तक न्यौछावर कर देते हैं ।[८] दूसरों का भला करने वाला तथा कष्ट उठाने वाला आम का वृक्ष होता है । ऐसा ही व्यक्ति समाज में होना चाहिए ।[९] गांव में जवाहर के गुण सब नहीं जानते हैं । रूपक के द्वारा इस भाव को व्यक्त किया है ।

१-७ श्री महा कवि के गंग के कवित्त पद सं० पृ० सं० ३५१।६३, २३।६, २१।६, ५।२, ४।२, ३५४।६६, ३५५।६६

८-९ रस सारांश - भिखारी दास पृ० सं० १६०, ~~[illegible]~~ २० पद सं. ४४२

ल्याओ कछु फल मीठे बिचारि कै

दूरि ते दौरे सबै ललचाने ।

हाथ लै चाखि कै राखि दयो

निस बा दिल बोलि सबै अलसाने ।[१]

इसी तरह समाज में सज्जनों की परख बहुधा नहीं हो पाती है ।

पारिवारिक - प्रहृम की पारिवारिक नीति भक्त कवियों जैसी है । वे उन के प्रति कर्तव्य करने में आनन्द का अनुभव नहीं करते । परिवार में कोई पति कहता है, कोई पिता कहता है कोई पुत्र कहता है पर व्यक्ति उन के हाथ का गेंद बन जाता है ।[२]

गंग कवि ने कुपुत्र, ~~कुलच्छन~~ नारी, लड़ाका पड़ोसिन की निंदा की है ।[३] बहन के घर रहने वाला भाई और सास घर रहने वाले जमाई की बुराई की है[४]। इन्होंने ने अपने विचार राजनीति के विषय में भी व्यक्त किए हैं । आज अधिकार पा गए हैं तो घमंड कर रहे हैं । न्याय को नहीं जानते इसी से मारते रहते हैं । पर ये सेवक वैसे ही अपने स्थान से हटेंगे कि हाथ मींजते ही रह जाएंगे ।

कहा भयो बिना भार गहुदी के मुसद्दी भए ,

बहुदी के करमहार रहुदी मिल जाएंगे ।[५]

नैसर्गिक - इन कवियों ने कुछ नैसर्गिक विषयों को भी माना है । गंग कवि ने कहा है कर्म की रेखा छिपाए नहीं छिपती, चाहे रात होने से दिन का तेज छिप जाए, ग्रहण से सूर्य छिप जाए, हाथी देखकर सिंह छिप जाए, हरि नाम जपने से पाप कट जाए, कुपुत्र के होने से कुल धर्म छिप जावे ।[६] दास कवि कहते हैं

- -

१- रस सारांश - भिखारी दास पृ० ~~१४१~~ ८० पद सं. ५६३

२- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि पृ० ३५७ पद सं. ८४

३-४-५ श्री महाकवि गंग के कवित्त पद सं० १६ पृ० ५, पद सं० ३ पृ० १ पद सं. २२१ पृ. सं. ६५

६- गंग के कवित्त पद सं० २६१ पृ० ७०

कि काल बानर लौं नर लोगनि को बहु नाच नचावत सोई रहा है ।[1]

नीति काव्य में संतों ने संसार की ओर से व्यक्ति को हटाया है । संसार को सेमल के समान, कंचन कामिनी की भर्त्सना तथा शरीर और विविद्या को भी निरर्थक समझा है । भक्तों ने व्यसनों की बुराई की है पर विद्या धन प्राप्ति, सज्जन आदि की मान्यतायें दी हैं । शृंगार काल के [illegible] दरबार कवियों ने दुराशा, विद्या, स्वामिभक्ति तथा [illegible] पर विचार प्रगट किए हैं पर भाव भक्ति का खंडन नहीं किया है । इस के अतिरिक्त इस काल में धार्मिकता का अभाव एवं नैतिकता का प्राधान्य है ।

- -

१- पद्माकर - [illegible] पृ० [illegible] छं. ८० पद्य सं. ५४४

<u>कुंडलियों में नीति परम्परा</u>

<u>वैयक्तिक आचरण</u> - पलटू साहिब का कहना है व्यक्ति को चाहे हारे चाहे जीते अपनी ओर से कर्तव्य करना चाहिए । चाहे जितनी तीव्र वेग से वायु चले पर आगे बढ़ते ही रहना चाहिए । जो घाव लगने पर भी रणक्षेत्र से नहीं हटता, गिरने पर भी सम्हल कर उठ जाता है वही शूरवीर है । नाम से सच्ची प्रीति कर आगे बढ़ते रहना चाहिए ।[1] कहते हैं जो कोई धैर्य रखता है उस की प्रीति बढ़ती ही जाती है । 'ज्यों ज्यों भीजै कामरी त्यों त्यों गरुई होय' ।[2] इस के अतिरिक्त लोक लाज कुछ छाँड़ि कै करि लै अपना काम ।[3] तथा मूर्ख के समझाने में अपना समय क्यों खोते हो ।[4] ऐसा कहा है ।

गिरधर दास जी का कहना है जो कोई आवे उस का आदर यथा उचित करना चाहिए । फल फूल से उस का सत्कार करे, पता नहीं कौन आया हो ।[5] बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिए नहीं तो पीछे पछतावा होता है । जग में हंसी होती है तथा अपने मन में खटकता है ।[6] जो बड़े का साथ छोड़ कर नीच के घर जाता है उसकी बड़ी फजीहत होती है ।[7] मोटे वृक्ष की छाया में रहना चाहिए, क्यों कि पत्ती झरने के बाद भी छाया रहती है । पतले वृक्ष में एक दिन धोखा हो सकता है ।[8] यहाँ मोटे वृक्ष और पतले वृक्ष से महान व्यक्ति और तुच्छ व्यक्ति से अभिप्राय है । कहते हैं

पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढ़ो दाम ।
दोनों हाथ उलीचिए यही सयानों काम ।[9]

दानी होने के कारण में विशेषता है

१-४ पलटू साहिब की बानी पद सं० ११०, १३५, १३१, १२९ · पृ· सं· ३७, ५३, ५१, ५१

५-९ गिरधर कुंडलियाँ पद सं० पृ० सं० ७५।१३, ६९।१९, ३८।१३, ४२।१६, २७।१९

दीनदयाल कवि ने अन्योक्तियों में नीति तत्व व्यक्त किया है वह समुद्र को कहते हैं कि व्यर्थ गरजने से क्या लाभ । प्यासे तुम्हारे पास घूमते रहते हैं और तुम्हें लज्जा नहीं आती । पर वास्तव में कवि उन व्यक्तियों की ओर संकेत कर रहा है जो केवल बात ही करते हैं किसी का भला नहीं करते ।[1] ऋतु राज के समान जो व्यक्ति होते हैं वे संसार को सुख पहुँचाते हैं वे 'मनन सुखद सुख दैन विमल सिलई हितकारी'।[2] व्यक्ति आम के वृक्ष की तरह जितना झुकता है उतनी ही उस की महिमा बढ़ती है । सब को सुख देने वाला होता है ।[3]

<u>वैयक्तिक - आध्यात्मिक</u> - पलटू साहिब ने गुरु की शरण में जाने को कहा है । उन के विचार से सत्संगति में रहना चाहिए । ऐसा अवसर खोना नहीं चाहिए ।[4] कहीं कहीं अन्योक्तियों में भी अपने विचार प्रगट किए हैं । 'फूली है वह केतकी भौंरा लीजे बास' से उन का अभिप्राय व्यक्ति की गुरु की शरण में जाने से है । ऐसा सुअवसर फिर न मिलेगा ।[5] भजन के प्रताप से नीच नीच से ऊँच पद पर पहुँच जाता है । जैसे पारस के साथ लोहा सोना हो जाता है ।[6]

गिरधर कवि ने शरीर को मलागार तथा प्रेम के अयोग्य कहा है ।[7] औषधि सेवन की जगह गंगाजल पीने को उचित कहते हैं ।[8] इन्हों ने अन्य कवियों की तरह आत्मा परमात्मा को एक समझा है । काल की महत्ता दिखाते हुए कहते हैं 'चित के गयो जो काल हाथ में रहिगो चुक्का' ।[9]

दीनदयाल गिरि ने कहा है कि यौवन का मद नहीं करना चाहिए क्यों कि यौवन दो दिन के नैहर के समान है ।[10] जो जो प्रीतम के घर जाता है वह वापस नहीं आता है कहते हैं 'जनमादिक सुख दुख नहीं पर कहिये काहीं' ।[11]

१-३ दीनदयाल - अन्योक्ति कल्पद्रुम पद सं० पृ० सं० ३७।२०९, ४।१९३, १६।२१४

४-६ पलटू साहिब पद सं० ५१, ११४, १४३ पृ० सं० २०, ४३, ५६
वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई २०७ वि

७-९ गिरिधर कुंडलियां, पृ० सं० १७०।३८०, ९४।३००, ।१३५।४०८

१०-११ दीनदयाल अन्योक्ति माला पद सं० पृ० सं० ९०।११४; १०९।११७

<u>वैयक्तिक मानसिक</u> - पलटू साहिब जल और मीन के समान प्रीति करने को कहते हैं । मछली को यदि दूध में भी डाल दिया जावे तभी भी प्राण को देती है । ऐसी प्रीति करनी चाहिए ।[1] उन का कहना है कि हरि का दास कहाने के बाद कोई अपराध नहीं करता, जैसा भी दुख पड़ता है वह सहता रहता है ।[2] ज्ञान स्वयं ही होता है समझाने से कुछ लाभ नहीं होता । हंस को कोई ज्ञान नहीं सिखाता । अलख पक्षी को कोई नहीं बताता । सिंह के बच्चे को कौन उपदेश देता है ।[3]

गिरधर कवि ने कहा है प्रीति की रीति बड़ी कठिन है ।[4] नैनों की नोकें जिसके शरीर में लग जाती हैं उस का शरीर बेध देती हैं अतः समझ बूझ कर चलना चाहिए ।[5] दीनदयाल गिरि ने जल और मीन की प्रीति व्यक्त करने के लिए अन्योक्ति में कहा है कि जल वियोगी की पीर नहीं जानता तभी मीन को अलग कर देता है ।[6]

<u>सामाजिक</u> - इन कवियों ने साधु, पाखंडी, दुर्जन, वर्ण जाति, स्त्री, पर नारी, पंडित मूर्ख, गुरु शिष्य, पड़ोसी, संग कुसंग आदि विषयों पर अपने विचार लिखे हैं । संतों की सहिष्णुता तथा परोपकारिता के लिए पलटू साहिब ने कहा है कि संत कपास के समान है । कपड़ा बनने तक में जैसे रुई को चरखी में ओटने, धुनिया को धुनने, जुलाहा को कातने, धोबी को भट्टी, दरजी को कपड़ा कटने में कष्ट होता है वैसे ही संत को जीवन में कष्ट सहना पड़ता है ।[7] साधु महात्मा हरि के समान होते हैं ।[8] चंदन तथा चंद्रमा की तरह शीतल होते हैं ।

१-३ पलटू साहिब पद सं० ७३, १०९, १४९ पृ० सं० 28, 43, 52

४-५ गिरिधरराय कुंडलियाँ - पद सं० पृ० सं० ५५।१७, ५६।१७

६- दीनदयाल - अन्योक्तिमाला पद सं० पृ० सं० १०६।११८

७- संत सुधासार सं० २ पृ० १२३ - पलटू साहिब

८- पलटू साहिब पद सं० ३१ पृ० सं० 12

जो कोई आता है मधुर वचन बोलते हैं । संत के दर्शन से तीनों ताप मिट जाते हैं ।[1] सत गुरू के लिए कहते हैं कि वे सब को कुछ न कुछ देते ही हैं लेते नहीं । पर यदि उन से कोई कुछ न ले पावे तो उन का दोष नहीं है । जैसे

> मलयागिरि की बास बांस में नहीं समावे ।
> पलटू पारस क्या करै जो लोहा खोटा होय ।[2]

गिरधर कवि का कहना है कि कृतघ्न के लिए कितना भी कर दो वह किसी का अहसान नहीं मानता ।[3] ऋणी का एक चित्र खींचा है ।

> झूठे मीठे वचन कह ऋण उधार ले जाय ।
> लेत परम सुख उपजै लैके दियो न जाय ।
> लैके दियो न जाय ऊंच अरु नीच बतावै ।
> ऋण उधार के रीति मांगते मारन धावै ।
> कह गिरधर कविराय जानि रहै मन में रूठा ।
> बहुत दिना ह्वै जाय कहै तेरा कागज झूठा ।[4]

कहते हैं बदी करने से कुछ लाभ नहीं । केवल उस में अपयश होता है जोकि खजूर की लकीर के समान हो जाती है ।[5] कहते हैं गुरू, पंडित, मित्र, बेटा, वनिता, पंवरिया, यज्ञ करने वाले, राज मंत्री, ब्राह्मण, पड़ोसी, वैद्य, रसोइया इन तेरहों से शत्रुता नहीं करनी चाहिए ।[6] संसार में सब का व्यवहार मतलब का होता है । जब तक पैसा होता है तभी तक सब मित्र रहते हैं ।[7] गुण के ग्राहक सब होते हैं बिना गुण कोई किसी को नहीं चाहता ।[8]

दीनदयाल कवि ने समाज का चित्रण अन्योक्ति में किया है । गर्मी की ऋतु में भौंरा गुलाब की ओर अभी नहीं देखता पर बाद में जब कली होगी तब यही

१-२ पलटू साहिब पद सं० २१, ८० पृ० सं० ८, ३४
गिरिधरदास प्रकाशक- रामकुमार बुक डिपो, लखनऊ

३-५ ~~गिरधर~~ कुंडलियां, पद सं० पृ० सं० १०।२८, १९।१, २४।८

६-८ " " १५।१, ३५।११, २६।१

बैरी पड़ेगा । इस से यह भाव निकलता है कि मित्र को सुख दुख में एक समान व्यवहार करना चाहिए ।[1] स्वार्थ के सब साथी होते हैं इस को व्यक्त करने के लिए कहा है कि पक्षियों का कलरव सुनकर सरोवर उसी में तल्लीन न हो जावे । दुर्दिन होने पर सब छोड़ कर चले जायेंगे ।[2] इन्होंने बाढ़ि, क्षत्रिय, वणिक, माली, कुलाल, दरजी आदि व्यवसायियों पर मनोरम अन्योक्तियाँ रचीं । इस में इन्होंने व्यवसाय विवेक से प्राप्त शिक्षा की ओर संकेत किया है ।

हे पांडि यह बात की, को समुझै या ठांव ।
इहै न कोऊ है सुखी, यह गुमानन को गांव ।[3]

स्त्रियों के सम्बन्ध में इन की नीति संकीर्ण है । वे उन्हें आत्मा की शाश्वत यात्रा में बाधक तथा शिव की बलकी कहते हैं ।[4]

<u>पारिवारिक</u> - भीखा साहिब का कथन है कि सुत, कलत्र, धन, धाम सब स्वप्न है ।[5] गिरधर कवि का कथन है कि गृहस्थ जीवन झमेला है क्यों कि दिन रात घी तेल नमक की चिंता करनी पड़ती है । मनुष्य आत्म चिंतन नहीं कर पाता ।[6] बेटा, बेटी, भाई, पिता, श्वसुर आदि सब मतलब के यार हैं ।[7] लेकिन साथ ही में भाई को कष्ट देने का मना करते हैं । अपने पास ही सदैव रखना चाहिए ।[8]

इन का कहना है कि घर की फूट सब को नष्ट कर देती है ।[9] जो पुत्र अपने बाप से लड़ कर ससुराल चला जाता है, कुल धर्म का नाश कर देता है, परिवार का नाश करता है ऐसे पुत्र से तो अच्छा माँ का बाँझ होना ही है ।[10]

१-३ दीनदयाल अन्योक्ति कल्पद्रुम पद सं० पृ० सं० ५७।२०७, ४१।२०३, १।२२१
४- हिंदी में नीति काव्य का विकास - दीनदयालगिरि पृ.सं. ४६२ - डा० रामस्वरूप शास्त्री
५- भीखा साहिब की बानी पद सं० १७
६-८ गिरधर कविराय, कुंडलियाँ पद सं० पृ० सं० २६२।९०, २५७।८८, ७३।६१
९-१० कुंडलिया गिरिधरराय " ६५।२०, ५।३

<u>स्वाभाविक</u> - गिरधर कवि कहते हैं कि उत्तम क्यारी से कुछ नहीं होता, जैसा बीज होता है वैसा ही फल होता है । 'सींचे नीर गुलाब से लहसुन तजे न गंध'।[१] सिंहनी अपने बच्चे को सिखाती है कि चाहे फाका करना पड़े पर जिन हाथों से हाथी मारा जाता है उन हाथों से मेढक न मारना ।[२]

दीनदयाल कवि केहरि की अन्योक्ति में कहते हैं कि बुढ़ापे से कुल बढ़ जाता है ।[३] चपला की संगति से घन का स्वभाव भी चंचल हो जाता है

<u>नैसर्गिक</u> - भीखा साहिब का कहना है कि बुद्ध निश्चय कर के हरि का भजन करे, जो होना होगा वह तो होगा ही ।[५]

गिरधर कवि का कहना है कि जीना मरना अपने हाथ में नहीं है ।[६] अवसर पड़ने पर दुख सहना ही पड़ता है ।[७] 'अवश्यमेव भोक्तव्यं है, कृत कर्म शुभाशुभ जोय'।[८] दीनदयाल जी ने भाग्य, समय का फेर तथा बुरे दिनों का वर्णन किया है । प्रभु ही सब नाच नचाने वाले हैं, हम तो कठपुतली मात्र हैं ।[९]

तेरी है कछु शक्ति नहीं, दास जीर को मेल ।
करै कपट पट ओट में, वह नट सब ही खेल ।[१०]

करमगति से मरकत पामर के हाथ पड़ जाता है ।[१०] वह कहते हैं भाग्य के बिना कुछ नहीं मिल सकता ।[११]

१-२ गिरिधरराय कुंडलियां, पद सं० पृ० सं० ६२।१९, ३०।१०

३-४ दीनदयाल - अन्योक्ति कल्पद्रुम पद सं० पृ० सं० ४६।१०३, ६४।१०१

५- भीखा साहेब की बानी पद सं० ६

६-७ गिरिधरराय कुंडलियां पद सं० पृ० सं० ११९, ५९।१८, १०२।३९

८- गिरिधर कविराय कुंडलिया पृ. ३८।१०२

९-११ दीनदयाल गिरि - अन्योक्ति कल्पद्रुम पद सं० पृ० सं० १३।३३४, ३।२११, [illegible]

गिरधर कवि कहते हैं कि स्वप्न में भी अभिमान मत कीजिए । दौलत पाहुन के समान चार दिन रहती है[1]। चिंता रूपी ज्वाला शरीर को जला डालती है । ऊपर से नहीं दिखाई देता पर अंदर अंदर धुआं करती रहती है ।[2] दीनदयाल कवि कहते हैं कि बिधि बिना कुछ नहीं मिलता जो कुछ पहले देते हैं तब बदले में उन्हें सब नवीन पदार्थ मिल जाते हैं ।[3] लोभ अच्छा नहीं होता । अलि से कहते हैं अब तो रात हो गई है कमल की आशा छोड़ दो ।[4] पलाश से कहते हैं थोड़े दिन के फूलने में गर्व मत करो । थोड़ा झुकना चाहिए ।[5] केला को चेतावनी देते हैं कि तुम्हारे समान बाने कितने चले गए तुम क्यों फूल रहे हो । एक जन्म के लागि कहा झुकि झूमत रम्भा ।[6]

- -

१-२ गिरधर कुंडलियाँ पद सं० पृ० सं० ७५।१८, १०।४

३-६ दीनदयाल गिरि - अन्योक्ति कल्पद्रुम पद सं० पृ० सं० १६।९५, ५३।५०१
२४।२१६, २२।२१६

नीति परक सोरठे

वैयक्तिक आचरण - कबीर दास जी कहते हैं जो गहरे पानी में घुसकर ढूंढने का प्रयत्न करता है वही कुछ पा सकता है । जो डूबने के डर से किनारे बैठा रहता है उसे क्या मिलेगा ।[१] जो कोई इशारे से समझ सके उसे कुछ कहना भी न चाहिए । जो कहने से भी समझ न पाए उसे कुछ कहना व्यर्थ है ।[२] मांगने को मरने के समान कहा है ।[३]

गोस्वामी तुलसी दास जी कहते हैं अपवित्र वस्तु का भी यदि वह काम योग्य होती है तो आदर सत्कार किया जाता है । यथा

पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर ।
कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम ।[४]

रहीम कहते हैं नीच व्यक्ति का साथ अंगार के समान छोड़ देना चाहिए । यदि वह जलता है तो जलाता है और यदि ठंडा होता है तो कालिख लगती है ।[५]

आध्यात्मिक नीति - आवागमन का निवारण करने के लिए जीव को सच्चा गुरू ढूंढना चाहिए ।[६] जिन की आखों में राम का नाम सुनकर जल नहीं आ जाता उन की आखों में धूल डालो ।[७] कहते हैं

कलि पाखंड प्रचार प्रबल पाप पांवर पतित ।
तुलसी उभय अधार राम नाम सुरसरि सलिल ।[८]

१-३ कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ४४।१०९, ९९।१००, १८।१०७

४- तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० ३००।१२७

५- रहीम सोरठे " २।९९

६- कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० १२७।१९

७-८ तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० ३५।२६, ५६६।१९४

सामाजिक - कबीर जी कहते हैं जो विचार कर नहीं बोलता दूसरे की आत्मा को कटु वचनों से कष्ट पहुँचाता है वह साधु नहीं है ।[१] मूर्ख को यदि ब्रह्म के समान गुरु भी मिल जावे तब भी ज्ञान नहीं होता ।[२] गोस्वामी जी कहते हैं

> जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ
> मन क्रम वचन लबार ते बकता कलिकाल महुँ

रहीम कहते हैं कि जगत की रीति हम ने यह देखी है कि गन्ने की तरह जहाँ गांठ पड़ गई वहाँ रस नहीं होता [४], अर्थात् जहाँ मन में मालिन्य आपस में आ जाता है वहाँ प्रीति नहीं होती

शृंगार परक सोरठे

रहीम के दो दोहे शृंगार परक मिलते हैं । और कवियों के तो सोरठे नहीं मिले । नायिका घूम कर मुस्करा कर चली गई वह मानो दीपक की बत्ती उकसा गई हो ।[५] कहते हैं

> गई आगि उर लाय, आगि लैन आई जु तिय ।
> लागी नाहि बुझाय, भभकि भभकि बरि बरि उठै ।[६]

नीति परक छप्पय की परम्परा

वैयक्तिक - नीति परक छप्पय नरहरि के मिलते हैं । इन्हों ने जीवन के सभी क्षेत्रों पर ध्यान दिया है । वैयक्तिक नीति पर नरहरि ने हरि भक्ति, सत्य और साहस पर विशेष बल दिया है । इन का कहना है कि समय

१-२ कबीर साखी संग्रह पद सं० पृ० सं० ४।५२, १।३१

३- तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० ५५१।१८९

४-६ रहीम सोरठे पद सं० पृ० सं० ११।३०, ६।३०, ३।३०

पर नहीं चूकना चाहिए । 'गुन ज्ञान सहज स्वामित्व सत नरहरि समय न चुक्किए'। धर्म के पथ पर चलें, प्रेम नेम से रहे, मधुर वचन बोले, किसी की निंदा न करे, प्रपंच न करे । गुरुजन जैसा सिखाते हैं उसे मानना चाहिए ।[१]

सत लगि बलि पातालहिं लोक तीनिहुँ समप्यउ दिय ।
जेहि सत कारन करन नक कर कछु न लोभ्यु सिय ।
सत कारन हरिचंद नीच घर नीर समप्येहु ।
सत कारन दधीच सीस संकालहिं अरप्येहु ।
सत अमर सदा नरहरि कहत सतहिं परम पद पाइये ।
सुलतान अकबर सात कहुं रिस करि सत न गमाइये ।[२]

गिरधर कवि ने भी थोड़े छप्पय लिखे हैं । ऐसे वचन देना चाहिए जैसे दशरथ ने दिया कि पिता और पुत्र दोनों चले गए पर वचन नहीं टाले । वचन के कारण बलि को छला, हरिश्चंद्र नीच घर जाकर रहे । 'बारम्बार बैताल मनत तो कामहि सिखवा काढ़िये । बर जाय तन विक्रम समय तो बोलि वचन मत पलटिये'।[३]

<u>सामाजिक नीति</u> - नरहरि का जीवन राजाओं तथा सम्राटों के संसर्ग में व्यतीत हुआ था इस लिए कुलीनों के लिए नीति तत्व का वर्णन किया है । कुल वधुओं से कौन लज्जा सिखाता है, हंसों को क्षीर नीर विवेक कौन सिखाता है, सिंहों को उन की घातें कौन सिखाता है, सज्जनों को उन के लक्षण कौन बताता है अतः गुन तथा धर्म किसी को सिखाए नहीं जाते तथा स्वभाव किसी का मिटता भी नहीं । इनका कहना है कि सब व्यक्ति एक समान नहीं होते । समाज में जीव हत्या

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि नरहरि पद सं० पृ० सं० ५०१३३२।१२६
२- " " " " " " " " ११८।३३१ ।
३- बैताल का छप्पय - गिरधर पद सं० पृ० सं० ३७ - कुंडलिया गिरिधरदास

को ये भी मना करते हैं । इसका एक प्रसिद्ध पद है । सुनते हैं अकबर ने इस को सुनकर गोवध बंद करा दिया था ।

अरिहु दंत तिनु धरै ताहि नहिं मारि सकत कोइ ।
हम संतत तिनु चरहिं बचन उच्चरहिं नहि दीन होइ ।
अमरित पय नित स्त्रवहिं बच्छ महिं थंभन जावहिं ।
हिंदुहिं मधुर न देहि कटुक तुरकहिं न पियावहिं ।
कह कवि नरहरि अकबर सुनो, बिनवति गउ जोरे करन ।
अपराध कौन मोहिं मारियत मुयहु चाम सेवइ चरन ।[१]

गिरधर कवि कहते हैं कि मित्र को कहे वह करना चाहिए । हाथी यदि चंचल होगा तो मैदान में आ जायेगा, राजा चंचल होगा तो राज्य जीत जायेगा, पंडित चंचल होकर सभा में वाद विवाद करेगा, घोड़े की चंचलता से युद्ध में विजय होगी । इन सब की चंचलता तो अच्छी है पर नारी की चंचलता अच्छी नहीं ।[२] कहते हैं चोर चुप होकर घर में छिप जायेगा । स्त्री चुप होकर प्रीतम से नहीं बोलती । दासी यदि चुप है तो वह मालिक का आदर मानती है । गूंगा कुछ जानता नहीं इस से चुप है । बुध और बक जीव सब पवन के साथ उड़ते हैं । बैताल कहै सुनु विक्रम कोइ कोइ कवि कुछ कुछ कहैं ।[३] इसी तरह उन्होंने लिखा है समाज में पति विहीन स्त्री की यह दशा होती है ।

१- अकबरी दरबार के हिन्दी कवि नरहरि पद सं० पृ० सं० 333/१२६

२-३ गिरधर बैताल का छन्दी पृ० सं० ३१, ३२

रवि बिनु सूनो रैनि ग्राम बिन बिरछय सूनो ।
कुल सूनो बिन पुत्र पत्र बिन तरूवर सूनो ।
गज सूनो बिन दंत लालित बिनु सायर सूनो ।
विप्र सूनो बिन बेद बाग बिन पुहपर सूनो ।
सूना राज सामंत बिन सो घटा सूनो बिन दामिनी ।
कह बैताल सुन बिक्रम सो पति बिन सूनी कामिनी ।[१]

वीरता परक कवित्त सवैये की परम्परा

वीरता परक छंदों की परम्परा तो आदि काल से चली आ रही थी, पर इस प्रवृत्ति का विवेचन अधिकतर महाकाव्यों में होता रहा, डिंगल भाषा में अधिकतर यह प्रवृत्ति पनपी पर अधिकांश रचना वर्णनात्मक ही है । हिन्दी में तो इस प्रवृत्ति के कारण साहित्य में वीर गाथा काल कुछ समय की रचना का नाम ही रख दिया गया । पर जितनी भी रचना हुई सब वर्णनात्मक ढंग से किसी न किसी कथा के रूप में रही । घटनाओं का एक ही धारा में वर्णन मुक्तक की कोटि में नहीं आता । मुक्तक छंद में इस का प्रयोग सब से पहले गंग में उस के बाद भूषण में मिलता है । भूषण तो इस के कवि ही हैं पर सभी रचनायें इन की मुक्तक के अन्तर्गत नहीं आती हैं । जहाँ सम्बन्ध का निर्वाह हुआ है वहाँ के छन्दों को हम ने नहीं लिया है । इन वीरता परक कवित्त सवैयों में एक विशेषता मिलती है कि भावों में कोई विशेषता नहीं है । केवल शब्दों के चमत्कार द्वारा टवर्ग के शब्दों के प्रयोग के द्वारा वीर रस की अनुभूति कराने का प्रयास किया गया है । गंग के तो अधिकांश पद ऐसे ही हैं । इस में अधिकतर अस्त्र शस्त्र की सामग्री, वीरों की सजावट, सैन्य प्रस्थान, वीरों की गर्वोक्तियाँ, पौरूषपूर्ण कार्यों, तुमुल कोलाहल के चित्र हैं ।

१- गिरधर बैताल का छप्पै पृ० ३०

शब्दों की खड़खड़ाहट से पता चलता है कि वीरता की प्रवृत्ति का वर्णन है । कहीं कहीं शृंगारिकता के चित्र रूपक के द्वारा दीये गए हैं । वीभत्स तथा रौद्र के भी चित्र मिलते हैं । इस में अधिकतर युद्धवीर, दानवीर, दयावीर तथा धर्मवीर के चित्र दीये गए हैं ।

गंग कवि ने दानशाह की प्रशंसा की है । प्राची प्रतीची चारों दिशाओं से बादल के समान सेना उमड़ी चली आ रही है । दानशाह दूलह के समान है । शत्रुओं की भूमि रक्त से भर गई । कहते हैं

"गई गढ़ि ढाढ़ दुढ़ारे की टूटि, भये कमि फाटि फनिंद के फनी" ।[१]

इन्हों ने बाण के चलने का भी वर्णन किया है । लाल लाल ढालें झुक गईं, नगारे बजने लगे, मतवारे हाथी घूमने लगे ।[२] कहीं कहा है कि पैदल की सेना धारा के समान चली आ रही है । तनिक सी देर में गढ़ के गढ़ जीत लेते हैं । सब की मति डूब जाती है ।[३] एक जगह कहा है शाहजहां के चढ़ जाने से राजा धूल के समान हो गया ।

"धाम धम धमक धराशी चकचूर ह्वै के उड़ि गयो कूरम संपूरन कपूर सो" ।[४]

इन्हों ने बीरबल की भी प्रशंसा की है कहते हैं, राजा तुम्हारे बराबर ब्रह्मा ने और किसी को नहीं बनाया ।[५] शब्दों से भी वीरता प्रकट होती है कहते हैं

दुज्जन कुंभि अंकुस लिं, गहरि हिमगिरि हिय फस्यव ।
दर दरेर कुब्बेर, बेर चिमि मेरु चलस्यव ।
दरस कमल संपुत्त्स सूर आवनतिं पइठयव ।
गिरि गगन्भि हिय गन्ध, कंठ कामिनिय अचेस्यव ।
भनि 'गंग' औदव्वय दव्यहिय, दव्विकर दब्बिय गयो ।
दानाव दाम बैरम-सुवन, बदिन बखल बक्खिन दयो ।[६]

१-३ सवैया दान शाह के गंग के कवित्त पद सं० पृ० सं० १६०।४०, १६८।४२, १७१।४३
४- गंग के कवित्त - कवित्त शाहजहां पद सं० पृ० सं० १८८।४८
५- " " " सवैया बीरबल के " " " २३६।६१
६- " " " " " " १९२।४९

सेनापति ने वीर काव्य की भाषा में वर्णन किया है । युद्ध में राम का बाण पावक के समान है ।[1] भूषण ने शिवा जी की सेना का वर्णन किया है । चतुरंगी सेना सजाकर, आनंदित होकर शिवा जी भी युद्ध जीतने चले हैं । चारों ओर नगारों की ध्वनि तथा सेना मतवालों की तरह फैली है । कहते हैं

तारा सो तरनि धुरि धारा में लगत जिमि
थारा पर पारा पारावार यों हलत है ।[2]

एक जगह कहा है जिन के फन की फुंकार से पहाड़ उड़ जाते हैं, कूरम भी नष्ट हो जाता है, ज्वाला मुखी शांत हो जाती है जिस के तेज से दिग्गज भी व्याकुल हैं, समुद्र भी विकल हो गया उन्हीं शिवराज रूपी सर्प ने सारे मुगल दल को निगल लिया है ।[3] कहते हैं रणक्षेत्र में शिवा जी द्वारा मारे हुए 'रूधिर लपेटे मुगलेटे फरकत हैं '।[4]

साहि तनै सिवराज ऐसे देत गजराज,
जिन्हैं पाय होत कविराज बेफिकिरि हैं ।
झूलत झलमलात झूलै जर बाफ्त की ,
जकरे जंजीर जोर करत किरिरि हैं ।
भूषन भनत भननात घननात घंट,
पग झननात मनो घंट रहे फिरि हैं ।
जिनकी गरज सुने दिग्गज बे आब होत,
मद ही के आब गर्डकाब होत गिरि हैं ।[5]

उन्होंने शिवा जी के दान की प्रशंसा की है । हे शिवा जी तुम्हारे तेज से ही सूर्य, चंद्रमा, रतनाकर शोभायमान हैं । तुम्हारे हाथों से ही कल्प-वृक्ष शोभायमान है ।[6] शिवा जी के लिए कहते हैं दान देते समय कुबेर की संपत्ति

१- सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० पृ० सं० ४४।८७

२-४ भूषण ग्रंथावली शिवा बावनी पद सं० पृ० सं० ४।७१, १६।७५, १२।७४

५-६ ,, ,, शिवराज भूषण ,, ३४२।६१, 338/286

छुटाने का भी चाहता है । भूषण जहान हिंदुवान के उबारिबे को, तुरकान मारिबे को वीर बलकत हैं । शत्रु का नाम सुनते ही जोश आ जाता है ।[1]

शिवा जी के यश के लिए कहा है चंदन में नाग लिपटे रहते हैं, इन्द्र मद भरा है, शेषनाग में विष है ------
समुद्र में कीचड़ है, चंद्रमा में कलंक है इस लिए इन के यश की उपमा नहीं दी जा सकती ।[2]
कहा है

तखत तखत पर तपत प्रताप पुनि नृपति नृपति पर पुनी है अवाज की ।
दंड ताकी दीप नव खंडन अखंड पर, नगर नगर पर छावनी समाज की ।
उदधि उदधि पर दावनी खुमान जू की, थल थल ऊपर सुबानी कविराज की ।
नग नग ऊपर निसान कारि बागमे, पग पग ऊपर दुहाई शिवराज की ।[3]

<u>वीरता परक छप्पय की परम्परा</u>

गोस्वामी तुलसी दास जी ने कवितावली में राम रावण के युद्ध का वर्णन किया है । कहीं वृक्ष उखाड़ कर फेंके जा रहे हैं कहीं पर्वत सेना पर डाले जा रहे हैं । कहीं घोड़े से घोड़ा भिड़ रहा है, कहीं हाथी भिड़ रहे हैं । शत्रुओं के सिर आपस में टकरा रहे हैं । वानर सेना अपनी पूंछ में लपेट लपेट कर राक्षसों को पटकती है तथा जयति राम जय कह रही है ।[4] इसी तरह वीरता का वर्णन शिव जी के धनुष तोड़ने के समय का मिलता है । युद्ध अवसर पर न होते हुए भी सभी के मन में वीर भावना जाग्रत थी, इसी का दृश्य खींचा है ।

१-२ भूषण ग्रंथावली शिवराज भूषण पद सं० पृ० सं० ३९८।५८, ४४०।८
३- " फुटकर पद सं० पृ० सं० १९।९८
४- तुलसी ~~ग्रंथावली~~ रचनावली कवितावली पद सं० पृ० सं० ४०।२२९

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर ।
व्याल बधिर तेहि काल, बिकल दिगपाल बराबर ।
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुख्यभार
सुरविमान हिममान भानु संघटित परस्पर ।
चौंके बिरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यो ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि जबहिं राम सिव धनु दल्यो ।[१]

गंग कवि ने राणा प्रताप और मुसलमानों के युद्ध का वर्णन किया है ।

"राना प्रताप खगा अरहिं, छिन डुब्बै छिन उच्छरै ।"[२] यह चित्र खींचा है

भूषण वीर रस के कवि हैं । इन्होंने शिवा जी के युद्धों का वर्णन किया है । इन का वर्णन प्रोत्साहनपूर्ण है ।

कुद्ध फिरत अतिसुद्ध जुरत नहिं, रूद्ध मुरत भट ।
अगुग भगत अरि अगुग तगत सिर पगुग तगत घट ।
दुक्कि फिरत मद झुक्कि भिरत करि कुक्कि गिरत गनि ।
रंग रकत हर संग छकत चतुरंग थकत भनि ।
रचि करि संगर अति ही विकट, भूषन सुजस कियो अचल ।
सिवराज साहिसुव खग्ग बल, दलि अडोल, बहलोल दल ।[३]

इन्होंने शिवा जी का यश चारों ओर फैलाया है, इसका भी वर्णन किया है । इसी तरह पद्माकर ने भी हिम्मत बहादुर की प्रशंसा की है । जब राजा ने सेना सजाई तभी से उस का यश फैल गया । वर्णन किया है "नृप अनूप गिरि जब चढ़्यउ । तब अमित अरावो अखिल बल, इक्क बार छुट्टत भयउ ।"[४]

१- तुलसी ग्रंथावली कवितावली पद सं० पृ० सं० ११।१९०

२- गंग के कवित्त, छप्पय अकबर बादशाह पद सं० पृ० सं० १८१।४१

३- शिवराज भूषण पद सं० पृ० सं० ३३१।८५

४- हिम्मत बहादुर बिरुदावली - पद्माकर पंचामृत पद सं० पृ० सं० ६१।१०

अध्याय ६

मुक्तक काव्य के कवियों की शैली

संतों की रचना काव्य शास्त्रों के नियम के अनुसार नहीं रची गई पर हृदय की सच्ची अनुभूति व्यक्त है इसी से सभी तत्व बिना प्रयास के ही आ गए हैं । इन्होंने अपनी अनुभूतियों को सहज और सरल शैली में व्यक्त किया । इन के काव्य में सरलता, स्वच्छता, स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता, शिष्टता एवं सब गुणों का समावेश स्वाभाविक रूप में पाया जाता है । संत काव्य के आदि प्रवर्तक कबीर दास जी हैं । इन की वाणी से जो धारा प्रवाहित हुई उस ने सभी सन्तों को आप्लावित किया । किसी को कम किसी को अधिक । जो इन के जितना निकट आया उतनी ही तीव्र अनुभूति उस ने प्रगट की और इसी शैली में उस ने व्यक्त किया । कबीर की शैली में सरल शब्दों में भाव व्यक्त हैं । कबीर ने जीवन में आने वाली प्रत्येक परिस्थिति को बुद्धि की कसौटी पर कसा, उस को परखा तब व्यक्त किया । वेद पुराण में क्या कहते हैं इस की उन्हें चिंता नहीं । साधन के प्रश्न को उन्हों ने अनुभूति द्वारा हल किया । प्रत्येक विवेचन में आत्म विश्वास टपकता है । किसी बात को इस लिए नहीं माना कि किसी ने कहा है, उन्होंने अनुभव कर के देखा कि बुद्धि मानती परतत्त्व ब्रह्म है । उन की शुद्ध अनुभूति निश्चित थी इसी से शैली में नीरसता नहीं आई है । कहते हैं सत्य में बड़ी शक्ति होती है । कबीर ने इसी सत्य की ही अभिव्यक्ति की है । उन की आत्मानुभूति का आनन्द काव्य का प्राण होने के कारण शैली हृदय स्पर्शी हो गई है । कल्पनाएं जन जीवन से ली गई हैं इस से वह भी सरल है । माया को उन्हों ने रूई लपेटी आग कहा है, कामनी को विष की बेल कहा है । गुरू को वह ब्रह्म से ऊंचा मानते हैं । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं यह जो अपने प्रति और अपने प्रिय के प्रति एक अखंड और अविचिलित विश्वास था उसी ने उन की कविता में एक असाधारण शक्ति भर दी है (डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर पृ० १८२) । कबीर की साखियों में न तो शब्दाडम्बर है और न पांडित्य

प्रदर्शन का प्रयत्न । बात को घुमा फिरा कर नहीं कहते और न अनुभूति के प्रकाशन के लिए पहले से योजना बनाते हैं । जो बात कहना चाहते हैं उस के भावों का उद्रेक होने पर अनायास ही सब आयोजन हो जाता है । भाव सीधे हृदय से निकलते हैं । कबीर ने स्वयं ही अपने शरीर का दीपक और जीव की बत्ती बनाकर ब्रह्म का दर्शन किया था । उस को उन्हों ने व्यक्त किया है

यहि तन का दिवला करउं, बाती मेलौं जीव ।[1]

विरह की अनुभूति भी बड़ी अनोखी थी । कहा है विरह में शरीर झीना हो गया है । 'झीने' शब्द से झंझरी वस्तु का बोध होता है । झीने शरीर में आत्माभिमान, सांसारिक कामनायें सभी का नाश हो जाता है । विरह का चित्र सामने आ जाता है जिस में विरही का सांसारिक शरीर समाप्त हो गया है । कबीर की चित्र योजनायें बड़ी स्पष्ट हैं । चकोर के प्रेम का एक चित्र खींचा है -

चोंच टूटि भुइं मा गिरे चितवै वाही ओर[2]

कबीर के काव्य में प्रभावोत्पादकता भी है । साधारण जीवन पथ की परिचित अनुभूति इन के चित्रों में व्यक्त है इसी से पाठक अधिक प्रभावित होता है । एक मस्जिद का चित्र खींचा है -

कांकर पाथर जोरि कै मस्जिद लई चुनाय ।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय ।[3]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि बाह्याचारों पर आक्रमण करते समय लापरवाही भरी हंसी उन के अधरों पर मानों खेलती रहती है । सच बात तो यह है कि यही उन के व्यंगों की जान है ।[4]

१- संत बानी संग्रह कबीर साहिब पद सं० पृ० सं० १४।१६

२- " " " " " " " १२।१९

३- " " " " " " ७।६३

४- कबीर हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ० १६४

प्रभावोत्पादकता के लिए ऐसी उक्तियों का होना आवश्यक है जो हृदय के मर्मस्थल को स्पर्श करती हुई सुषुप्त भावनाओं को जाग्रत कर उन में स्फूर्ति का संचार करने में निपुण हो ।

नयनों की करि कोठरी पुतली पलंग बिछाय ।
पलकों की चिक डारि कै पिव को लिया रिझाय ।[१]

इस में प्रियतम को रिझाने की भावनाएं अंकित हैं । शैली में स्पष्टता के लिए प्रसिद्ध पदों, मुहावरों और सूक्तियों का प्रयोग भी आवश्यक है । इस से भाव सशक्त हो जाते हैं । प्रियतम का मार्ग सुगम है पर चलना आता नहीं । साधारण बोलचाल की भाषा में जिस काम को जो न कर सकता हो और काम में दोष लगावे उस को प्रगट करने के लिए 'नाच न आवे आंगन टेढ़ा' मुहावरे का प्रयोग किया जाता है । कबीर ने भी इसका प्रयोग किया है । इसी तरह 'अब पछताये क्या होत जब चिड़िया चुग गई खेत' मुहावरे का प्रयोग समय पर काम न करने अर्थात् जीवन में गुरु से प्रेम न करने तथा अन्त में पछताने के लिए प्रयोग किया है । मनुष्य की जाति को 'पानी का बुदबुदा तथा प्रभात के तारे के समान कहा है । जैसे घुन काठ को धीरे धीरे खा जाता है वैसे विरहिणी का मन दुख में जर्जर हो जाता है । 'तीतर को बाज' जैसे अचानक मार डालता है वैसे ही काल किसी समय भी आ सकता है । अपने शरीर पर गर्व करने को मना करते हैं क्यों कि शरीर पीले पत्ते के समान झर जायगा । विरहिणी तमोली के पान की तरह पीली होती जाती है । सुमिरन करने की विधि 'पनिहार की गागर' के समान होनी चाहिए जो कि हिलते डुलते भी उसी का ध्यान रखती है । पंडित के ज्ञान को 'तीतर का ज्ञान' कहा है ।

शैली में उपयुक्त शब्दों का प्रयोग बड़ा आवश्यक है । कबीर का एक एक शब्द साखी में बोलता सा है । जिस शब्द का प्रयोग किया है उस के पर्यायवाची शब्द से वह भाव नहीं आ सकता है ।

१- संत बानी संग्रह कबीर साहिब पद सं० पृ० सं० २८।१

कबीर कहते हैं विष की बरली काटने से उबाला बढ़ता है । अब आत्माभिमान का निराकरण आवश्यक है यह रूपक के रूप में कहा है । कबीर जिस चित्र को खींचना चाहते हैं वैसे ही शब्दों का प्रयोग करते हैं । 'निस दिन दाझै बिरहनी' में 'दाझै' का अर्थ है संतप्त होना । इस शब्द से विरहिणी का दुख अभिव्यक्त होता है । वैसे ही 'आठ पहर भीना रहे प्रेम कहावै सोय' में 'भीना' का अर्थ होता है समाया हुआ, व्याप्त । इस शब्द से प्रेमी का चित्र सामने आ जाता है । एक जगह कहा है 'भरि भरि मारे काम मैं सालै सकल शरीर' में 'सालै' का अर्थ होता है दुख पहुंचाना, चुभाना आदि । यह शब्द भाव को स्पष्ट कर देते हैं । इन की शैली स्पष्ट तथा समर्थ तो है ही साथ ही में खूब मधुर भी है । लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल ।

लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल ।[1]

इस में लाल शब्द का प्रयोग भावों को तीव्रतर करता है । कबीर में अलंकारों का मुलम्मा नहीं चढ़ा है वरन् वे स्वतः-सिद्ध आ गए हैं । वह रूपकों के राजा कहे जाते हैं । इन के रूपक सरल और प्रभावोत्पादक हैं । प्रेम के रूपक पपीहा और चातक के जीवन से सम्बन्धित हैं ।

चकवी बिछुड़ी सांझ की आन मिली परभात ।
जो नर बिछुड़े नाम से दिवस मिले ना रात ।[2]

उपमा भी बड़ी प्रभावोत्पादक है । गुरू को कुम्हार, नाम को पारस, हाड़ को लकड़ी, केश को घास कहा है । 'दुबां के पखरेवरा की बूरी की धार' में अनुप्रास का सौंदर्य है । सच पूछो तो कबीर के काव्य में शैली के सभी गुण सहज भाव में आ गए हैं ।

इनकी भाषा भोजपुरी, ब्रज और अवधी का सम्मिश्रण है अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग सरलता एवं सफलता से हुआ है । 'अँखड़िया' 'की पड़िया' पंजाबी रूप हैं । पहुंचा, किया राजस्थानी का प्रभाव है ।

१- संत बानी संग्रह कबीर साहिब पद सं० पृ० सं० 2/83
२- कबीर ग्रंथावली पद सं० पृ० सं० ३।७

इन्हों ने मनमाने ढंग से भाषा में परिवर्तन कर लिया है । न तो भाषा की कोई स्थिरता है न व्याकरण की । भाव व्यक्त करने के लिए कोई भी भाषा को तोड़ मरोड़ कर अपना बना लिया है । भाषा में अक्खड़पन भी है । साहित्यिक कोमलता या प्रसाद के फेर में नहीं पड़े हैं । कहीं कहीं भाषा गंवार भी है पर इस की इन्हें कैसे चिन्ता नहीं । डा० श्याम सुन्दर दास जी ने लिखा है

'पर उन की बातों में हरेपन की मिठास है जो उन्हीं की विशेषता है और उन के सामने वह गंवारपन दब जाता है'।[१]

खड़ी बोली, मैथिली तथा बंगाली का भी प्रभाव है । इन के शब्द ही नहीं क्रिया पदों एवं कारक चिन्हों का भी प्रयोग है । कबीर ने सामान्य भाषा का रूप जिसका प्रचार गुजरात से बिहार तक और पंजाब से दक्षिण तक हो चुका था उस का प्रयोग किया । सामान्य भाषा उसे कहते हैं जो समान रूप से कई वर्गों अथवा प्रदेशों में हो ।[२]

<u>रै दास की शैली</u>

रै दास जी परम भक्त थे । इन्हों ने भी आत्मानुभूति द्वारा परम ब्रह्म का दर्शन किया था । अपना सारा भार ईश्वर को सौंप कर सन्तुष्ट थे ।

रैदास रात न सोइया, दिवस न करिये स्वाद ।
अहिनिसि हरि जी सुमरिये छांड़ि सकल प्रतिवाद ।[३]

इसी तरह इन की भावनाएं काव्य में व्यक्त हैं । सरल शब्दों में अपने भावों को व्यक्त किया है जिस में न तो उपमाओं का चमत्कार है और न भावनाओं का गुम्फन । स्पष्ट शब्दों में भाव पाठक के सम्मुख आ जाते हैं । इन्हों ने

१- कबीर ग्रंथावली की भूमिका डा० श्याम सुन्दर दास पृ० ६९

२- संत कबीर दर्शन राजेन्द्र सिंह गौड़ पृ० ७५

३- संत बानी संग्रह रैदास पद सं० पृ० सं० ४।६५

परम्परा के अनुसार संतों के आचरण की ओर काफी जोर दिया है । 'बाहर उदक पखारिए, घट भीतर बिबिध बिकार' में इन के हृदय की सच्ची अनुभूति व्यक्त है । इन के विचारों में पुनरुक्ति भी पाई जाती है परन्तु वह अखरती नहीं । गहन भावों तथा सरल भावों दोनों की ही अभिव्यंजना सरल शब्दों में की है । दैनिक जीवन से सम्बन्धित दृष्टांत लिए हैं जिस में भाव अधिक प्रभावशाली हो गए हैं । 'रैदास तू कावच फली तुझे न छ्वैवै कोय । इन की शैली में कबीर का सा अक्खड़पन नहीं है व्यंग गम्भीर तथा सुष्ठु है । धर्म का निरूपण तरह तरह से लोग करते हैं पर ऐसा कौन कर्म है जिस से सब बन्धन छूट जावे तथा मन को सहज लगे यह एक कठिन प्रश्न है । इस पर सरल शब्दों में इन्हों ने विचार किया है । वह दुखी हैं कि 'अनिक जतन निग्रह किये टारि न टरै भ्रम फांस' । प्रेम भक्ति की सरलता से उत्पन्न नहीं होती । यही जीवन की कठिनाई है ।

भाषा - शब्दों का प्रयोग सार्थक किया है । 'घुटकत बजर कपाट' में 'बजर' शब्द का अर्थ कुलिश फौलाद है जिस से कि भावों में स्पष्टता और तीव्रता आती है । भाषा ब्रज मिश्रित अवधी है । खड़ी बोली की विभक्ति तथा उर्दू फारसी शब्दों का प्रयोग, पंजाबी शब्द भी पाए जाते हैं । संस्कृत के तद्भव शब्द जैसे 'पुरुष' का 'पुरुष', 'शुचि' का 'सुचि', 'यत्न' का 'जतन' आदि प्रयुक्त हैं । खड़ी बोली के भी रूप मिलते हैं ।

नानक की शैली

इनकी शैली स्पष्ट है । भावों में शिथिलता नहीं है । जो कुछ भाव व्यक्त किए हैं उन को पाठक ज्ञान तथा तर्क की कसौटी पर कस कर देख सकते हैं ।

> मित्रां दोस्त माल धन, छड्डि चले अति भाइ ।
> संग न कोई नानका, उड्डु हंस इकेला जाइ ।[१]

१- संत बानी संग्रह नानक पद सं० पृ० सं० ५।९८

जीवन के इस चित्र को सभी ने देखा है तथा समझा है । विचारों की सुसम्बद्ध श्रृंखला का उत्तरोत्तर विकास भी पाया जाता है । अलंकारों का प्रयोग भी सहज रूप में है । अप्रचलित रूपों का प्रयोग नहीं है । इसी से जो भाव व्यक्त किए हैं वह प्रभावोत्पादक हैं ।

> कलियां थीं चढले भये घउलियां भये सुवेहु ।
> नानक भता भलो दिया उज्जारि गइयूया देहु ।[1]

इस में विचारों का उत्तरोत्तर विकास तथा श्रृंखला पाई जाती है । इन के बाह्याचार के खंडन में तीव्रता कम है । तीर्थों का भ्रमण व्यर्थ इस लिए है क्यों कि अपने अंतर में तीर्थों का वास है । पाण्डा और ब्राह्मण अन्धे हैं काजी और मुल्ला कोरे हैं क्यों कि उन के पास कुछ भी सार नहीं । श्री विश्वनाथ तिवारी का कहना है दार्शनिक दृष्टि से नानक की रचनाओं को पढ़ने पर असन्तोष ही होता है । उन का दर्शन पुष्ट एवं सबल नहीं कहा जा सकता । वे सांसारिक जीवों के दुख, दैन्य की याद कर उस की निवृत्ति के लिए तुरन्त उस सूक्ष्म लोक से लौट आते हैं ।[2] भाषा पंजाबी है । संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग है । धवलंका धुउले, प्रीति की परीति आदि ।

दादू की शैली

दादू के काव्य में उन के गहन अनुभूति की झलक सरल तथा स्पष्ट शब्दों में मिलती है । प्रेम एवं करुणा का व्यक्तीकरण मिलता है । विचार मनोहर ढंग से रखे हुए हैं इसी से प्रभावोत्पादक अधिक हैं । ब्रह्म की व्यापकता को सरल शब्दों में व्यक्त किया है ।

> समरथ सब विधि साइयां, ताकी मैं बलि जाऊं
> अंतर एक जु सो बसै, औरां चित्त न लाऊं

१- संत बानी संग्रह नानक पद सं० पृ० सं० ११६८
२- श्री विश्वनाथ तिवारी नानक पृ० २२८
३- संत बानी संग्रह दादू दयाल पद सं० पृ० सं० ११८४

शब्द रूपी दूध से घृत रूपी राम रस को निकालने वाला केवल दादू ही होता है । इसी तरह के भाव का स्पष्टीकरण काव्य में जगह जगह मिलता है । इन्होंने स्वतंत्र मार्ग का अवलम्बन लिया है । सब को समभाव से देखा है । इनकी शैली में पाठक को निमग्न करने की अपूर्व शक्ति है । 'टुक देखन दे दीदार' शब्दों में कितना मर्म है । इसी दृष्टि को देखने के लिए दादू क्या पाठक भी तन, मन, वारने को तैयार हैं । कितने भोले हृदय से कहते हैं 'तुम को हम से बहुत है तुम से हमको नाहिं । दादू दू बलि परिहरी तूं रहु नैननि मांहिं'।[1] इन के दोये हुए निर्गुण शब्द भी बड़े आकर्षक हैं । प्रियतम के मिलने का चित्र बड़ा हृदयस्पर्शी है । पतिव्रता के विरह में नींद का एक चित्र है -

पीव न देखा नयन भरि कंठ न लागी धाय ।
सूती नहिं गल बांह दे बिच ही गई बिलाय ।[2]

दादू कहते हैं मन रूपी घोड़े पर चेतन आत्मा चढ़ कर प्रीति की लगाम पकड़ ले । गुरू के शब्दों से ही घोड़े को वश में करता हुआ कोई सुजान दादू ही अन्तिम श्रेणी पर पहुंच सकता है । इन की उपमाएं बड़ी सरल हैं । आत्मा की व्यापकता सरल शब्दों में व्यक्त है जैसे तिल में तेल, फूलों में सुगन्धि, क्षीर में मक्खन है वैसे ही सब में आत्मा व्याप्त है । इन की उक्तियां सुषुप्त भावनाओं को जाग्रत करती हैं । सम्प्रदाय के प्रति इन्होंने भी विद्रोह किया है पर समन्वय की दृष्टि से बाह्याचार खंडन में रोष और उग्र भाव नहीं । मांस आहार को इस लिए मना करते हैं कि उस से ब्रह्म नहीं मिलते । ब्रह्म का साक्षात्कार तो अहं भाव को मारने से ही होता है ।

मुहावरों का प्रयोग किया है 'बाल न बांका करि सकै जो जग बैरी होय' । 'काल' को 'अहेड़ी' 'मन' को 'कागद की गुड्डी' कहा है । रूपक तथा

१- संत बानी संग्रह दादू दयाल पद सं० पृ० सं० १९।८६
२।९१

उपमायें साधारण जीवन से सम्बन्धित हैं । इसी से अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाती हैं ।

भंवरा लोभी बास का कंवल बंधाना आइ ।
दिन दस माहै देखता सुमिरि गये बिलाइ ।[१]

'राम नाम' को 'औषधि' से, 'सबद' को 'सरोवर' से तथा 'मन' को 'ताजी' से उपमा दी है । शब्द सार्थक अर्थ वाले हैं ।

'पंथ निहारत पीव का बिरहिन पलटे केस' में 'पलटे' शब्द का सार्थक प्रयोग है । बिरहिन के बाल काले से सफेद हो गए । 'पलटे' शब्द इसी भाव को व्यक्त करता है । इसी तरह सरल शब्दों में गम्भीर से गम्भीर भाव बड़े स्पष्ट तथा प्रभावोत्पादक हैं । इन की शैली की यह विशेषता है कि इन में माधुर्य और सहजानुभूति बड़ी तीव्र है । तन्मयता और भाव प्रकाशन भी और संतों से अधिक है ।

<u>भाषा</u> - भाषा ज्ञान की दृष्टि से ये प्रतिभाशाली कवि थे । ब्रज, अवधी, राजस्थानी तथा गुजराती सभी भाषाओं पर समान अधिकार है । इन की ब्रज भाषा में सरसता और माधुर्य है । पंडित अयोध्या सिंह हरिऔध का कहना है 'उन की - - - - - ब्रज भाषा बहुत ही प्रांजल है और इस भाव से लिखी गई है कि ज्ञात होता है कि सूरदास जी का अनुकरण कर रहे हैं । ऐसी उन की कितनी ही रचनाएं हैं' ।[२]

पंजाबी भाषा का भी प्रयोग किया है । उर्दू, अरबी, फारसी का भी ज्ञान स्पष्ट मालूम पड़ता है । 'सुमिरण', 'बिछोयणहार', 'आलम' आदि शब्दों का प्रयोग किया है ।

<u>मलूकदास की शैली</u>

इन की शैली सरल है आडम्बर नहीं है । अलंकारों की छटा न होते हुए भी अभिव्यंजना सच्ची हुई है । इन्हों ने जीवन को अनुभव कर के देखा था इसी से जो भाव व्यक्त किए हैं वे हृदय स्पर्शी हैं । इनके सुमिरन में भी

१- संत बानी संग्रह दादू दयाल पद सं० पृ० सं० ११।९७
२- हिन्दी संत साहित्य पृ० २३९

एक विशेषता है 'ओंठ फरकत न देखिये'। वैसे तो प्रत्येक भाव परम्परा के अनुसार ही व्यक्त किया है पर कहीं कहीं इन के भावों में विशेषता पाई जाती है । मांस अहार को सभी संतों ने बुरा माना है । इन्होंने ने उस कष्ट का अनुभव करा कर दिखाया है । 'कांटा चुभे पीर है' इस से गला कटने में कितनी पीर होती होगी अनुभव किया जा सकता है । इन की अनुभूतियों को अपने जीवन में सभी अनुभव करते हैं । इसी से भाव हृदयग्राही अधिक हैं । ब्रह्म सर्व व्यापक है इस का बोध कराने के लिए कलियों का रूपक बांधा है । बिना सुगन्ध के कोई कली नहीं होती परन्तु जो खिली होती है उसी के सुगन्ध का आभास होता है । एक स्पष्ट चित्र खींचा है -

गर्भ भुलाने देह के रचि रचि बांधे पाग ।
सो देही नित देखि के चोंच संवारे काग ।[1]

प्रसिद्ध मुहावरों का उपयोग किया है 'स्वान पूंछ सुधरै नहीं अंत टेढ़ की टेढ़' तथा 'बात कहत दूहत बात है बारू की सी भीति' भावों को प्रभावशाली बनाती है । साधारण जीवन से सम्बन्धित उपमा लेकर भावाभिव्यक्ति में सफल हुए हैं । 'संसार' को 'सराय' 'माया' को 'मिश्री की छुरी' 'मन' को 'बिन मूड़ का मिरग' कहा है । वैसे ही मन्दिरों की पूजा को निरर्थक बताते हुए जीवन में काम आने वाली साधारण सी वस्तु को महत्ता प्रदान की ।

देवल पूजे कि देवता की पूजे पहाड़ ।
पूजन को जाता भला जो पीसि खाय संसार ।[2]

यह विचार कबीर की अनुभूति से इन को प्राप्त हुआ । विरह का वर्णन भी उनका मर्मस्पर्शी है । कहते हैं विरहिनी को 'रात न आवे नींदड़ी थर थर कांपे जीव' इस में 'नींदड़ी' शब्द प्रभावशाली है । उनकी शैली में व्यंजना शक्ति

१- संत बानी संग्रह मलूकदास पद सं० पृ० सं० १।१००
२।१०४

का विकास हुआ है । अस्पष्टता अथवा शिथिलता का अभाव है । इन के पद साधारण जनता को बड़े प्रिय हैं । 'अजगर करै न चाकरी' वाला दोहा बड़ा प्रसिद्ध है । ध्वनि भी श्रुतिकटु नहीं है । पद को पढ़ने में कहीं अटकना नहीं पड़ता । शब्दों का प्रयोग सफल हुआ है । 'तेई ऊंचो आसिष जिन के नीचे नैन' में 'नीचे' शब्द से अभिमान से रहित सरल चित्त वाले व्यक्ति का बोध होता है जो कि और किसी पर्यायवाची शब्द से भाव न निकलता । 'नमो निरंजन निरंकार' में अनुप्रास का प्रयोग है । इन की शैली में सभी तत्व आ गए हैं ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा ब्रज और अवधी है । इस के अतिरिक्त अन्य भाषा के शब्द पाए जाते हैं । भोजपुरी और बुंदेलखंडी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है । इस के अतिरिक्त मुगल कालीन अरबी, फारसी शब्दों का प्रयोग कौशल से किया 'मुकाम' 'बखतरी' अरबी फारसी शब्द तथा संस्कृत के 'निरंजन निराकार' 'अविगत पुरुष' 'अलेख' आदि शब्दों का प्रयोग किया । 'अवगुण' को 'औगुन', 'अमूल्य' को 'अमोल' आदि उल्लेखनीय है । खड़ी बोली का विकसित और परिमार्जित रूप मिलता है ।

सुन्दरदास की शैली

सुन्दरदास जी विद्वान थे । वे पढ़े लिखे थे इसी से उन की शैली मंजी हुई है । इन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी था इसी से ऐसे भावों को व्यक्त किया है । 'बिना भूख अन्न नहीं अच्छा लगता इसी तरह बिना प्रीति के भगवान नहीं प्रसन्न होते'।[1] कहीं कहीं सूक्ष्म विवेचन भी पाया जाता है जिसका सुमिरन करो उसी का रूप हो जाता है जो ब्रह्म का सुमिरन करेगा वह चिद्रूप हो जाएगा ।[2] विरह वर्णन में हृदय स्पर्शी चित्र खींचे हैं -

---

१- संत बानी संग्रह सुन्दर दास पद सं० पृ० सं० १०।१०८

१२।१०८

ज्यों ठग मूरी खाय कै मुखहि न बोलै बैन ।
टुगर टुगर देखा करै सुन्दर बिरहा नैन ।[१]

बिरह में 'टुगर टुगर' देखना मानसिक स्थिति का चित्रण है । ऐसे ही 'ठग मूरी' शब्द भी बड़ा उपयुक्त है । विरहिणी के मानस का चित्रण किया है । कहीं कहीं शब्द सार्थक से नहीं प्रतीत होते । ब्रह्म के वर्णन में 'गोरखधन्धा कोहु में' 'गोरखधन्धा' कुछ उपयुक्त सा नहीं लगता । इस में अर्थ स्पष्ट सा नहीं है । अधिकांश उपमाएं साधारण जीवन से ली गई हैं । इसी से वे सरल एवं स्पष्ट हैं । 'शब्द' को 'औषधि', 'राम नाम' को 'मिश्री' कहा है । अवसर बीतने का रूपक बड़ा सरल तथा प्रभावशाली है -

अंजरी माहैं नीर ज्यों छिती जात ठहराय ।[२]

जल का अंजलि में ठहरना जितना क्षणिक होता है उतना ही क्षणिक अवसर होता है । शब्दों का प्रयोग उचित किया है । 'छीजै' का अर्थ है 'क्षीण होना' । पारस के बिना जैसे लोहा बेकार रहता है वह सोना कभी नहीं हो सकता वैसे ही मनुष्य का जीवन भी राम के भजन के बिना सार्थक नहीं हो सकता । वाक्य विन्यास संगठित है उसी से अभिव्यक्ति में प्रभावोत्पादकता है । काव्य में ध्वनियाँ उपयुक्त ढंग से हैं जिस से पढ़ने में सरलता होती है ।

हृदय में हरि सुमिरिए अन्तर जामी राय ।
सुन्दर नीके जतन सों अपनो चित्त छिपाय ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा में ब्रज, खड़ी बोली, राजस्थानी, फारसी, अरबी तथा गुजराती का पूर्ण परिपाक हुआ है । प्रमुख भाषा ब्रज ही है । संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का ही प्रयोग हुआ है । पंजाबी और राजस्थानी

१- संत बानी संग्रह सुन्दर दास पद सं० पृ० सं० ३।१०९

C।१०७

[illegible] ५।११०, २।१०८

का प्रभाव है । अरबी और फारसी का प्रयोग कम है । खड़ी बोली का विकसितरूप सुन्दर रूप से व्यक्त हुआ है । सभी भाषाओं पर अधिकार था । 'परमेसुर, 'समहवि' , 'मिहरें' 'अरवाह' आदि शब्द पाए जाते हैं ।

धरनीदास की शैली

धरनीदास ने जो कुछ कहा है सीधे सादे ढंग से कहा है । भाव स्पष्ट है । शैली प्रभावोत्पादक है तथा सशक्त पदों का प्रयोग है । ब्रह्म का ध्यान करने का वर्णन किया है । गम्भीर विषयों में तीव्र अनुभूति न होने के कारण अधिक सफलता नहीं मिली है । 'मनि माणिक मोती करै झुमि झुमि हंस अघाय'[१] इस में वह किसका ध्यान करने को कहते हैं तथा किस जगह का चित्र खींचना चाहते हैं इस की रेखाएं स्पष्ट अंकित नहीं हैं । जैसे उन्हों ने 'जगत' को 'कुआं' को 'चौरहरा और धुरी' को धाम' कहा है । इस सरल साधारण उपमा से इन के भाव तीव्र हो गए हैं । जीव हिंसा करने से कितना कष्ट होता है इस को समझाने के लिए 'नगि पाकि मयूर बन होइ नाहि निरवाहु'[२] से उपमा दी है । अधिकांश उपमाएं साधारण जीवन से ली हैं 'कर्म' को 'कीच' 'तन' को 'तकत', 'कामनी' को 'दामनी' 'कोठी' को 'ठाम' । 'लोक की कथनी' को 'गीदर का ज्ञान' कहा है । साधारण लोकोक्तियों का भी प्रयोग हुआ है । मांस खाने वाला ज्ञान चर्चा करे उसके लिए कहा है 'नागी होई घूंघट करे'[३] 'क्षणभंगुर जीवन को 'चिमरे पात' के समान कहा है । कहीं कहीं अनुप्रास भी प्रयुक्त हैं

धरनी धन जो विरहिनी धारै नहीं धीर ।[४]

शब्दों की आवृत्ति से भाषा को सजाया है जैसे 'धरकत', 'करकत', 'ढरकत' आदि । ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है कि अर्थाभिव्यक्ति में व्याघात

१- संत बानी संग्रह धरनी दास पद सं० पृ० सं० १।११२
२- " " " " २।११६
३- " " " " २।११६
४- " " " " ६।११३

नहीं पहुंचता वरन् आभ्यन्तर चित्र का अंकन अधिक स्पष्ट हो जाता है ।'बान' शब्द 'हिये घुमि गयो' में 'घुमना' शब्द अधिक सार्थक है । जैसे बाण घुमने से जहर का प्रभाव होता है वैसे गुरु के शब्द भी हृदय को प्रभावित करते हैं और जीवन में परिवर्तन होता है ।'घुमना' के स्थान पर 'छिदना'[1], 'धंसना', 'गुड़ना' शब्द भी हो सकता था पर 'घुम' शब्द का प्रयोग इस स्थान पर अधिक प्रेषणीय है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा भोजपुरी है । इस पर पूर्वी प्रभाव दिखाई देता है । फारसी शब्दों का भी प्रयोग है । कहीं कहीं ब्रज भाषा का परिष्कृत और परिमार्जित रूप भी मिलता है ।'मइली बहुत अबेर' 'विस्वम्भर' 'विस्वास' 'तख्त' 'मोजरा' आदि शब्दों का प्रयोग है । काव्य भाषा में मधुरता और सरसता है ।

<u>जगजीवन साहिब की शैली</u>

इन्हों ने अधिकतर उन्हीं भावों का वर्णन किया है जो और संतों ने पर इन की अनुभूति कुछ कम जान पड़ती है । अनुभूति की तीव्रता से भाव स्पष्ट हो जाते हैं जितनी गहरी चित्त की प्रतिभा होती है उतने ही अधिक उस के शब्द प्रेषणीय होते हैं पर साधारणतया इन के भाव सरल तथा स्पष्ट हैं । माया का वर्णन प्रभावोत्पादक है ।'माया बहुत अपरबल अहै तुम्हार बनाव' माया से प्रार्थना करते हैं 'उसको बहुरि न भुलाव'[2] सतगुरु के सुरत की डोरी से जो झूला डाला है उस का वर्णन तथा माया के हिंडोले का वर्णन स्पष्ट तथा भावयुक्त है । कहीं कहीं चित्रों की रेखाएं अस्पष्ट सी हैं ।'गाफिल ह्वै फंदा पर्यो जहं तहं गयो बिलाय'[3] में 'फंदा' काहे का पड़ता है तथा फंदा पड़ने से कैसे बिलाय जाता है यह स्पष्ट नहीं है इसी से अधिक प्रभाव भी नहीं पड़ता ।'अजपा जप परतीति करि करिहैं सब असनान'[4] इस में केवल 'अजपा जप' शब्द का ही प्रयोग है । अनुभूति नहीं प्रतीत होती ।कहीं कहीं

१- (भा)७३६ पृष्ठ ७१८ बृहत् पर्यायवाची कोश
२- संत बानी संग्रह जगजीवन पद सं० पृ० सं० ८।११८
३- " " " " ८।११९
४- " " " " ६।११८

रूपक का प्रयोग उपयुक्त ढंग से है

पथिक आइ पुकारेउ पंथिन आगे रोइ ।

तीन लोक फिरि आयऊं बिन गुरु लख्यो न कोइ ।[1]

कहीं कहीं थोड़े से शब्दों में भाव कूट कूट कर भरे हैं ।

'दीन हीन रहु निसि दिना' में अभिमानहीनता, निरन्तर ध्यान आदि भाव आ जाते हैं । 'गफिलाई' शब्द भी कई भावों को लिए हुए है । असावधानी, अचेतनता, अजागता आदि सभी भाव आ जाते हैं ।

<u>भाषा</u> _ काव्य की भाषा अवधी और ब्रज है । कहीं कहीं अरबी और फारसी का प्रयोग है । गाफिल, गफिलाई आदि शब्द मिलते हैं । ग्रामीण शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से है । इन की भाषा पूर्वी और भोजपुरी बोली से प्रभावित है ।

<u>यारी साहिब की शैली</u>

इन्हों ने आध्यात्मिक तत्वों का विवेचन सरल शब्दों में करने का प्रयत्न किया है पर प्रतीकात्मक जीवन से न लेने के कारण जो कुछ लिखा है उस की रेखाएं पूर्णतया स्पष्ट नहीं हैं । तभी पूरे भावों का प्रभाव भी नहीं पड़ता । 'ज्योतिस्वरूपी आत्मा घट घट रही समाई' ।[2] यह भाव तो सरल है पर 'परम तत्व मन भावनो नेक न इत उत जाइ' में 'इत उत' से किसी भाव की अनुभूति नहीं होती । 'इत उत' के अर्थ हैं 'इतस्ततः' जो कि जन साधारण के अनुभूति में मेल नहीं खाती । ऐसे ही 'गगन में बेले का फूलना', 'अनहद बांसुरी का बजना' आदि योग मार्गियों के ढंग पर ब्रह्म का निरूपण है । ब्रह्म की सर्वव्यापकता के वर्णन में इन की अनुभूति की तीव्रता लक्षित होती है । नैनन आगे देखिए तेज पुंज जगदीश ।

बाहर भीतर रमि रह्यो सो धरि राखउ सीस ।[3]

१- संत बानी संग्रह जगजीवन साहिब पद सं० पृ० सं० १।११८
२- " यारी साहिब १।१२०
३- " १।१२० .

शृंगार वर्णन भी बड़ा मर्मस्पर्शी है । चित्र की रेखाएं स्पष्ट अंकित हैं । 'प्रिय मिलिबे को उठि चली चहुं मुख चिकना वारि' में भाव अनुभूतिपूर्ण है ।

भाषा - डा० वर्मा के मतानुसार इन की रचना सरल और सरस है । उस में भाषा का बहुत चलता हुआ रूप है ।[१] भाषा ब्रज है । अरबी फ़ारसी शब्दों का प्रयोग बहुतायत में है । कहीं कहीं शुद्ध ब्रज भाषा भी मिलती है जैसे 'चिकना', 'अगमी' आदि ।

दरिया साहिब (बिहार वाले) की शैली

इन की शैली सरल है । सीधे सादे ढंग से जहाँ बात कही है वहाँ प्रभावोत्पादक है । तिल में फूल की सुगन्ध जैसे बस जाती है वैसे ही घट घट आत्मा है । यह विचार अनुभूतिमय है । भेद विवेचन में थोड़ी शैली दुरूह सी प्रतीत होती है ।

> सुमना अग्र परिमल करै छिरकहिं बहुत सुढारि ।
> दया दरस दीदार में मिटा कल्पना कारि ।[२]

इस में परिचित वस्तु के समान अनुभूति पाठक को नहीं होती अत: भाव अस्पष्ट हैं । वैसे कहीं कहीं ऐसे भाव की अभिव्यक्ति हुई है कि पढ़ते ही ईप्सित अर्थ का बोध हो जाता है । साधारण सी उपमा में कहीं कहीं भाव भरे हैं ।

> है सुलभोई पास में जान परे नहिं सोई ।
> भरम भी भटकत फिरै तिरथ बरत सब कोई ।[३]

इस में 'सुलभोइ' शब्द का प्रयोग भाव को तीव्र बनाता है । ऐसे ही 'नैन भया सुखसाठ' में कवि के हृदय पटल पर अंकित मानस चित्र को स्पष्ट करता है । मुहावरों का भी प्रयोग है । 'सिर धुनि धुनि पछिताइ' प्रयुक्त है ।

१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ २८०

२- संत बानी संग्रह दरिया साहिब (बिहार वाले) पद सं० पृ० सं० २।१२३

कहीं कहीं शब्दों का विलास अधिक दिखाई देता है । 'कोठा', 'महल', 'अटारिया' में 'कोठा' और 'अटारिया' एक ही अर्थ के बोधक हैं । वैसे जहाँ तहाँ कला पूर्ण ढंग से शब्दों और पद खंडों का प्रयोग किया है जिस से उक्ति में सरसता आ गई है ।

भाषा - लाक्षणिक भाषा का प्रयोग हुआ है । इन की भाषा अवधी प्रधान है । डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी का कहना है जिन विभिन्न भाषाओं और शब्दावलियों का प्रयोग किया है उन के अनुकूल उन की शैली में विभिन्नता पाई जाती है - - - - - - - - - जहाँ वह ज्ञान चर्चा करते हैं, वहाँ संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग है , जैसे 'सुकृत चिरंमहि' इस के अतिरिक्त पंजाबीपन लिए हुए अरबी फारसी शब्दों से भी प्रभावित हैं ।[1]

दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की शैली

इन के चित्र बड़े प्रभावोत्पादक हैं । विरहिन का पीला शरीर, सूखा हुआ मन, न रात में नींद आती है न दिन में भूख इन रेखाओं से चित्र खींचा है । इस में 'नीदड़ी' शब्द का प्रयोग विशेष भाव को जगाता है । विरह वर्णन में अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन भी मिलते हैं । 'विरहिन का घर विरह में वा घट लोहु न मांस' कहीं कहीं अनुप्रास का प्रयोग भी है 'सिसके सांसों सांस' । उपमायें साधारण जीवन से ली हैं । बादल आने से भूमि में बीज के लिए फलने फूलने की आशा होती है वैसे ही गुरु के संसर्ग से जीवन के सार्थक होने की सम्भावना होती है । विचारों की सुसम्बद्ध शैली का विकास विरह वर्णन में मिलता है ।

विरहिन पिउ के कारने ढूंढन वन खंड जाइ ।
निशि बीती पिउ ना मिला दरद रहा लपटाइ ।[2]

- -

१- संत कवि दरिया एक अनुशीलन डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी पृष्ठ २१५

२- दरिया साहिब की बानी पद सं० पृ० सं० ६।१२

<u>भाषा</u> - भाषा खड़ी बोली से प्रभावित अवधी है । संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग मिलता है । ग्रामीण शब्दों का प्रयोग नहीं किया है । भाषा अच्छे स्तर की है । डा० दीक्षित का कहना है कि खड़ी बोली का इतना पुष्ट और विकासशील रूप बहुत कम संत कवियों में उपलब्ध होता है ।[1] सार्थक शब्दों का प्रयोग किया है । 'दरिया संगत साध की सहजे पलटे अंग'[2] में 'पलटे' शब्द भाव को स्पष्ट कर देता है । साधु के संग से स्वाभाविक प्रवृत्तियों की वृत्ति बदल जाती है जैसे मजीठ के रंग से कपड़ा बदल जाता है अतः यह शब्द उपयुक्त है । ऐसे ही 'पड़े परिंगा अग्नि में देह कि ताहि संभाल' में 'संभाल' शब्द का पर्यायवाची रक्षा करना उद्धार करना आदि शब्दों से उस भाव को न ला पाता जो इस शब्द से आया है ।

<u>बुल्लादास की शैली</u>

इन्होंने जो कुछ कहा है उन विचारों को जनता ज्ञान की कसौटी पर कस कर देख सकती है । इसी से इन के भाव अधिक प्रभावशाली हैं । बात को घुमा फिरा कर न कह कर स्पष्ट तथा सरल शब्दों में ही कह दिया है

स्वाद पलक मा नाम मधु सुधा स्वाद जनि होइ ।
बुल्ल ऐसी स्वाद को जानत होइ न होइ ।[3]

विचारों की सुसम्बद्ध शृंखला का विकास कहीं कहीं सुन्दर बन पड़ा है । प्रेम के सुख का विकास जिस घट में होता है उस में सभी इन्द्रियां स्तम्भित होकर देखती हैं । उपमायें भी भावोत्कर्षक हैं । 'राम नाम' को 'दीपक जिसा', 'परिवार' को 'नदी नाव संयोग' कहा है । 'सलक', 'गरक' ऐसे अनुप्रास शब्द का भी प्रयोग है ।

१- हिन्दी संत साहित्य डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित पृष्ठ २६९
२- संत बानी संग्रह दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) पद सं० पृ० स० ८।१२९
३- - - बुल्लादास - - ३।१३४

<u>भाषा</u> - कहीं कहीं ब्रज है कहीं अवधी है । संस्कृत तत्सम शब्दों के साथ फारसी शब्दों का प्रयोग खटक जाता है । 'केवल नाम सनेह बिन अम्म समूह हराम' ऐसे ही 'बिकिर लगाय' शब्द सुन्दर नहीं लगता । भाषा में प्रसिद्ध पदों तथा प्रचलित मुहावरों का प्रयोग है । 'ज्यों जहाज के काग को सूझे और न ठौर'।[1]

'बूलन बिरवा प्रेम को जाम्यो जेहि घट माहिं' में 'जाम्यो' शब्द का प्रयोग सार्थक है । इस के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं जैसे उगना, प्रगट होना, उपजना, अंकुरित होना[3] आदि । पर जो अर्थ कवि बोध कराना चाहता है वह और शब्दों से न हो पाता । ऐसे ही 'बूलन दीपक बरि उठे' में 'बरि उठे' शब्द अनुभूति की व्यंजना में सहायक है । डा० दीक्षित के विचार से इन की भाषा और रुचि खड़ी बोली के बहुत निकट है ।[4]

<u>बुल्ला साहिब की शैली</u>

इन्हों ने सरल शब्दों में गम्भीर भावों को भरा है । साधारण से शब्दों में 'ना जो टूटे ना जो फूटे ना कबहीं कुम्हिलाइ' से ब्रह्म का निरूपण किया है । साधारण जीवन से उपमेय लेकर भावों को चित्रित किया है । 'नहिं जानो कौनो घरी में आइ मिले भगवान' में कितनी तीव्र लालसा भगवान को पा सकने की प्रगट होती है । शब्द सीधे सादे ढंग के हैं पर भावों की अनुभूति तीव्र है । कहीं कहीं गूढ़ शब्दों के कारण भाव सरल नहीं जान पड़ते

अक्षय रंग में रंगिया दीन्हेउ प्रान अकोर
उनमुनि मुद्रा मदन धरि बोलत मधुर बोल ।[5]

इन शब्दों में भावों की तीव्रता तथा सौंदर्य नहीं पाया जाता ।

१-२ संत बानी संग्रह बूलनदास पद सं० पृ० सं० ५।१२८, ३।१३७

३- पर्यायवाची कोष पृष्ठ २४१

४- हिन्दी सन्त साहित्य पृष्ठ २६९

५- संत बानी संग्रह बुल्ला साहिब पद सं० पृ० सं० १।१४०

<u>भाषा</u> - भाषा भोजपुरी अवधी है । कहीं कहीं अरबी फारसी के शब्द तथा कहीं कहीं संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है ।

<u>केशव दास की शैली</u>

इन्होंने गम्भीर भावों का विवेचन साधारण उपमाओं तथा रूपकों द्वारा अंकित किया है । ब्रह्म का विवेचन करते हुए कहते हैं ब्रह्म में सुरत ऐसी समा जाती है जैसे -

जैसो संमति जेत में परे सो संमति होइ [१]

मन में मन मिल जाता है जैसे सरिता समुद्र में मिल जाती है । भावों में तीव्रता पाई जाती है । कहीं कहीं अनुभूति तीक्ष्ण है ।

सत्गुरु मिलि सो का भयउ घट नहि प्रेम प्रतीति [२]
अन्तर कोउ न भीजइ ज्यों पत्थल जल भीत ।

इस में पत्थर से उपमा देना बड़ा उपयुक्त है पर ऐसे उदाहरण कम ही मिलते हैं । कहीं कहीं गुरु को समझाने के लिए जीवन में आने वाले सरल उपमानों को लिया गया है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा पूर्वी से प्रभावित हुई है । डा० वर्मा ने लिखा है केशव दास की अपनी भाषा के प्रयोग में बड़े स्वतंत्र हैं ।[३] भाषा कटु ध्वनि नहीं है । ध्वनियों की योजना प्रसंगानुसार की है । अधिक अलंकारों का प्रयोग नहीं है ।

१- संत बानी संग्रह केशव दास पद सं० पृ० सं० १।१४१
२- " " " " ७।१४१
३- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ३८०

चरन दास की शैली

इन की शैली अभिव्यंजना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । साधारण जीवन से उपमानों को लेकर ब्रह्म, जीव, जगत का विवेचन किया है । दूध में घी, मेंहदी में रंग के समान ब्रह्म की व्यापकता है । इस तरह दर्शन का निरूपण सरल शब्दों में किया है । जगत में कैसे रहना चाहिए इस के लिए बड़ा सुन्दर दृष्टांत लिया है ।

जग मांहि ऐसे रहो जिमि जिम्या मुख मांहिं ।
घीव घना भक्षन करै तो भी चिकनी नाहिं ।[1]

इन्होंने एक ही भाव को कई तरह से समझाने का प्रयत्न किया है पर इस में कहीं पुनरुक्ति का दोष नहीं आता क्योंकि प्रत्येक बार नए नए उपमान हुए हैं इस से भावों में तीव्रता आ जाती है । जैसे 'जगत में रहने' को 'जीभ की तरह', 'कमल की तरह' 'गुरु' को 'पारखी', 'सूरमा' आदि अलग अलग दृष्टांत लेकर भावों को चित्रित किया है । विरह के वर्णन के चित्र भी कौशल पूर्वक खींचे गए हैं । इस में मनोव्यथा अनुभूति पूर्ण चित्रित है -

मुख पियरो सूखे अधर आंखें खरी उदास ।
आह जो निकसै दुख भरी औंडेर लेत उसास ।[2]

शब्दों का चयन महत्वपूर्ण है । 'सूसर' अर्थात् बनिए का पुत्र का प्रयोग यहां बड़ा सुन्दर लगता है 'सूसर के बालक हुते भक्ति बिना कंगाल'।[3] ऐसे ही 'नयनों झलके' शब्द में 'आसू टपके नयन' में 'टपके' शब्द बड़ा सार्थक है । 'झलके' का पर्यायवाची 'चमके, दमके, जगमगे'[4] शब्द होते हैं पर 'झलके' शब्द से जो अभिव्यंजना पाई जाती है वह और किसी में नहीं ।

१- संत बानी संग्रह चरनदास शब्द सं० पृ० सं० ३।१४६
२- " " " ६।१४५
३- " " " ६।१४२
४- पर्यायवाची कोष पृष्ठ १०४

भाषा - इन की भाषा में साहित्यिक अवधी तथा ग्रामीण अवधी के शब्द हैं । इन्हों ने शब्दों का परिष्कार कर अपना लिया है । इस में विदेशीपन लुप्त हो गया है । संस्कृत के शब्दों को उच्चारण की सुविधा के लिए बदल लिया है ।

गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु देव के देवा ।
सर्व सिद्ध फल देव गुरु तुम मुक्ति करेवा ।[1]

इसी तरह 'क्षमा' को 'छिमा', 'मोक्ष' को 'मोख', 'निश्चय' को 'निस्चय' लिखा है । हरिऔध जी ने लिखा है इन की भाषा सन्तबानियों की सी है । ब्रज भाषा के शब्द अधिक हैं । कहीं कहीं राजस्थानी की भी झलक मिलती है ।[2]

बुल्ला साह की शैली

इन की शैली प्रभावोत्पादक है । जो बात कही है वह जोरदार शब्दों में है । दृष्टांत साधारण जीवन से लिए हैं । कहते हैं सुन्दर सी साड़ी पहनकर अन्धों के बीच में जाओ तो उस की क्या कीमत होगी । तीर्थ, व्रत, पूजा, पाठ बाह्याडम्बर को बहुत बुरा कहा है । 'गंगा गया जाय नहिं छुट है, भावै सौ सौ गोते खाय'।[3] ऐसे ही धर्मशाला में डाकू और ठाकुर द्वारे में ठग रहते हैं । ऐसे शब्दों का प्रयोग है कि प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता । मुहावरे का भी प्रयोग किया है ।

बुल्ला हुच्छे दिन तौं पिछले गये जब हरि किया न हेत ।
अब पछुताया क्या करे जब चिड़िया चुग लिया खेत ।[4]

शब्द प्रभावपूर्ण हैं । 'मविन', 'सडुग्ग', 'पाउपन्न' आदि गंवार शब्दों का प्रयोग चमत्कार पूर्ण है । शैली में कहीं भी शिथिलता नहीं आने

१- संत बानी संग्रह धरम दास पद सं० पृ० सं० ७।१४९
२- हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास पृष्ठ ४६४
३- संत बानी संग्रह बुल्ला साह पद सं० पृ० सं० ५।१५२
४- " " " " ३।१५३

पाई है । समाज के प्रति व्यंग और चुटकियाँ बड़े कौशल के साथ कहि हैं । 'कुल्काबारे जाय' उन्होंने तो व्यंग से कहा है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा फारसी मिश्रित पंजाबी है । कहीं कहीं खड़ी बोली का प्रयोग है । गंवार शब्दों का भी प्रयोग किया है ।

<u>सहजोबाई की शैली</u>

इन की शैली सरल, स्वच्छ, प्रभावोत्पादक तथा मर्मस्पर्शी है । 'गुरुदेव' के वर्णन में कुछ शब्दों का प्रयोग बार बार करने से प्रकरण प्रभावयुक्त हो गया है । 'गुरु बिन' शब्दों का प्रयोग कई बार किया है । ऐसे ही सच्चिदानन्द के वर्णन में निर्गुण ब्रह्म का विस्तार पूर्वक वर्णन प्रभावशाली है । उपमा में उपमेय साधारण जीवन से लिए हैं । इसी से मर्मस्पर्शी हैं । 'गुरु' को 'रंगरेज', 'नाम' को 'जहाज' 'धन, जोबन, सुख सम्पदा' को 'बादर की छाँहि', 'जगत के सुख दुख' को 'लोह की लड़ुवी', 'छिन पानी छिन आग' कहा है ।

जगत तरैया भोर की सहजो ठहरत नाहिं ।
जैसे मोती ओस की पानी अंजलि माहि ।[1]

उपमाओं की तारतम्यता से भावव्यंजना की शक्ति बढ़ गई है । शब्दों का चयन भी बड़ा सुन्दर है । 'गुरु मगहद पग राखिये झिलमिल झिलमिल छांहु' में 'झिलमिल' शब्द सार्थक है । इस का प्रयोग भाव को अधिक स्पष्ट करता है । विशेषणों से भावों में तीव्रता बढ़ जाती है । 'बहकते बैन' 'टपके नैन' में शब्द चातुर्य के साथ साथ बैन और नैन के भावों में वृद्धि हुई है । इन शब्दों से अनुभूति का भी परिचय होता है । ऐसे ही 'काम क्रोध मद मोह में सहजो उरझे नाहिं' में 'उरझे' शब्द का स्थान कोई और शब्द नहीं ले सकता क्यों कि वास्तव में जीव इन वस्तुओं में उलझ जाता है । इन की भाषा में स्वाभाविकता, और सरलता सर्वत्र है । स्वभाविक दृष्टांत उपमा आदि अलंकारों के प्रयोग से प्रसादात्मकता बढ़ गई है ।

१- संत बानी संग्रह सहजोबाई पद सं० पृ० सं० १०।१६३

भाषा - इन की भाषा ब्रज है । ब्रजभाषा की क्रियाओं का सर्वत्र प्रयोग किया है । कहीं कहीं खड़ी बोली की क्रियाओं और सर्वनामों का प्रयोग किया है जैसे राखिये, छोड़िये । संस्कृत के तद्भव शब्द भी पाए जाते हैं । जैसे 'शिष्य' का 'सिष' और 'पुष्ट' का 'पिष्टल' आदि । अरबी फारसी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है । 'आलिम' शब्द का प्रयोग किया है ।

<u>दयाबाई की शैली</u>

संत परम्परा के अनुसार इन की शैली सरल और सहज है । एक ही विचार की पुष्टि के लिए भिन्न भिन्न दृष्टांत दिए गए हैं जिस से वह हृदयग्राही हो सके । उपमान साधारण जीवन से लिए गए हैं । 'संसार' को 'ओस का मोती', 'सराय का वास', 'कर्म' को 'सरिता', तथा 'साधु' को 'सिंह' के समान कहा है । भावों का यथा तथ्य चित्रण हुआ है । प्रभु की व्यापकता के चित्रण में कल्पना का समावेश भाव को सुन्दर बना देता है ।

बही एक व्यापक सकल ज्यों मणिका में डोर ।[1]

पाठक के हृदय पर स्पष्ट चित्र अंकित हो जाता है । भाव समझते देर नहीं लगती । भावाभिव्यक्ति के साथ साथ अलंकारों का योग काव्य को सुन्दर बना देता है । अनुप्रास के द्वारा शब्दों में ध्वनि आई गई है । 'अजर अमर अविगत अमित अनुपम अलख अभेव । अविनाशी आनन्दमय अभय सो आनन्द देव' ।[2] यहाँ अलंकार भावानुकूल आए हैं इसी से उसका सौंदर्य द्विगुणित हो जाता है । इस में सहजता है जो खटकती नहीं । भाषा भावों के अनुकूल है जनता को काव्य हृदयग्राही है । इस लिए सरल शब्दों में ही भाव व्यक्त किए हैं । 'बौरी ह्वै चितवत फिरूं' में 'बौरी' शब्द हृदयग्राही है । 'छिन उठूं छिन गिर परूं' में भी सार्थक शब्द पाए जाते हैं ।

१- हिन्दी संत साहित्य दया बाई पद सं० पृ० सं० ५।१७९

२- " " " " " ८।१८०

प्रेम के वर्णन में 'कहूं धरत पग धरत कहुं डिगमिगात सब देह' में 'डिगमिगात' शब्द भाव को स्पष्ट करता है । 'बिन सत आदर बात कहि' में बादल का गुण ही है वायु से चलायमान होना 'बिनसत' शब्द को सार्थक करता है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा ब्रज है । संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग है । 'अन्तर्यामी', 'तिरविध' अरबी फारसी के 'गलतान' 'मिहिर' शब्दों का प्रयोग है ।

गरीब दास जी की शैली

आचार्य शुक्ल ने कहा है सच्ची कल्पना वह है जो अंतस् में सुषुप्त को जागृत कर दे और तत्-सम्बन्धी भावों को पूर्णतया व्यंजित कर दे।[1] गरीब दास जी ने अन्तस् में सुषुप्त भावों को जगाने के लिए विविध रूप से साखियां रची । 'ऐसा सतगुर हम मिला -----' से आरम्भ कर कई तरह की उपमाएं तथा विचार प्रगट किए । अपनी कल्पना से अपने विचारों को तरह तरह से व्यक्त किया। 'सतगुरु' को 'अकल पच्छ की जात', 'झिरम्बर जात', 'सुल्त विदेही' 'गलताना' 'गुल्जार' आदि कहा है । इसी तरह सुमिरन के प्रकरण में 'कोटि' शब्द का प्रयोग कई साखियों में किया है । उपमाएं चमत्कार पूर्ण एवं स्वाभाविक हैं । जन जीवन के उपमानों का चयन किया है । 'जैसे तिल में तेल है यूं काया मध राम' तथा 'यह माटी का महल है कुमार लिए छिन माहिं' आदि भावों को प्रभावशाली बनाते हैं । 'प्राण' को 'सुआ' तथा 'शरीर' को 'पिंजरा' कहा है । प्रचलित मुहावरों का भी प्रयोग मिलता है । 'यह मन ऐसे जात है जैसे बुदबुद पौन' । 'जगत' को 'सुआ सेमर सेइआ लागे चोंड़ टूट' का रूपक देकर भ्रम पूर्ण बताया है । गरीब दास जी ने पुरपहन शब्द का प्रयोग कई जगह किया है ।

पुरपहन परलोक है अपनी सतगुरु सार ।[2]
पुरपहन की पैठ में सतगुरु ले गया साथ ।
पुरपहन की पैठ में प्रेम पियाले पूब ।
जे पुरपहन में गली बहुरि न बेबे जाय ।

१- हिन्दी संत साहित्य डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित पृष्ठ १९०
२- संतबानी संग्रह - गरीबदास पृ. १८३,

शब्दों का चमत्कार इन के काव्य में बहुत मिलता है ।

अविगत की अविगत कथा अविगत है सब ख्याल ।
अविगत सो अविगत मिले कर जोरे सब काल ।[१]

इन के शब्द काव्य में बोलते से प्रतीत होते हैं । इन से सजीवता बढ़ जाती है । 'झिलमिल नूर जहूर है' में 'झिलमिल' शब्द 'दरस परस देखत चुवा करके दिन राती' में 'चुवा' का फरकना सार्थक शब्द है । कहीं कहीं उपयुक्त शब्दों का प्रयोग नहीं जान पड़ता ।

ऐसी करना चाहिए ज्यों चन्दन के अंग ।
मुख से कछू न कहत हैं तन कूं खात भुजंग ।[२]

इस में भुजंग चन्दन के वृक्ष को खाते हैं यह उचित नहीं जान पड़ता । डा० राम कुमार वर्मा ने लिखा है कबीर रचना की भाँति गरीब दास की रचना भी बहु-मुखी है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा अवधी है । इनकी भाषा अवधी और सन्तों की अपेक्षा अधिक परिष्कृत और परिमार्जित है । शब्द खड़ी बोली के बहुत निकट हैं । विश्वनाथ तिवारी ने लिखा है गरीब दास ने नवीन पदावलि का प्रयोग किया है । एक ही पद में संस्कृत और फारसी शब्दों का गठबंधन कर दिया है । इस तरह का प्रयोग अन्यत्र देखने को नहीं मिलता ।[३] जैसे 'प्याला प्रेम पिलाइया गगन मंडल गरगाव' 'जिन्दा जोगी जगतगुर मालिक मुरशिद पीव' आदि ।

<u>गुलाल साहिब की शैली</u>

इन के काव्य में ब्रह्म के प्रति इन का अनुभव पाया जाता है । वास्तव में यह विषय सरलता से नहीं समझाया जा सकता । इसी लिए

१- संत बानी संग्रह गरीब दास पद सं० पृ० सं० ५।१८७
२- " " " " " १३।१०५
३- निर्गुण काव्य - दर्शन सिद्धनाथ तिवारी पृष्ठ ३७०

इन के भाव पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो पाए हैं । वैसे इन्होंने सहज से सरल रूपक बनाने का प्रयत्न किया है ।

बिनु जल कवंला बिगसेउ बिना भंवर गुंजार ।
नाभि कमल जोती बरै तिरवेनी उजियार ।[1]

इस में ऐसे स्थान का चित्र सामने आता है जो साधारण अनुभूति के परे है । सरल शब्दों में गूढ़ भाव भरे हैं जो रहस्यमय हैं ।

<u>भाषा</u> - भाषा अवधी और ब्रज है । पूर्वीपन या भोजपुरी की छाप सर्वत्र है । 'पायल', 'गायल', 'परल हिंडोलवा' ये सब भोजपुरी के ही उदाहरण हैं । इस के अतिरिक्त खड़ी बोली का विकास शील रूप भी दिखाई देता है । कहीं कहीं भोजपुरी भाषा के शब्द के कारण झंकार उत्पन्न हो गई है जो कि पढ़ने में सरस लगते हैं । 'प्रेम के परल हिंडोलवा' तथा 'पिव पायल तिन गायल' पढ़ने में रुचिकर प्रतीत होते हैं ।

<u>भीखा साहिब की शैली</u>

इन्होंने भी परम्परा के अनुसार ब्रह्म का निरूपण तथा योग सम्बन्धी चर्चा की है । गूढ़ विषयों को भी सरल उपमाओं के द्वारा अनुभवगम्य तथा भावग्राही बना दिया है । ब्रह्म की व्यापकता का वर्णन 'एकई पाया नाम का सब घट भभिया माल' कह कर दिया है । अति साधारण जीवन सम्बन्धी दृष्टांत भी लिए हैं । ब्रह्म के मिलन के लिए भांग का दृष्टांत लिया है ।

काया कुंड बनाइ के प्रेम घोटना देई ।
विजया जीव मिलाइ के निर्मल घोटा लेई ।[2]

'शरीर' और 'मन' को 'कुंडा' 'घोटना' को आव से उपमा दी

1- संत बानी संग्रह गुलाल साहिब पद सं० पृ० सं० ४।२०८
2- " भीखा साहिब " १।२११

डा॰ राम रतन भटनागर ने लिखा है कि इन में भाव की दृष्टि से कोई नूतनता नहीं है । भाव प्रकाशन में नूतनता है । यह नहीं कहा जा सकता कि उन के द्वारा निर्गुण की अनुभूति में कितनी सच्चाई तथा अभिव्यक्ति है पर काव्य सौष्ठव की दृष्टि से ऐसे पद संत काव्य के नीरस पदों में एक सुन्दर वैभिन्न्य उपस्थित करते हैं ।[1]

<u>भाषा</u> - इन की भाषा ब्रज अवधी भोजपुरी खड़ी बोली तथ अरबी फारसी का सम्मिश्रण है । इन के काव्य में सर्वनाम तथा क्रियापद भी ब्रज के हैं 'लियो बरन के बास' आदि ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है । 'प्रेम प्रीति पति ताहि को' 'फाहुलि अगम अविगतय की' 'अरूपाई' आदि शब्द प्रयुक्त हैं । अरबी फारसी शब्द भी मिलते हैं । 'कहत कबीर मिय रूप को' 'नूर बहूर झलकत रहे' आदि ।

<u>रज्जब साहिब की शैली</u>

इन की उपमायें साधारण जीवन से ली गई हैं । 'शरीर' को 'कुम्भ', 'जीव' को 'जल', 'विरह' को 'भुवंग' 'औषधि' को 'हरि दीदार' कहा है ।

रूई तार तत्व मंच है बिगसि बिनौला प्राण ।
जन रज्जब यह कुम लहूं अंकुर आतम सांड ।[2]

रूई से उपमा साधारण कोटि की प्रतीत होती है । वास्तव में जीवन का अधिक अनुभव न होने के कारण अति साधारण दृष्टांत की ओर कवि की दृष्टि जाती है । यद्यपि वह अपने काव्य में विषय की दृष्टि से परम्परा का निर्वाह करना चाहता है पर जैसी भावनायें होती हैं उसी के अनुकूल उस कल्पना शक्ति का विकास होता है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा में ब्रज अवधी राजस्थानी और संस्कृत शब्दों का सुन्दर सम्मिश्रण है । भाषा खड़ी बोली के भी निकट है । अरबी, फारसी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है । संस्कृत शब्द जैसे 'दीरघ', 'ज्ञान' अरबी फारसी जैसे 'रवा दुवाय की' 'दिलगीर' तथा राजस्थानी 'कामण' शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

1- कबीर डा॰ राम रतन भटनागर पृष्ठ २०६
2- श्री स्वामी रज्जब जी की बानी बम्बई - पृ.१३४

बखना जी की शैली

इन की शैली साधारण कोटि की है । दृष्टांत अति साधारण जीवन से लिए हैं । माया का संसर्ग घोड़े के खुर में चन्द्र किरणों के समान विषैला है । विरह वर्णन अनुभूति पूर्ण है । विरहिनी की प्रार्थना बड़ी हृदय स्पर्शी है । 'कागा को कहती है आखों को छोड़ देना जिस से प्रिय को देखा जा सके'। अनुप्रास का सौंदर्य भी कहीं कहीं देखने को मिल जाता है ।

मन मोटा मन पातला घोड़ी मन लाख ।[1]

<u>भाषा</u> - भाषा राजस्थानी प्रभावित ब्रज है । 'बखना बाणी सो भली जा बाणी में राम' 'बखना सुणना बोलणा राम बिना बेकाम' ऐसे ही शब्दों का अधिकतर प्रयोग किया है ।

पलटू साहिब की शैली

इन की शैली में सरल भावों की अभिव्यक्ति मिलती है । सीधे सादे शब्दों में बात कही है । दृष्टांत भी अति साधारण हैं । और भाषा में प्रवाह है । ध्वनि मधुर है इस से तुरन्त ही भाव हृदयंगम हो जाते हैं । परम्परा के अनुसार ब्रह्म की व्यापकता को व्यक्त किया है जैसे -

काठ में अगिन है फूल में ज्यों बास ।
हरिजन में हरि रहत हैं ऐसे पलटू दास ।[2]

शाश्वत भावनाओं को साधारण से शब्दों में प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है । मेंहदी में लाली, दूध में घी प्रयत्न से निकलता है । यह सब अनुभवगम्य तथ्य हैं । इसको समझने में किसी को भी देर नहीं लगती ।

१- बखना जी की बानी संत साहित्य सुमन माला प्रथम सुमन सं० स्वामी मंगलदास सं० १९९३ पृ० १३

२- संत बानी संग्रह पलटू साहिब भाग सं० पृ० सं० १।२१७

प्रीति की प्रगाढ़ता मंजीठ के रंग के समान होती है जिस का अनुभव कर के कवि ने देखा है । कहीं कहीं दृष्टांत निम्न कोटि के लिए हैं 'आतमवर्षी मिटी है और पाउर सब मोट' इस में 'आत्म वर्षी' की उपमा 'पाउर' से कुछ सुन्दर नहीं प्रतीत होती इसी प्रकार 'संसार' को 'खरबूजा' कहना उपयुक्त नहीं जान पड़ता । सूरमा के वर्णन में ओजपूर्ण वर्णन मिलता है । 'धुवा फरकै सुन्न' में शब्दों में वीर काव्य की तरह ध्वनि है । शब्दों का चुनाव उपयुक्त हुआ है । 'सुन्न धुवा फहराइ' में 'फहराइ' शब्द सार्थक है । लोकोक्तियों के प्रयोग से शैली में प्रभावोत्पादकता बढ़ गई है । 'नाचन को ढंग नाहीं है कहती आंगन टेढ़'[1] तथा 'धोबी को गदहा भयो ना घर को ना घाट'[2] आदि मुहावरों का प्रयोग किया है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा शुद्ध अवधी है । परमार्जित और प्रवाहित भाषा का प्रयोग किया है 'टेढ़ सोझ मुंह आपना अपना टेढ़ा नाहिं' तथा क्रियाओं में 'बाबी लाइही' में 'लाइहीं' क्रिया और 'बूटी के सोवते' में 'सोवते' क्रिया का प्रयोग किया है । संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग अरबी फारसी का प्रयोग तथा ग्रामीण अवधी का प्रयोग सर्वत्र मिलता है ।

तुलसी साहिब की शैली

इन की शैली संतों की शैली है । इस में मानव हृदय के शाश्वत भावनाओं और प्रवृत्तियों का चित्रण बड़ी सच्चाई के साथ किया गया है ।

हाय हाय कर धीय औ कुटुम्ब काज अजान ।
मान बड़ाई जगत की सूते करि अभिमान ।

१- संत बानी संग्रह पलटू साहिब पद सं० पृ० सं० २८।२२६
२- " " " " १।२१९
३- " तुलसी साहिब " ४।२३६

इसी तरह मूर्ख किसी की बात नहीं सुनता जो अक्किल की बात कहता है उसी पर उलट पड़ता है । इन के भाव स्वतः शब्दों द्वारा रमणीय रूप में व्यक्त होते हैं । बाह्याडम्बर की आवश्यकता नहीं । जन जीवन से देखे जाने वाले दृष्टांत लिए हैं । जीव संसार में वैसे फंसा है उस का दृष्टांत-मक्खी जैसे शहद में चिपक जाती है/प्रीति चकोर के समान करनी चाहिए। गुरू का ध्यान करने के लिए अलक पच्छ पक्षी के समान कहा है । अब समझे से का भयो चिड़िया चुग गई खेत ।[1] मुहावरे का भी प्रयोग किया है । शब्दों का सार्थक प्रयोग भी है । जगमग अम्बर में हिया में जगमग शब्द अनुभूति को व्यक्त करता है । इन की शैली में प्रसंगानुकूल भाषा और शब्दों की योजना है । कवि भाषा और शब्दों द्वारा वातावरण को बनाने में समर्थ हो सके । भाषा भाव की अनुगामिनी है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा में संस्कृत राजस्थानी पंजाबी फारसी अरबी और खड़ी बोली के अनेकों उदाहरण मिलते हैं । क्रियापदों की विभिन्नता सर्वत्र उपलब्ध है । मनमाना प्रयोग मिलता है । 'कभी' को 'कबी', 'समुद्र' को 'समुन्द्र' तथा 'गोहराय', प्रकाशिक आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

<u>कृपा राम की शैली</u>

इन का उद्देश्य तो लक्षणग्रंथ लिखने का था पर हिततरंगिनी में लक्षणों के उदाहरण जो मिलते हैं वे शृंगार रस के दोहों की परम्परा की एक कड़ी हैं । अति उत्तम भावव्यंजना न होते हुए भी इन्हों ने परम्परा को आगे बढ़ाने में अपना योग दिया है । इन्हों ने सं० १५९८ में इस को लिखा । शुक्ल जी का कहना है इन के बहुत से दोहे बिहारी से मिलते हैं ।[2] इस से यह अभिप्राय निकलता है कि जो धारा पहले चली आ रही थी उसी को इन कवियों ने आगे बढ़ाया है । इन के दोहों में सरल भाव व्यक्त किए गए हैं । साधारण शब्दों में साधारण भाव हैं पर पाठक को इन के वर्णन में किसी भांति का संदेह नहीं रह जाता । कृष्णाभिसारिका

१- संत बानी संग्रह गुरुमुखी साहित्य पद सं० पृ० सं० ४।२५४
२- कृपा राम कवि - राम चन्द्र शुक्ल का इतिहास पृष्ठ २५०

का एक चित्र खींचा है जिस में वातावरण तथा नायिका की मानसिक स्थिति एक ही रंग में रंगी है । अंधेरी रात, नीले वस्त्र, तथा मृगमद का लेप तो बाह्य उपकरण हैं श्याम के रंग में रंगी हुई उस के मन की स्थिति है ।[1] ऐसे चित्रों की सफल योजना चतुर कवि ही कर सकता है ।

शैली का एक गुण स्पष्टता भी है । शब्द ऐसे प्रयोग किए जांय कि भाव समझने में देर न लगे । बिना पानी के मछली का तड़फना सभी ने देखा है । वियोगिनी की उपमा मछली से दी है । इस भाव को सरलता से हृदयंगम किया जा सकता है । इन के चित्र प्रभावोत्पादक हैं । शब्दों का चुनाव उपयुक्त है ।

छिन रोवै, छिन में हंसै, छिन में बहु बतराय ।

गहै मौन छिन में बधू, छिन छुगबळ उफनाय ।[2]

इस में 'उफनाय' शब्द नायिका की मानसिक स्थिति का पूर्ण परिचय कराता है । कोई वस्तु गर्म की जाती है तब उस में उबाल आता है । विरह की गर्मी से नायिका के भावों में कभी कभी उबाल आ जाता है । विरहिणी कभी रोती है, कभी हंसती है कभी बातें बहुत करती है कभी मौन धारण करती है ऐसी मानसिक स्थिति में कोई मन में ऐसा भाव आ जाता है जो उस के हृदय को झकझोर देता है और वह बिलख बिलख कर रो पड़ती है । इसी भाव को यहां 'उफनाय' शब्द से स्पष्ट किया है । इन की उपमायें प्रभाव उत्पन्न करने वाली हैं । यौवन की लालिमा की उपमा ईंगुर से दी है । लाली स्वास्थ्य और लज्जा की द्योतक है, यौवन में दोनों भाव ही होते हैं ।[3] अधिकांश इन के दोहों में सरसता है । भाव पूर्ण है तथा भाषा परिमार्जित है । गंवारू भाषा का भी प्रयोग नहीं है । न तो शब्दों में

१- हिततरंगिनी - कृपा राम पृ० २८

२- " " पृ० २

३- " " पद सं० पृ० सं० ४१।१३

अधिक तोड़ मरोड़ है । जैसे साधारण भाव हैं वैसे ही साधारण शब्द हैं पर भाव हृदयस्पर्शी हैं । कई भाव एक साथ व्यक्त करने में निपुण हैं यौवन की झलक आने पर खीचती है, हंसती है, लजाती है तथा चमकती है ।[1] इस में भावों का गुंफन तथा तारतम्यता है । अलंकारों का प्रयोग कम मिलता है । प्रचलित पदों का प्रयोग किया है । भोर की तरैयों की अनुभूति साधारण जन को भी होती है उसी उपमान को लेकर यौवन के भावों को स्पष्ट किया है ।

अंग अंग जोबन छयौ, नवल वधू के आव ।
लघु सिसुता ज्यों देखिय, भोर तरैयन साव ।[2]

जमाल कवि की शैली

इन की कविताएं राजपूताने की ओर जन प्रिय हैं । भावों की व्यंजना सीधे सादे ढंग पर होते हुए भी मार्मिक है । इन के दोहे संग्रहीत मिले हैं ।रचना काल सं० १६२७ है । सरल शब्दों में इन की अभिव्यक्ति सुन्दर बन पड़ी है । जो कुछ किया है वह नैनों ने किया है । गढ़ टूटने के बाद घर का भेद बता दिया है । प्रेम का भाव नैनों से पता चल जाता है । इस भाव की व्यंजना इन शब्दों में की है । अलंकारों का प्रयोग शृंगार रूप से है तथा उपमान और उपमेय परम्परागत ही हैं । नैन के लिए कोकिया पक्षी, पलकों के लिए पंख, सरोवर में जब उस मीनाक्षी ने स्वयं को देखा तो मछलियां पानी में तैरती सी दिखाई पड़ी । यह भाव सरल शब्दों में व्यक्त है । अनुप्रास का भी प्रयोग किया है ।

पीरी छवि पीरी उठी, पीरी लगी पिराय ।
पीरी कई पीरी परी, कह जमाल समुझाय ।[4]

१- हित तरंगिनी - कृपा राम पद सं० पृ० सं० ८।

२- कृपा राम - हिततरंगिनी - रीति शृंगार पृ० २

३- जमाल दोहावली - महावीर सिंह गहलौत पद स० ११ पृ.सं.२५

४- " " " " " " ३११ पृ.सं. ५०, ५४

इन के दोहों में यह विशेषता है कि अंत में वे प्रश्न पूछते हैं । विरहिणी का चित्र खींच रहे हैं क्यों रोती है, कूंआ देखकर हंसती है, क्या धोती है, क्या बांचती है, क्या बोलती है, यह हाल ऐसा क्यों है ।[१] विरहिणी की उद्वेग अवस्था में मानसिक स्थिति की व्यंजना की है ।

भाषा - भाषा में राजस्थानी छाप है । शब्द क्रिया की निपुणता है सूफी भावों की भी छाप है 'यह तन की मढ़ी करूं , मनकूं करूं कलाल'। पर कहीं कहीं बिहारी के दोहे की परम्परा भी मिलती है । 'मोर मुकुट कटि काछनी, मुरली सबद रसाल'।[२] शब्द बीछड़े, कारवी, नैणा, चुग्यां आदि का प्रयोग है । मुहावरे भी प्रयुक्त हैं । कहीं कहीं उपमायें बड़ी अजीब हैं 'नैणा'का छहुआ करें कुलटा करें अनार ।[३] ऐसे ही बंधु लहसुन दीन तिहिं, मिर्च लोन करि मेल ।[४]

मुबारक कवि की शैली

इन्होंने अलक शतक और तिलक शतक लिखा है । रचना काल सं० १६७० है । इन की उत्प्रेक्षायें बड़ी सुन्दर हैं । एक एक अंग पर सौ सौ दोहे लिखे हैं । कहीं कहीं इन की कल्पना बड़ी सुन्दर बन पड़ी है ।

> चिबुक कूप में मन परयो, छबि जल तृषा विचारि ।
> कढ़त मुबारक ताहि तिय अलक डोर सी डारि ।[५]

इस में अलक की समता डोर से बहुत उपयुक्त है । छवि के जल को पीने के लिए डोरी सुन्दर बनी है । इसी भांति तिलक शतक में तिल की उपमा भौंरे से दी है । प्रतिदिन तिल रूपी शालिग्राम को नेत्र आंसुओं से नहलाते हैं, उस के बाद पलकों से प्रणाम कर प्रीतम को देखने के लिए विदा मांगते हैं ।[६]

१- जमाल दोहावली - महावीर सिंह गहलौत पद सं० १११ पृ. ४६

२-४ " " " , पद सं० २, ५२, १४४, पृ. १, १४, ३६

५- अलक शतक - मुबारक पद सं० १ पृ. २

६- तिलक शतक - मुबारक पद सं. १६ पृ. १२

इस में आंसुओं की धारा तथा पलकों का झुकना प्रियतम की स्मृति में साधारण क्रिया है पर व्यंजना सुन्दर है । इन के काव्य की यह विशेषता है कि बात साधारण ही है पर अलंकारों की सजावट के कारण उस में चमत्कार आ गया है । अलक की उपमा साँपिनि, चंद्र के गोद में निशा, धूंध पसारत व्याल, तिल की उपमा, सालिग राम, भौंरा, महाराज आदि से दी है ।

<u>भाषा</u> - भाषा साधारण है । शब्दों की तोड़ मरोड़ नहीं है । केवलउत्प्रेक्षा की भरमार है । शब्दों में आवृत्ति भी पाई जाती है । लटकाय, अटकाय, लपटाय आदि। कहीं कहीं उत्प्रेक्षा अद्भुत है ।

बेसर लगि मुकुतानि लगि अरुझी अलक सु आय ।
हेम डाट धर है अंडा साँपिनि सेवत जाय ।[१]

<u>नरहरि की शैली</u>

नरहरि दरबारी कवि हैं । इन्होंने दरबार के मुकदमे की तरह बात लिखे हैं । बातों के विषय केवल नीति हैं । बातु मंगन दानि का का सम्बन्ध मनुष्यों से है । शेष बातों का अचेतन पदार्थ से । इस में कवि अपने आश्रयदाताओं की न्याय प्रियता को घोषित करता है । याचकता की निंदा आदि इन्होंने संस्कृत नीति कवियों से प्रभावित होकर की है । इन्होंने नीति में धन की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया है । पर इन के काव्य में रस परिपाक पूर्णतया नहीं मिलता । भाव रस दशा तक नहीं पहुंच पाते । अधिकतर प्रसाद गुण की अधिकता काव्य में है । इन के काव्य में बुद्धि तत्व की प्रधानता है, कल्पना तत्व तथा भाव तत्व कम है ।

नरहरि के काव्य में उक्ति वैचित्र्य के एक दो उदाहरण ही मिलते हैं । इन्होंने कहा है सुख के तो सभी साथी होते हैं पर जो विपत्ति में

१- अलक शतक - मुबारक पद सं० ४ पृ १.

साथ है वही सज्जन है, विपत्ति व्यक्ति को परखने की कसौटी है ।[1] नरहरि ने अलंकार योजना स्वाभाविक रूप में की है । सादृश्यमूलक अलंकारों की बहुलता है । उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तीनों का एक ही स्थान पर प्रयोग र स सौंदर्य की तीव्रता को बढ़ाता है ।

> चरन कमल केलि की सी थील गति लाल फूली
>
> फिरै बेलि मानो कुंदन कनक की
>
> नरहरि सुकवि सुगंध सुघ (संग) सखिन के
>
> मधुर मधुर मधु (मृदु) बानक बनक की

शब्दालंकारों का प्रयोग श्रुति मधुर बनाने के लिए किया है । - - - - - मोर पद धरिहै सो मोर पद धरि है अनुप्रास का भी प्रयोग किया है कुटिल (कुचक्र) करूप कुजाति कुबंदसि बंस - - - - - तथा मधुर मधुर मृदु बानिक बनक से इस से भाषा में चमत्कार तथा सजीवता आ गई है ।

<u>भाषा</u> - नरहरि के छप्पय की भाषा अवधी तथा कवित्त आदि ब्रज में है । इन्हों ने फारसी शब्दों का कम प्रयोग किया है पर कहीं कहीं छंदों की भाषा फारसी हो सकती है । नेक बख्त दिल पाक सखी ज्वाँ मर्द बेरनर आदि इन के काव्य में हिन्दी के प्राचीन रूपों का प्रयोग अधिक है । कहीं कहीं पर प्राकृत भाषा का ही अनुकरण मिलता है । जैसे चरण कंवल आदि । छप्पय में ओजगुण का प्रदर्शन किया है पूरब दक्खन पच्छिम पहार दोउ बन किय विधि आनि अगाऊं । मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग है । एक पंथ दुइ काज बरेठ घर बस लोम आदि। इन्हों ने छप्पय, सवैया, कुंडलियाँ, कवित्त, दोहा का प्रयोग किया ।

१-२ अकबरी दरबार के हिंदी कवि नरहरि पद सं० पृ० सं० ८७।३२८, ४६।३२६

श्रृंगार परक कवियों की शैली

श्रृंगार परक काव्य के कवि अधिकांश दरबारी कवि रहे हैं । कुछ कवियों को छोड़कर सभी ने अपने आश्रित राजा महाराजाओं को प्रसन्न करने के लिए अपनी रचना की है । रीति कालीन कवियों की कला राज दरबारों में प्रस्फुटित हुई और वहीं विकसित हुई इस से उन की दृष्टि इहलौकिक थी । उन में प्रधान कामना यश अर्थ थी इसी से उन में गर्वोक्तियों और अतिशयोक्तियों की भरमार पाई जाती है । उन में अधिकांश कवियों में न तो चिंतन था और न अनुभूति । उन को काव्य रचना करनी अर्थ की प्राप्ति करनी थी इस से अधिकतर तो परंपरा का निर्वाह ही करते रहे । एक सीमित क्षेत्र के अन्दर ही अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करते रहे । सभा को प्रभावित कर सकें इस से भाषा का बनाव और भावों का कसाव आवश्यक था वह सब में है । उन में कला कुशलता थी सौंदर्य प्रियता थी तथा साधारण स्तर की सहृदयता भी थी पर गहरी जीवन दृष्टि न थी । पर कुछ कवि ऐसे हैं जिन की शैली में ही विशिष्टता है । प्रखर व्यक्तित्व का अभाव होते हुए भी रसिक कला कुशल सौंदर्य प्रिय थे । इन सभी कवियों ने लोक जीवन की ओर ध्यान नहीं दिया यद्यपि जिस परंपरा का इन्हों ने निर्वाह किया उस में लोक जीवन की ओर कवि का ——————

ध्यान था पर इन से राज वैभव, विलासिता, अकृत्रिम सौंदर्य से ही छुट्टी नहीं थी । मानवीय भावनाओं तथा प्राकृतिक सौंदर्य के लिए इन को अवकाश न था । अधिकांश वर्णित पूर्व निर्धारित परिधि के पास ही मंडराने लगी । रीति काव्य का कला पक्ष एवं सौंदर्य बोध भावमयता और रसात्मकता का विशेष आग्रह है । इन की प्रतिभा सजग एवं सचेष्ट रीति से भावों की सूक्ष्म से सूक्ष्म बारीकियों, विभेदों और भंगिमाओं के निरूपण में विशेष मिलती है - - - - - कवि भावों को सावयविक (organic तथा चित्रात्मक (graphic) रूप में प्रस्तुत करने का आदी रहा है ।[1] किन्हीं किन्हीं कवियों में शुद्ध अनुराग की परिधि भी है पर अधिकतर श्रृंगारिकता की ओर उन का दृष्टिकोण भोगपरक था । घनानन्द, बोधा आदि कवियों का छोड़ कर प्रेम के उच्चतर सोपान नहीं मिलते ।[2]

यह अधिकतर देखा जाता है कि विषय एक ही है पर अनुभूति भिन्न है इसी से अभिव्यंजना की शैली में भी अन्तर है । शैली के अन्तर्गत विषय वस्तु अलंकार तथा भाषा आती है । विषय वस्तु से अभिप्राय है विभाव और अनुभाव का वर्णन । विभाव और अनुभाव का वर्णन चित्रों द्वारा सम्भव है । जिन चित्रों में रेखाएं अधिक स्पष्ट होती हैं वे प्रभावोत्पादक तथा मर्मस्पर्शी होंगे । उन में प्रसाद गुण भी होगा । इन कवियों में कई तरह के चित्र मिलते हैं

१- अवयवों के अनुसार चित्र में उतार चढ़ाव है ।

२- चित्र में एक जैसी रेखा की योजना की है इस से उन का रूप रमणीक हो गया है ।

३-स्थिर चित्र बनाये जिस में एक रेखा को केवल उभारा और सब को क्षीण कर दिया ।

४-गतिशील चित्र में एक रेखा को उभार दिया ।

१- रीति काव्य संग्रह डा० जगदीश गुप्त पृष्ठ ६२

२- हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास षष्ट भाग पृष्ठ १८८

५- सूक्ष्म रेखायें खींची उस में जहाँ भाव अपनी चरम सीमा पर पहुँचा वहाँ उभार दिया ।

६- वस्तु चित्रण में रेखा और रंग दोनों से काम लिया ।

भाषा सम्बन्धी भी कुछ विशेषतायें इन कवियों में मिलती हैं ।

१- शब्दों की आवृत्ति

२- सद्योच्चरित शब्द योजना

३- भाषा की विविधता

४- मुहावरे का प्रयोग

इन्हीं सब दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक कवि की शैली का विवेचन किया जा रहा है ।

ब्रह्म कवि की शैली ब्रह्म कवि में गहरी सूझ, अनूठी कल्पना तथा शब्द की लक्षणा व्यंजना शक्ति के दर्शन काव्य में होते हैं । इन्हों ने तीव्रानुभूति कराने के लिए कल्पना का आश्रय लिया जिस से वर्णन चमत्कारपूर्ण हो गए हैं । ब्रह्म कवि ने कुछ चित्र खींचे हैं जिस में अवयवों के अनुसार उतार चढ़ाव है ।

वेनी फुलेल फुबात खरी पट भीजत सीस ते रूप अम्बीयत ।[1]

इस में वस्तुतः स्नाता का चित्र आँखों के सामने आ जाता है । यह उक्तिवैचित्र्य के कवि हैं इस से इन के हर पद में अलंकार की छटा दिखाई गई है । भाँति भाँति की उपमायें हैं । 'कानन है तो कटाच्छ की कछवीत कटोरन सूच अबीयत' नायिका के मस्तक पर बिन्दी का रूपक चमत्कारमय है । 'मनु इंदु के बीच में कीच भयो अलि बालक आय पर्यो चहलै'[2] । रूप वर्णन में देह की उपमा दीपशिखा से देना परम्परा से चला आ रहा है

1- ब्रह्म केकवित्त पृ० ३५० पद सं० ३१ - अक. दर. के. हि. कवि. पो. भा.

2- ब्रह्म के कवित्त पद सं० ३४ पृ० सं० ३५०

बैठी अन्हाय बनाइ बिरंचि कै सुन्दरता बरसै बरुखा सी ।
कंज सें आनन खंजन लोचन कोऊ कहै कटि आहि मृना सी ।
ब्रह्म भनै नन्दलाल बिलोकत लागि रही लट लागि त्रिषा सी ।
झीने दुकूल में झाँई झलामलै देह दिपै दुति दीपसिखा सी ।[1]

उत्प्रेक्षा अलंकार के सुन्दर उदाहरण हैं । सीता जी के स्वयंवर का वर्णन है । नारियाँ झरोखे से झाँक कर देख रहीं हैं उस का वर्णन किया है सोहत मानो अराय के मंदिर सों बंधी चंद की बन्दनवारैं ।[2] ब्रह्म ने बिरह वर्णन में अतिशयोक्ति से काम लिया है । एक बिरहिणी के अंगों के समान एक अंगीठी भी ठंडी है । ननद के डर से वह दूध चढ़ाने गई । बिना अलाव ही सब ईंधन जल गया । ज्यों लौं दूध करते कराही में करन लागी तो लौं सब सोहनी में ओठि सोना ह्वै गयो ।[3] गतिशील चित्र खींचते समय एक रेखा को उभार दिया इस से चित्र बड़ा प्रभावोत्पादक हो गया है ।

ब्रह्म की भाषा ब्रज है । उस पर कन्नौजी, बुन्देली आदि भाषाओं का प्रभाव पड़ा है । भाषा की सरलता भाषा के प्रयोग से बढ़ गई है । कहीं कहीं शब्दों की आवृत्ति से कवित्त में सुन्दरता आ गई है जल हूं, थल हूं, तल हूं, नभ हूं, कवित्त में चमत्कार आ गया है । इन्हों ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है रतिय, छतिय, द्युति, सुरति, अगम्म, गगम्म आदि । मुहावरे का प्रयोग किया है घूर बघूरे को पाड़ु भयो है ।[4]

गंग कवि की शैली गंग की रचनाओं में ऊहात्मक छंद की अधिकता है । कल्पना की उड़ान ही नहीं वरन् कथन की विचित्रता भी देखने को मिलती है । जब तक रव

1- ब्रह्म के कवित्त पद सं० पृ० सं० ४३।३५६ अकबरी दरबार के हिंदी कवि डॉ० मा०
2- " " " " ८०।३५७
3- " " " " ५०।३५३
4- " " " " ९०।३५८

की धूल दिखाई देती रही, ध्वजा दिखाई देती रही तब तक गोपी ध्यान से देखती रही उस के बाद उस के प्राण नेत्रों से चले गए । वह झुकी और झुक कर चली । 'कागद की पुतरी सी भई बल भीतर भीजि सबै इक ठाहर' ।[१] इस में उक्ता के द्वारा अपनी कला प्रदर्शित की है । उपमायें तथा उत्प्रेक्षायें बड़ी प्रभावोत्पादक हैं 'मन, भावक मेरो बिलाय गो कौंन सो'[२] 'आगें न बैल उठाय मनों निकस्यो बढि फोर पहार की तांई'[३] 'मनो कंचन के कदली दल पै, अति सांवरि सांपनि सोय रही'[४] आदि उपमायें काव्य में भरी पड़ी हैं । गतिशील चित्र कुशलता पूर्वक खींचे हैं

देहे में गौन कियो पिय 'गंग' गिरी छलिका पर फूल छरी सी ।
नैन ते नीर बह्यो न थंम्यो, वह बूड़ि गई घड़ियाल परी सी ।[५]

पहली पंक्ति में सुन्दर देह तथा मोतियों वाली मांग की रेखा खींची । दूसरी पंक्ति में वह क्षीण कर दी गई । पुनः गौन किये से चित्र को गतिशील चित्रित किया । चौथी पंक्ति में नेत्रों से अश्रुप्रवाह के साथ चित्र को अधिक उभार दिया । अन्त में 'घड़ियाल पड़ी सी' कह कर उक्ति में वैचित्रता ले आए । कवि चित्र में वैभव लाने के लिए रंगों का प्रयोग करते हैं । गंग ने एक चित्र खींचा है जिस में अनेक रंगों का सम्मेलन किया है । मुकुट के मोती, पीत पट कंठ में मणि कुण्डिया की झलक चित्र को भड़कीला कर देते हैं[६]।

१- गंग के कवित्त पद सं० २५ पृ० सं० ६

२-४ गंग के कवित्त पद सं० १४ पृ० १५, पद सं० २४५ पृ० ६४, पद सं० ४४ पृ० १०

५-६ गंग के कवित्त पद सं० ३० पृ० ८ , पद सं. १, पृ. सं. १

मोर के मुकुट रु मुकुतान के से अवतंस,

रोम रोम रूप मनों मन-मथ मई है ।

काछनी रुचिर रुचि सोहै पीत पट छुबि,

चटकीले अंग पर अति छबि छई है ।

कहै कवि 'गंग' तिहिं बानिक बिबिध भाँति,

आभा तीनों लोक की सी एक ठौर भई है ।

मनि मन मोहन के कंठ में यों झलकत मानिये जुन्हैया

जमुना में फैलि गई है ।[1]

इस में कृष्ण जी के गहनों की चमक को चाँदनी ने और भी अधिक कर दिया है ।

बिरह वर्णन में अतिशयोक्ति से काम लिया है । राधिका से किसी ने आकर कहा कि केशव मथुरा छोड़ कर दूर जाने वाले हैं । यह बात सुनते ही उस का शरीर मुरझा गया ।

चंदन तें छिरकि कपूर छाय आंखिन में,

बिरह की आगि आज लागत बुझायगो ।

'गंग' कवि वृन्दावन चन्द्र बिन चन्द्रमुखी

चंद को निहारैगी तो चंद्र जरि जाइगो ।[2]

भाषा ब्रज है । दो छंदों में खिलवाड़ का सा प्रतीत होता है । ब्रज और फारसी का मेल किया है ।

सांझ समय घर से निकले सखियान के संग मह सांवल सूरत ।

रुख्सो नाजु मसूद सनम, बेदाम बुवन अजूब कुदूरत ।[3]

१- गंग के कवित्त पद सं० पृ० सं० १।१

भाव, वस्तु, रूप की तीव्रता की व्यंजना करने के लिए अलंकारों का भी प्रयोग किया है । अनुप्रास के कारण चित्रमय तथा भावात्मक हो गए है । 'ठुमक ठुमक पग धरत धरनि पर लंक लहरि, लहरि, करे' 'चमकाय चमकाय लटकाय लटकाय'[1] आदि चित्र को सुन्दर बना दिया है ।

अनुप्रास से कवित्त में लय का सौंदर्य आ जाता है ।

बाल में झलकैं न लगैं पलकैं, ललकैं छवि को मुनि सोचत हैं ।

× × - - - -

ससकैं कसकैं असकैं न सकैं, रस कैं अनुमान को मोचत हैं ।

उन लोल कपोलन के लसकै को, ए लालची लोचन लोचत हैं ।[2]

मुहावरों का भी प्रयोग है । 'दियो पाउनि में नोनु है' 'मीठो पर कोउ कैसे लोई हम सीठो लगे,' 'ये दोउ नैन जहाज के पंछी, दोऊ भए रावरी तो कावरी कहा कर है' आदि के प्रयोग से भाषा का सौंदर्य बढ़ गया है ।

केशव दास की शैली केशव दास जी रसिक कवि थे । ये सर्वांग निरूपण के आचार्य थे । इस से इन्होंने अधिकतर बुद्धि कौशल से काम लिया । रस परिपाक में संचारियों की ओर ध्यान नहीं दिया । कहीं कहीं भाव व्यंजना सुन्दर बन पड़ी है ।

सौंह दिवाय दिवाय सखी इक बारक कानन आनि बसाय ।

जाने को केशव कानन तें कित ह्वै कब नैनन माँझ सिधाय ।

लाज के साज धरेई रहे सब नैनहि लै मनहीं सो मिलाय ।

कैसी करौं अब क्यों निकसै री हरेई हरे हिय में हरि आय ।[3]

इस में कान से नैन और नैन से मन में हरि की मूर्ति लाज समाज के होते हुए भी कैसे चली गई यह भाव बड़ा सुन्दर है । हृदय में से कैसे निकले यह नायिका के मनोभावों की मार्मिक व्यंजना है । रूप वर्णन में सुन्दरता ही मानो शृंगार किए हुए है ।[4] वियोग वर्णन में बुद्धि घटी, भूख नहीं, नींद गई । साथ ही में

१-२ गंग के कवित्त पद सं० पृ० सं० ११९।२९, ९२।२२,
३-४ रसिक प्रिया केशव दास पद सं० पृ० सं० १५।२२, ५८।१७

गिरि गो कछु गांठि तें छूटि छबीली सु काहे तें ढोकति डाढति ही [1] नायिका की मनोव्यथा का चित्रण है ।

चित्रों की रेखाएं स्पष्ट हैं । श्री कृष्ण जी के मन हास का वर्णन कर रहे हैं । पहले दांतों की चमक का वर्णन है । वह बिजली की तरह चमकते हैं और उन का प्रभाव है सब को अचेत करना । चंचल नैन चमकते हैं जो सब को मोह ले लेते हैं । भौंहें सब भाव प्रकट कर रही हैं । उन की मुस्कराहट मन को हरे लेती है । जैसे र य रंग आकार जैसा स्पष्ट होना चाहिए वैसा नहीं हुआ है पर फिर भी चित्र खिंच गया है । कहीं कहीं पर ऐसे चित्र खींचे हैं जहां भाव अन्तिम पद में चरम सीमा पर पहुंच गया है । वर्षा का प्रसंग आरम्भ करते हैं । बादलों का गरजना मोर का शोर मचाना, बिजली का चमकना, फूलों की सुगंधि यह सब वर्णन चल रहा है । अन्तिम पद में चित्र स्पष्ट खिंच जाता है । जब कहते हैं

हंसि हंसि भेटे दोउ, उनहीं मनाईं मान छूटि गयो एकै बार
राधिका रमन की ।[3]

गतिशील चित्र में भी केशव ने अपना कौशल दिखाया है । नायिका का चौंकना, देखना, छाती का धड़कना, ताकना यह सब चित्र की रेखाएं हैं । पूछा कुछ जाता है उत्तर कुछ देती है यह उस की मानसिक अवस्था है । अन्त में ऐसी रेखा खींची जाती है जिस से अन्तिम रेखा स्पष्ट हो जाती है, 'घूंघट की, पट की हरि आधु कछु सुधि राखिकै नाहीं '।[4]

केशवदास जी ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना श्लेष आदि बहुत से अलंकारों से अपने को सजाया है । अलंकारों की शोभा में कहीं कहीं भाव स्पष्ट हो गए हैं । इस में घन तथा कृष्ण जी का कैसा सुन्दर रूपक बांधा है ।

1- रसिक प्रिया केशवदास पद सं० पृ० सं० ११।४०

२- ७।८१

३- २७।६३

४- ४१।५३

घन के पक्ष में बिजली और मोर बादलों की शोभा बढ़ाते हैं । धीरे धीरे मोरों को नचाते जाता है । चातक के चित्त को प्रसन्नता देता है । घने बादल बन से ब्रज पर आते हैं । कृष्ण जी के पक्ष में पीत दुकूल तथा किरीट सुन्दर लगते हैं । धीरे धीरे कृष्ण जी मोरों को नचाते बाँसुरी बजाते आ रहे हैं । उन को देखकर सब के संतप्त हृदयों को शान्ति मिलती है। कृष्ण जी बादल का वेष धारण कर बन से ब्रज में आए हैं ।[1] इस में उपमान और उपमेय में साम्यता है । इस से रूपक का चित्र स्पष्ट है । उत्प्रेक्षा के भी चित्र खींचे हैं । माँग में मोती के लरों की उपमा 'सूरज मंडल में शशिमंडल मध्य धसी जनु जाइ त्रिवेणी'[2] से दी है । एक नायिका की हँसी का चित्र खींचा है -

> किधौं मुख कमल में कमला की ज्योति
> किधौं चारु मुखचंद चंद्र-चंद्रिका चुराई है ।
> किधौं मृग लोचन मरीचिका-मरीचि किधौं
> रूप की रुचिर रुचि शुचि सों दुराई है ।
> सौरभ की शोभा कि दसन घन दामिनी
> कि 'केशव' चतुर चित्त ही की चतुराई है ।
> एरी गोरी भोरी तेरी थोरी हाँसी
> मेरे मोहन की मोहनि कि गिरा की गुराई है ।[3]

<u>भाषा</u> - इन के काव्य की भाषा ब्रज है । संस्कृत और बुन्देलखंडी का प्रभाव है । 'भागु भनो शशि अंक लिए वृन्दावन में चलु आवहु जीने'[4] बुन्देलखंडी भाषा के शब्द भी स्थान स्थान पर हैं जैसे चौंकि चौंकि परै चारु बैठना मराल के[5] अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है । जवानी के तख़्त पर नैन फौजदार नौबति बजति[6] मुहावरों तथा लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है । अगन को डाढ़ो अंग आगि ही सिरात है[7] । प्यास बुझाई न ओस के चाटे नाम की साख न आमिली भूखै ।

१-२ रसिक प्रिया केशव दास पद, सं० पृ० सं० २६।६३८,६।१२०
३- कवि प्रिया केशवदास ४१।२०४
४-५ रसिक प्रिया केशव दास २०।२२, २६।६
६- हजारा [illegible] कवित्त सवैया पद सं० २ पृ० सं० २५७
७- रसिक प्रिया पद सं० २५ पृ० सं० ४

केशव की भाषा किसी को चेतावनी देने में समर्थ है । पदों में रे, री, सू शब्दों के प्रयोग से भावों में चमक आ गई है । वैसे ही लाड़ प्यार के शब्दों का भी प्रयोग किया है । माई, बरि, भट तथा रानी शब्दों का प्रयोग कर सजीवता लाए हैं ।

उनके तौ तेरी बानी बेद की सी बानी है।[1]
सुनि है मेरी रानी, कहा भयो जो कहूं केशव चूकि परी ह्यौं ।

अनुप्रास का प्रयोग जगह जगह किया है । गिरि गिरि उठि उठि रीझि रीझि लागै कंठ, बीच बीच न्यारे होत छबि न्यारी न्यारी सों,[2] गोरी गोरी भोरी भोरी थोरी थोरी, फिरै, देवता सी दौरी दौरी आदि घोरा घोरी आदि[3] । घेरि घने घन घोरत उज्ज्वल उज्ज्वल कज्जल की रुचि राचैं[4] इन आवृत्तियों से भाषा में एक विशेष गति उत्पन्न हो गई है । इसी से झंकार और स्वरता भी आ गई है । सरस असमसर सरसिज लोचनि, बिलोकि लोक लीक लाज लाजिबे को आगरी पट की घटत बात घटना घटी हू घटी, छिन छिन छीन छबि आदि शब्द भाषा को लय पूर्ण बना देते हैं ।

भाषा प्रसाद और माधुर्य गुणों से पूर्ण है । केशव के विषय में स्वर्गीय डा० बड़थ्वाल का यह आक्षेप है कि माधुर्य और प्रसाद से तो जैसे यह रूठ बैठे हैं (ना.प्र.स.-भा.प.भा. १० सं० १९८६ पृ० ३६८) न्यूनपदत्व और अधिकपदत्व के दोष इन के काव्य में हैं । पर इनकी भाषा में अर्थ वहन की पूरी शक्ति है तथा ब्रज भाषा के कवियों में गाम्भीर्य प्रदान करने वाले प्रथम कवि हैं । इन की भाषा पांडित्य से बोझिल है । शब्दों को विकृत कर के भी अनुप्रास का प्रयोग किया है । वास्तव में पांडित्य प्रदर्शन के तो ये कवि हैं ।

सेनापति की शैली — सेनापति प्राकृतिक सौंदर्य के उपासक हैं इस से इन्होंने अपने काव्य में प्रकृति को ही मुख्य स्थान दिया है । यह रीति कालीन कवि थे इस से अलंकारों की छटा दिखाना आवश्यक था । बिना व्यंजना के काव्य नीरस हो जाता इस से इन्होंने उपमा, रूपक, श्लेष, उत्प्रेक्षा आदि सभी उपमानों को प्रकृति से चुना है । इन के शब्द चित्रों की रेखाएं बिना रंग के ही चित्रपट पर उभरी हुई हैं ।

१-४ - रसिकप्रिया - केशवदास पद सं. पृ.सं. ७/४०, ८२/९४, ३४-३५/२०, ७/७१

आचार्य शुक्ल जी ने इन की भाषा के लिए कहा है कि इन को इस पर पूर्ण अधिकार है । इनका शब्द संगठन, वाक्य विन्यास, शब्दों का सुन्दर चयन, विलक्षण भाव, तथा व्यंजना की शक्ति अपूर्व है । इन की शब्दावली से चित्र खिंचते से चले जाते हैं । चित्र सजीव तथा साकार से प्रतीत होते हैं । एक चित्र दीखा है -

> चंद की कला सी, चपला सी, सिय सेनापति,
>
> बालन के उर बीच आनंद के बेलि है ।
>
> जाके आगे कंचन में रंचक न दीसे रूचि,
>
> मानौं मनि-मोती-लाल माल आगे पोति है ।
>
> ऐसी प्रीति गाढ़ी है के सनमुख ठाढ़ी,
>
> जोर जोबन की बाढ़ी छिन छिन और होति है ।
>
> गोरी देह झीने बसन में झलकति मानौं
>
> फानुस के अंतर दिपति दीप ज्योति है ।[१]

इस में नायिका का सौंदर्य चन्द्रकला के समान, कंचन से भी सुन्दर है । ऐसी देह उस पर झीने वस्त्र । यह है चित्र । उत्प्रेक्षा की भी छटा दिखाई देती है । फानुस के अंदर दीप ज्योति । इस से चित्र की रेखा और भी उभर आती है । 'मेरे जान पौनों सीरी ठौर को पकरि कौनो घरी एक बैठि कहूं घामै बिलमत है'।[२] इस में एक पथिक वृक्ष के नीचे खिलखिलाती धूप में बैठा हुआ है । कहीं घाम ही में वृक्ष के नीचे पवन मानवीय रूप में है । इस में पवन का मानवीकरण प्रभावोत्पादक है । गतिशील चित्र भी दीखे हैं । धनुष टूट गया, स्वर्ग से फूलों की वर्षा हो रही है । सीता रानी हाथ में जयमाल लेकर दशरथ लाल के सौंदर्य को निहार रही है । देखने से उन में स्नेह पैदा हो गया, आनन्दित हो मंद मंद चाल चलती जाती है । 'झमक झमक बेटी जनक नरिंद की'[३] इन शब्दों से चित्र की अन्तिम रेखा भी पूरी हो जाती है तथा ऐसे शब्दों से गति और भी बढ़ जाती है । ऐसे शब्दों के चयन से

१- सेनापति कवित्त रत्नाकर पद सं० ५७ पृ० सं० ४९

२-३ पद सं० ११ पृ० सं० ५८, पद सं. १६८. पृ. ७८

अनुप्रास के प्रयोग से भाव व्यंजना की शक्ति की ओर बढ़ा दिया है । पूरन पुरूष में धनुष का वर्णन है ।

बानी बल मलन, मदन कलि मलन कौं
बलन है देव त्रिपुर दीनन के दुख कौं ।[1]

चित्रालंकार की आत्मा अनुप्रास ही है -

लोली ललना लल्ल की लैली लीला लाल ।
लाली लीली लोल लै लै लै लीला लाल ।[2]

भाषा - इन की भाषा शुद्ध एवं परिष्कृत ब्रज है । संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग है । 'देव दुख, दंडन' आदि । अरबी फारसी शब्द हैं । 'कानुन' 'पाइपोस' आदि । इन की भाषा प्रसाद पूर्ण है । पाठक पढ़ता जाता है कहीं रुकता नहीं । चित्र सामने खिंच जाता है ।

पलकैं न लागैं, देखि ललकैं तरुन सब,
झलकैं कपोल, रहीं अलकैं बिथुरि कै ।[3]

सेनापति की भाषा सुव्यवस्थित एवं परिमार्जित है । पर भावों की तन्मयता नहीं है । इन के पास मधुर भाव व्यंजक शब्दों की कमी नहीं है ।

प्रात उठि आइबे कौं, तेलहि लगाइबे कौं, मलिमलि न्हाइबे कौं गरम हमाम है[4]।

भाषा की सुन्दरता के कारण भाव की तीव्रता मार्मिक होती है । 'तिरछौही', 'ललचौही', 'सकुचौही', 'अरसौही' में शब्दों का क्रम, भाव का क्रम, हृदय की सी लय पैदा करता है ।[5] 'धीर जलधर की, सुनत धुनि धर की, है दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ[6]' आदि वर्णन मिलते हैं ।

सुन्दर कवि की शैली - सुन्दर का काव्य सामान्य है पर चित्र स्पष्ट है । नायिका घूंघट की ओट से देखती है उस का चित्र खींचा है ।

१-६ कवित्त रत्नाकर सेनापति पद सं० पृ० सं० ७।५, ७२।५, ११८, १०।३५, ४२।४७, ३।३५, ५८।६६

कहूँ बनमाल कहूँ गुंजनि की माल,
कहूँ संग-सखा गुलाल देखे डाल भूलि गये हैं ।
कहूँ मोर चन्द्रिका लकुट (लकुट) कहूँ पीत-पट
मुरली-मुकुट कहूँ डारि दये हैं ।[1]

अस्त व्यस्त दशा का वर्णन किया है । यमक की ओर विशेष रुचि जान पड़ती है । एक चित्र अत्यंत चमत्कारपूर्ण है ।

जाके गये बसन पलटि आये बसन,
सु मेरो कछु बसन रसन उर लागि हौ ।[2]

इन्होंने भी परम्परा के अनुसार उपमान और उपमेय चुने हैं । 'मानो भुजंगिनि अंक चढ़ी, मुख ऊपर आय रहीं अलकैं ज्यों'।[3] इस में अलकों की उपमा भुजंग से दी है । 'आंक चढ़े छिये कुची सिकारी के होय रूचैयन तैं पुहरे ज्यों'।[3] 'सीरी बयारि किधौं तरवारि पुरन्दर चाप की सुन्दर आरो'[4] आदि से भाव का सौंदर्य बढ़ जाता है । अनुप्रास से भाषा में चमत्कार बढ़ जाता है । 'चैन न परत चित्त चंचल तैं चंचल तैं, चांदनी तैं चौगुनी के चाँदनी'।[5] ये चिन्तामणि और मतिराम की परम्परा के हैं ।

चिंतामणि की शैली चिंतामणि की कविता में शृंगार रस का परिपाक देखने को मिलता है । सीधी सादी भाषा में सच्ची अनुभूति को व्यक्त किया है । इन्होंने नवोढ़ा का चित्र खींचा है । चंचलता बढ़ गई, अंगों को छिपाने लगी, थोड़ी सौंदर्य प्रदर्शन की भी रुचि होने लगी । 'खेल (खौल) दो रंचिक से अंखियां, मन भावन की मन भावन लागी'। इस से मनोभाव स्पष्ट होते हैं । मनोवैज्ञानिक तथ्य की ओर इंगित करता

1- रीति शृंगार सुन्दर पृ० ७५

2- " " पृ० ७७

3-4-5 " " पृ० ७२, पृ. २८, पृ. २८

6- " चिंतामणि पृ. ४२

है यद्यपि इस में अधिक चित्रमयता तथा आवेग नहीं है । एक चित्र संयोग वर्णन का सीधा है ।

आँखिनि मूँदिबे के मिस आनि अचानक पीठि उरोज लगावै ।
केहूँ कहूँ मुसकाय चितै अंगराय अनूपम अंग दिखावै ।
नाह छुई छल सों छतियाँ, हँसि भौंह चढ़ाय अनंद बढ़ावै ।
जोबन के मद मत्त तिया हित सों पति का नित चित्त चुरावै ।[1]

इस में गति शील चित्र की रेखायें उभरी हैं । संयोग वर्णन में कुछ अश्लीलता सी आ गई है । देव आदि कवियों की तरह सौंदर्य की अनुभूति नहीं होती । बहुत साधारण सी घटना प्रतीत होती है । कल्पना की ऊँची उड़ान न होने के कारण भावों की प्रभावकता कम है । भाषा की दृष्टि से भी रचनायें परिष्कृत नहीं हैं । कहीं कहीं अलंकारों का सौंदर्य देखने को मिल जाता है ।

अवलोकनि में पलकैं न लगी, पलकौं अवलोक बिना ललकै ।[2]

इसी कवित्त में लगी, ललकै, पलकै से पद में लालित्य आ गया है । राम चन्द्र की प्रशंसा में उत्प्रेक्षा का प्रयोग किया है । सीता की जयमाल लेकर आ रही हैं उस का वर्णन है

मानो शरच्चंद चंद मध्य अरविंद मध्य विद्युति विदारि कढ़ी दामिनी ।[3]

नन्दकिशोर को देखने के लिए सब के दृग चकोर हो गए हैं । ये केशव की तरह अलंकारों के पीछे नहीं पड़े हैं । मतिराम की तरह सीधी शब्दावली में भाव प्रकट किए हैं । राम चन्द्र शुक्ल जी का कहना है अवध के पिछले कवियों की भाषा देखते हुए इन की ब्रज भाषा विशुद्ध दिखाई पड़ती है । विषय वर्णन की प्रणाली भी मनोहर है । ये वास्तव में उत्कृष्ट कवि थे ।[4] वास्तव में ये परम्परा के कवि हैं इन में कोई विशेषता की बात नहीं है ।

१-२ रीति शृंगार चिन्तामणि पृ. ६. ४५

३- हजारा - चिंतामणि पद सं. पृ. सं. २१५८

४. हिंदी साहित्य का इतिहास पृ. २४२

बिहारी की शैली

इन के काव्य में हमें मौलिक उद्भावना अधिक मिलती है, जिस से काव्य में सूक्ष्म कार्य व्यापारों, मुद्राओं, चेष्टाओं तथा हावों का चित्रण मिलता है । हावों, अनुभावों के संश्लिष्ट चित्र मिलते हैं । कुट्टमित हावों द्वारा बहुत ही सुन्दर, सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है । एक चित्र है

> कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात ।
>
> भरे भौन में करत है नैनन में ही सब बात ।[1]

इस में नायिका की खीझ, प्रसन्नता और लज्जा एक साथ ही वर्णित है । इसी तरह भौंहों से डाटती जाती है, मना भी करती जाती है तथा प्रेम के कारण आंखों से लिपटती भी जाती है ।[2] यह सब रेखाएं मानसिक स्थिति की हैं । कृष्ण जी का भी हाल प्रेम की अनुभूति के कारण बुरा है । उस का वर्णन किया है 'कहुं मुरली, कहुं पीतपट' यह मन के उद्वेग को व्यक्त करता है[3]। भूषण की पायंदाज से उपमा देकर नायिका के शरीर पर भूषण की आवश्यकता बताई है[4]। मन के भावों का शरीर पर भी प्रभाव पड़ता है । मानसिक स्थिति से शरीर के अंगों के व्यापारों का चित्रण किया है[5]। 'नेक हंसौंही है गई, भौंहि सौंहि खात'।[6] भौंहों से हंसना और सौंह खाना दोनों ही चित्रित हैं ।

मन के लिए मुहावरों का प्रयोग किया है । मौर की नाव, मन के लिए कहा है । गतिशील शब्दों के द्वारा चित्र खींचा है 'झुकति, हंसति, हंसि हंसि झुकति झुकि झुकि हंसि हंसि देई'[7] । अनुप्रास के प्रयोग से शब्दों में ध्वनि तथा काव्य में लय उत्पन्न हो जाती है नमवाली ; चाली, चखवाली, पाली आली, बनमाली । कहीं कहीं साधारण से शब्दों का प्रयोग बड़ा उपयुक्त तथा भावों को तीव्र कर देता है । 'क्यों न आय सहज रंग बिरह दूबरे गात'।[8]

१-२ बिहारी सतसई पद सं० ३१, ६८३ पृ. नं. ६३, ११३

३-६ बिहारी सतसई पद सं० १५४, ४१३, ५३१, ४५ पृ. नं. ७२, ८२, १०२, ५४,

७-८, पद सं० ५३८, ११८, २०३, पृ. नं. १०२, ६८, ७५

इस में सहज शब्द सार्थक है ।

बिहारी ने कहीं कहीं अपनी अत्यंत शृंगार प्रियता के कारण कुत्सित चित्र भी खींच दिए हैं तथा कहीं कहीं कल्पना का चमत्कार भावों को क्षीण कर देता है । विरह वर्णन में मानसिक विश्लेषण की ओर ध्यान न देकर शारीरिक प्रभाव दिखाया है । अथवा ज्योतिष, गणित, वैद्यक आदि का ज्ञान शृंगार वर्णन के साथ मिलाकर भाव व्यंजना में सरलता कम कर दी है । कहीं कहीं अलंकारों का मोह भावों को दबा देता है । 'अजौ तरयौना ही रह्यो श्रुति सेवक इक अंग' में श्लेष के चमत्कार में रूप वर्णन छिप गया है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा चलती होने पर भी स्वाभाविक है । वाक्य रचना व्यवस्थित है । शब्दों में तोड़ मरोड़ नहीं है । शब्दों का चुनाव उपयुक्त हुआ है । भावों का संश्लिष्ट वर्णन तथा अलंकारों में सजीवता यही बिहारी की शैली की विशेषता है ।

<u>मतिराम की शैली</u>

इन की शैली में सरल भावों की अभिव्यक्ति हुई है । सोने से अधिक कोमल, सरस तथा सुगन्धित नायिका के रूप को कवि दर्शाना चाहता है इसी से कहता है कि चाहे सोने में ये गुण आ जावें फिर भी तुम्हारे रूप से समता नहीं हो सकती ।[१] नैन चंचल होते हैं इस स्वभावोक्ति में किसी को सन्देह नहीं । इसी से उसे चंचल मन भी चाहिए, क्यों कि प्रीति समान रुचि वालों से होती है[२]। भावों को स्पष्ट करने के लिए मतिराम ने उपमेय चुने हैं । 'कामिनि दामिनि दमक सी बरन कौन पै जाइ'[३] में कामिनी, दामिनी का गुण साम्य दर्शाया है । विरह की अतिशयता व्यक्त करने के लिए 'खारे जल की बढ़ति है नदी तिहारे गाउँ'[४] वर्णन किया है । अनुप्रास का सौंदर्य भी देखने को मिलता है 'चियत रहत पिय नैन यह तेरी मृदु मुसकानि'[५]।

१-३ मतिराम सतसई पद सं० १८४, २२४, २०५ पृ.सं. १२१, १२८, १३२,
४-५ " " ६१; ४९० " १२१, १४५

मतिराम के चित्र में व्यक्ति, वस्तु और भाव सजीव रूप से चित्रित हैं । शैली सुसंस्कृत किंतु मर्मस्पर्शी है । मधुर स्निग्ध भावावली इन के काव्य की विशेषता है । अवयव के चित्रण में रेखाएं भी स्पष्ट दिखाई देती हैं

सोय रही रति अंत रसीली अनंत बहाय अनंग तरंगनि ।
केसरि बोरि रची तिय के तन, प्रीतम और सुवास के संगनि ।
जागि परी मति राम हरष गुमान जनावत भौंह के भंगनि ।
लाल सों बोलति नाहिं न बाल सु पोंछति आँखि अंगौछति अंगनि ।[१]

नायिका सो रही है । उस के शरीर में केसर लगा है जिस से कि सुगन्ध आ रही है । इत ने में वह जाग पड़ती है । भौंहों से गर्व प्रगट करती है । वह प्रियतम से बोल नहीं रही है । आँखें पोंछती तथा अंगों को अंगौछ रही है ।[२] रूप गर्विता का चित्र इन रेखाओं में कवि ने चित्रित किया है । कहीं कहीं चित्र में एक रेखा को वेश उभारता है जिस से व्यंजना तीव्र हो गई है और रेखाएं निमित्त मात्र हो रही हैं ।

कुंदन को रंगु फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गोराई ।
आँखिन में अलसानि, चितौनि में मंजु विलासनि की सरसाई ।
को बिनु मोल बिकात नहीं, मतिराम लहै मुसकानि मिठाई ।
ज्यों ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैन त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई ।[३]

इस में एक रेखा रूप सौंदर्य की है । दूसरी में आँखों का वर्णन है । तीसरी रेखा उस की मुस्कान की है । पर यह सभी रेखाएं अन्तिम रेखा के सामने क्षीण हो जाती है जब कवि कहता है कि ज्यों ज्यों देखो सुन्दरता बढ़ती जाती है अर्थात् रूप को सीमा में बांधा ही नहीं जा सकता । वह बढ़ता ही

१-२ रसराज मतिराम पद सं० पृ० सं० १०५।२५२

३- रसराज मतिराम पद सं० पृ० सं० ६।२७४

जाता है । यह सब चित्र कवि की प्रतिभा के द्योतक हैं ।

गतिशील चित्रों में भी कवि ने एक रेखा को उभार कर काव्य सौष्ठव का परिचय दिया है । गुरु लोगों के बीच में नायिका बैठी है इतने में नायक वहाँ आ जाता है । नायिका उसे देखना चाहती है पर लज्जा के कारण देख नहीं पाती । यहाँ तक तो साधारण रेखायें हैं पर अन्तिम रेखा भाव व्यंजना को तीव्र कर देती है (नैन नवाय रही हिय माल मैं, लाल की मूरति लाल में देखी)।[१]

इस में नेत्रों को झुका कर गले में पड़ी हुई माला में प्रियतम का प्रतिबिंब देखना - यह सभी क्रियायें भावों को स्पष्ट और रमणीक कर देती हैं । रंगों के प्रयोग में छाया प्रकाश का एक स्वाभाविक चित्र खींचा है ।

पीछे पीछे आवति अँधेरी सी भँवर भीर

आगे आगे फैली उजारी मुख चाँदनी ।[२]

<u>भाषा</u> - काव्य के लिए कहा जाता है कि शब्दों का प्रयोग विदग्धतापूर्ण होना ही उत्तमता की कसौटी है । मतिराम की भाषा में भाव प्रकट करने की पूरी सामर्थ्य है । थोड़े से शब्दों में अधिक से अधिक भाव भरे हैं । भाषा में प्रवाह है तथा लचकीलापन भी है । यह सभी बातें नीचे लिखे कवित्त में मिलती हैं -

मोरपखा मतिराम किरीट मैं कंठ बनी बनमाल सोहाई ।[३]

मोहन की मुसकानि मनोहरि कुंडल डोलनि मैं छबि छाई ।

लोचन लोल बिसाल बिलोकनि को न बिलोकि भयो बस माई ।

वा मुख की मधुराई कहा कहौं (कहूँ) मीठी लगै अँखियान लुनाई ।

इस में नायिका को कृष्ण जी के मोरपंख का किरीट तथा बनमाल पहले बड़ी सुन्दर लगी पर उस से भी अच्छी उन की मुस्कान और कुंडल का हिलना लगा पर नेत्र देखकर तो उस का मन वश में ही न रहा । सौंदर्य का उत्कर्ष बढ़ता ही ...

१- मतिराम रस राज पद सं० ७४ पृ० सं० २८७

२-३ मतिराम रस राज.पद सं० १०३ पृ० सं० ३१५, ४१० प. ६ .३२६

गया । अन्त में आंखों की लुनाई पर उस की दृष्टि जम गई । मतिराम की रसीली और लचकीली भाषा में भाव तारतम्य को अपनी अन्तिम सीमा पर पहुंचा दिया । भाषा को सुन्दर बनाने के लिए अनुप्रास का प्रयोग तथा झंकृत करने वाली शब्द योजना भी की है ।

सतसई में मतिराम की शैली की एक विशेषता है कि भावों का चित्रण सूक्ष्म रेखाओं में किया है, उस में एक रेखा को गहरा कर दिया है जहां भाव चरम सीमा पर पहुंच जाता है ।

फिरि फिरि आवति जाति चल अंगरानी मुसक्याति ।
बाल लाल की ललित अब लाखि लजाति लजाति ।[1]

इस में नायिका का इधर उधर आना, जाना, मुसकाना, लजाना आदि व्यवहार इस बात का संकेत करती है कि उस के शरीर में यौवन ने संचार कर दिया है । इन के दोहों में रंगों का भी वैभव देखने को मिलता है । उधर रंग देखहि पुंज में रंगों से चित्र खींचा है । भावों के चित्रण में रंगों के कारण तीव्रता आ गई है । इस के अतिरिक्त यथा स्थान चातिज भी कर देते हैं, जो व्यंजना के प्रकाश में स्वतः ही चमक उठती है । नायिका के सुन्दर मन में चुन्नी तथा नग जुड़ता पड़े हैं उसी में नायक का मन अटक जाता है ।[2]

<u>रसलीन की शैली</u> - इन की शैली सरल तथा स्पष्ट है । अलंकारों का सौंदर्य अधिक देखने को नहीं मिलता । भाव व्यंजना परंपरा से आए हुए भावों की है । प्रीतम के बिना अंसुधारा बहती ही रहती है, जैसे कमलों से रक्त झरता है ।[3] शिशुता कम होती जाती है, यौवन बढ़ता जाता है । इस भाव की व्यंजना स्पष्ट शब्दों में है । यौवन की उपमा शशि से, शिशुता की रात्रि से दी है ।[4] भाव सुन्दर

१-२ मतिराम सतसई पद सं० पृ० सं० ४२६, ५० प. ६ १४८, १२०

३-४ रसलीन रीति शृंगार पृ० ३७, पृ० १४१

नहीं है । इसी से समझने में सहज है । तरफरात, फरफरात आदि वाक्चिक चित्र पाये जाते हैं । कामिनी का तरफराना, कामिनी का फरफराना अभिव्यक्त भाव के अनुकूल है । हृदय पटल पर अंकित मानस चित्रों की अभिव्यक्ति भी मिलती है । इस के विचारों की सुसम्बद्ध श्रृंखला का उत्तरोत्तर विकास भी पाया जाता है । जीवन की दृष्टि भले ही गहरी न हो पर सौंदर्य तथा रसिकता भरी भावनाओं से काव्य भरा पड़ा है । चमत्कार और उक्ति वैचित्र्य की ओर इन का ध्यान रहा । परम्परा के अनुसार शब्दों के द्वारा भावों का चित्रण किया है । उमहति हंसति बकति डरति चितगति चितकति रिसाति में मनोव्यथा का चित्र खींचा है ।

रसनिधि की शैली

इन की शैली की विशेषता प्रेम की अभिव्यक्ति है । फारसी की आशिकी कविता कविता का प्रभाव है । भाव व्यंजना पर अधिक बल दिया है । अलंकारों का प्रयोग कम किया है । हृदय का प्रेम नहीं छिपता इस को व्यक्त करने के लिए सुसम्बद्ध श्रृंखला मिलती है । बोलने में, देखने में, चलने में चतुराई छिपती नहीं ।[1] यह ऐसी नायिका का चित्रण है जिस का प्रेम गुप्त है पर उसके अंगों के व्यापार से सभी जान जाते हैं ।एक ही शब्द को बार बार प्रयोग कर भाव को अधिक से अधिक स्पष्ट किया है ।

भौंह कुटिल, नैना कुटिल, बतनी कुटिल बिलास ।
बैचन को मेड़ी छियी क्यौं सूधे हूवै बास ।[2]

यह आश्चर्यजनक किंतु सत्य तथ्य है कि नैन मन की गति को भी पंगु करने वाले होते हैं ।[3] सभी कवियों ने नैनों की नोक का काम तक

१- रसनिधि सतसई पद सं० ४७८ पृ.क्र. २०४

२-३ ― पद सं० ३४२, ३४० पृ.क्र. १५५, १५५

जाना वर्णन किया है इसी सौंदर्य की व्यंजना कितनी सुन्दर है, कि नेत्र कानों तक पूछने जाते हैं कि तुम ने प्रियतम के आने की बात किसी से सुनी तो नहीं है ।[१] कहीं कहीं उपमाएं साधारण वस्तुओं से भी की गई हैं जिस से काव्य के सौंदर्य की वृद्धि नहीं होती । खाटे आम मिठास है, गुड़ में दीने चाख ।[२] बसनी हुई रेशम डोरे लाल[३] आदि का प्रयोग है । अधिकांश वाक्य में शब्द चित्र तथा सुन्दर भाव व्यंजना पाई जाती है । भाषा में कहीं कहीं आशिक, महबूब, अलगरजी आदि का प्रयोग है ।

मुहावरों का भी प्रयोग मिलता है । दो असि एक मयान की व्यंजना नींद और प्रीतम का साथ एक साथ नहीं हो सकता उस के लिए किया है । नेत्र के लिए थिरकत शब्द के प्रयोग से चंचल नेत्रों का चित्र खींचा है । जो कि किसी अन्य पर्यायवाची शब्द से न बन पड़ता । नाद सौंदर्य इन की भाषा में बराबर मिलता है । मूर्त चित्र अनुभूति पूर्ण हैं, उन का प्रभाव अवश्य पड़ता है । शास्त्रीय ज्ञान के पचड़े में ये नहीं पड़े, इन के दोहों में अनुभवों की अभिव्यक्ति है ।

राम सहाय जी के दोहे बिहारी के दोहों के समान हैं । उन में वाग्वैदग्ध्य तथा कारीगरी बिहारी की सी है पर हावों का सुन्दर विधान चेष्टाओं का मनोहर चित्र, भाषा की सौष्ठवता एवं संचारियों की व्यंजना नहीं है । हृदय की वह अनुभूति न होते हुए भी इन्होंने परम्परा को आगे बढ़ाया है । शब्द चित्र इन की शैली की विशेषता है । मोहनि सो ललचाय कै, आँखिनि सौं मसराय[५] सी ही है उनकी सुनी[६] - - - - - अलकों ही अखियान[७] आंकि करोटे कपोलनी[८] आदि इन्द्रियों के व्यापार तथा क्रिया कलापों के अनुसार शब्द चुने हैं । विशेषण पदों

१-४ रसनिधि सतसई पद सं० पृ० सं० ५२२, ३२५, २४९, ५५७ दो.सं. २१३, १५८, १५२, २१५

५-८ राम सतसई पद सं० पृ० सं० १३, ३०९, ३०५, दो.सं. २३५, २५०, २५०, २३२

का उपयोग सार्थक है तथा भावों को तीव्र करता है, एक चित्र खींचा है झीनी सारी पहने नायिका नहा कर आई है वह संकोच में नेत्रों को झुकाए खड़ी है इस में झीनी साड़ी और नेत्रों का झुके रहना स्पष्ट चित्र की रेखाएं हैं । नायिका का झरोखे में झांक कर चले जाना दर्शकों के दिल में खटकता है । (पद्मा. पृ.सं. ८२/१३५) विरह में नेत्र अपने आप भरते हैं अपने आप आंसू गिर जाते हैं, समझाने से भी नहीं मानते आदि हृदयस्पर्शी भावों की व्यंजना हुई है 'गीनो रहूंगो निबेक को तो गीनो कहौं कौन' में श्लेष का चमत्कार दिखाया है । (पद्मा. पृ.सं. ३५/२२१)

उपमाएं सुन्दर बन पड़ी हैं जैसी आप लागि बरि उठी महताबी सी आग (पद्मा. पृ.सं. १०/२२७) । ऐसे ही दीपमाल सी बाल कह कर नायिका का सौंदर्य चित्रित किया है (पद्मा. पृ.सं. ६३७/२७८) । 'आप भलो तो जग भलो' मुहावरे का प्रयोग किया है । (पद्मा. पृ.सं. २२१/२८६)

<u>सुखपति मिश्र की शैली</u> - सुखपति मिश्र आचार्य हैं । इनका आचार्य कर्म तो मनोयोग से हुआ है पर कवित्व पर अपना ध्यान अधिक न रख सके । इन के चित्रों में पूरी तरह रस परिपाक नहीं हो पाया है । परम्परा के अनुसार भाव वही है । वर्णन भी उन्हीं वस्तुओं का है पर भाव इतने स्पष्ट नहीं हैं कि सरलता से प्रभाव उत्पन्न कर सकें । एक चित्र इन्होंने नायिका का खींचा है जिस में नायिका ने सुन्न में वर्षा ऋतु का साज सजाया है ।

गाव उठे जिन मेघ मलारहिं, झांकी मैं दामिनि की दरसावै ।[1]
बोलन कोकिल को बरजै, बरसै दृग-वारिद सी भर लावै ।
- - - - - -
- - - - - -

इस में केवल मल्हार गाने से वर्षा की ऋतु के भाव आ जाते हैं । झांकी में बिजली दिखाई देती है । बोल कोकिल को बोलने को मना करते हैं तथा आंसू से बादल बरसते हैं । इन वाक्यों में तारतम्यता नहीं है । एक रेखा इधर की एक उधर खींच दीने से पूरा चित्र नहीं खिंच पाता अतः भाव भी पूरे स्पष्ट नहीं हुए । कल्पना वैभव भी अधूरा ही बन पड़ा है । भाषा में बिना व्यतिक्रम के ही खेद के होने के कारण खड़ा खिंच जाता है । इस का चित्र खींचा है । वसंत के पूरे वर्णन की

- -

१- रीति शृंगार सुखपति मिश्र एक रहस्य पृ० सं० ७५

कल्पना नहीं हो पाई है । इस में भाव अधूरे से जान पड़ते हैं । फूकति है कोई लपटैसी बैन चातुरी सों, फूले आँखो जान जागि देखे मैं न भाग में[1] इस में कोई भाव जागृत नहीं होते । कहीं कहीं रूप सौंदर्य के वर्णन में रस परिपाक हो गया है । नायिका के नेत्र लजीले हैं, धीरे धीरे हंसती है

डगमगी डगै मत झमकि-झमकि लौ, कहै देह गति तन झलक अनंग की ।
आली औरे आभा छाय गई है बदन पर, अगर-मगर ज्योति होति अंगअंग की[2] ।

इस में परम्परागत वर्णन मिलता है । लजीले नैना डगमगाती चाल, अगर मगर आभा पर प्रत्येक का चित्रण टुकड़े टुकड़े में प्रतीत होता है । ऐसा वर्णन रीति काव्य का मुख्य विषय है इस में कुछ न कुछ नायिका के मनोभाव प्रकट हो जाते हैं । पर वास्तव में अनुभूति न होने के कारण काव्य में हृदयस्पर्शी न हो सका ।

भाषा ब्रज है । व्याकरण की दृष्टि से स्वच्छ है । पर सरल तथा कोमल होने के कारण भाषा भाव अनुगामी नहीं प्रतीत होती ।

सुखदेव मिश्र की शैली

सुखदेव मिश्र ने परम्परागत नायिका भेद का वर्णन किया । इन की शैली सरल तथा भावमयी है । अलंकार का बोझा नहीं है । पर भाव को स्पष्ट करने के लिए अलंकारों का सहारा लिया गया है । चित्रों में रेखायें स्पष्ट हैं इस से भाव हृदयंगम करने में सरलता होती है । इन्होंने एक चित्र खींचा है जिस में नायिका कहती है मनमथ मत्त है, साझ भैंक गई है रात अंधेरी है, प्रियतम नहीं है इस से मकान अच्छा नहीं लगता है । हमारे साथ कोई सहेली भी नहीं है, कामदेव के तीर बराबर लग रहे हैं । भई अबरात, मेरो जियरा डरात, जागु जागु रे बटोही यहाँ चोरन को डर है यह कह कर वह व्यंजना के द्वारा अपनी इच्छा प्रगट करती है । इस में भाषा भाव की अनुगामिनी है । भाषा में प्रवाह है । पाठक तारतम्य से एक भाव के बाद दूसरे भाव पर उत्सुकता बढ़ा जाता है ।

इन्हीं भावों की कल्पना, भाषा में सरलता और

- -

१-२. रीतिशृंगार - कुलपति मिश्र - पृ. ७२, ७४

३. रीतिशृंगार - सुखदेव मिश्र - पृ. ७६

ओज का सहारा लिया है । शैली सहज है । जहाँ कहीं उपमा का प्रयोग किया है वहाँ कविता प्रभावोत्पादक हो गई है । एक चित्र खींचा है

> जोहै जहाँ नंदकुमार तहाँ चली चंद्रमुखी सुकुमार है ।
> मोतिन ही को कियो गहनो, सब फूलि रही जनु कुंद की डार है ।
> भीतर ही जु लखी सुलखी अब बाहर जाहिर होत न दार है ।
> जोन्ह सो जोन्है गई मिलिसी मिलि जाय ज्यों दूध में दूध की धार है[1] ।

नंद कुमार और चंद्रमुखी का रूप सौंदर्य एक ही समान है । फूलों से वह रमणीयता और भी बढ़ गई है । दूध की धार से जुन्हैया की उपमा देने से उपमान उपमेय में सादृश्य होने के कारण चित्र बिलकुल ही स्पष्ट हो गया है । भाषा भाव की अनुगामिनी है । कहीं क्लिष्ट नहीं । ये ब्रज भाषा के कवि हैं । भाषा, शैली साधारण लाक्षणिक तथा सरसता है । शब्दों का प्रभाव उपयुक्त है । परम्परागत विषयों का निर्वाह किया है ।

कालीदास त्रिवेदी की शैली काली दास त्रिवेदी की कविता में नायिका भेद का विवेचन कवित्वपूर्ण है । इनकी कविता उक्तिवैचित्र्य से सम्पन्न है । वैसे विषय और भाव तो परम्परागत ही हैं पर कहने का ढंग सुन्दर है । इन्होंने एक चित्र खींचा है । नायिका कन्हैया से प्रार्थना करती है -

> चूमौं कर कंज मंजु अमल अनूप तेरो
> रूप के निधान कान्ह मो तन निहारी दै।
> कालिदास कहै मेरे पास हरि हेरि हेरि,
> माथे धरि मुकुट लकुट कर डारि दै
> कुंवर कन्हैया मुखचंद की जुन्हैया चारु
> लोचन चकोरन की प्यासन निवारि दै
> मेरे कर मेंहदी लगी है नंद लाल प्यारे
> लट उरझी है मेरे बेसरि संभारि दै

इस में नायिका की उक्ति बड़ी सुन्दर है । नायिका कृष्ण जी की सहायता चाहती है । उसी का बहाना ढूंढ रही है । विरह वर्णन में इन की सच्ची अनुभूति के दर्शन होते हैं । वैसे विषय तो सभी कवियों ने यही लिए हैं । झिल्लियों का शोर, बादल का उमड़ना घुमड़ना, दादुर का बोलना आदि पर कोकिल और मोर के बोलने के कारण वियोगिनी के विरह की हूक है, यह इन की अपनी विशेषता है ।

कहीं कहीं चित्र में रेखाओं को यथास्थान क्षीण और स्थूल बनाते हुए उन्हें ऐसा स्वरूप प्रदान किया कि उन का सौंदर्य द्विगुणित हो गया । होली का समय है । चारों ओर गुलाल खेला जा रहा है । नायिकाओं के नख, मोती, कपोल, भाल आदि सभी पर गुलाल फैला है । इसी को लचकीली भाषा में वर्णन किया है

बरुनी पलक पर भृकुटी तिलक पर बिथुरी अलक पर झलक गुलाल की ।[१]

इस में साधारण से भाव की सरस शब्दों में व्यंजना की गई है । अधिकतर अन्तिम पद में भाव चरम सीमा पर पहुंचा है । वर्षा ऋतु, वसंत ऋतु के वर्णन बड़े अनुभूति पूर्ण मिलते हैं ।

अलंकारों से वर्णन सौंदर्य बढ़ गया है । अनुप्रास से तो भाषा सजी हुई है । 'कोकिल कलोल और कलाप की अलाप सुनि चातक चपल बोल सुनि दहियत है'। 'चैन न रहत चित चंद्रमा की चाँदनी ते ताइन तमस दैसे सुगु गहियत है'।[२] उत्प्रेक्षा में भी सुन्दर व्यंजना की है ।

१- ______ फ़न्हू आब्लाग्रह पद सं. ह. सं. ५०७५४

२- षट् ऋतु हजारा - हबीबुल्ला (?) कालिदास वसंत ऋतु - - ४३।४१

हरी हंठ तीसरे रँगीली रंग रावटी में,
तकि ताकी ओट छबि रह्यो नंदनंद है ।
कालीदास कीधिन दरीचिनि ह्वै झलकति
छबि की मरीचिन की झलक अमंद है ।
लोग देखि भरमैं कहा धौं इहि घर में
हुरण मयूखो अगमयूखो जोतिन को कंद है ।
लोलन की माल है कि ज्वालन की जाल है
कि चामीकर चपला कि रवि है कि चंद है ।[१]

रूप सौंदर्य के वर्णन में कवि ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । रूप वर्णन में ही उपमा के भावों को तीव्रता पर पहुंचाया है । नायिका के कपोल का वर्णन है उस में कपोल को मुकुट से उपमा दी है 'कान्ह अवलोकत बदन प्रतिबिंब मिस कनक सरूप मानो मुकुट अमोल है' ।[२]

<u>भाषा</u> - भाषा की परम्परा के अनुरूप ही है । शब्दों की आवृत्ति झंकृत करने वाली शब्दावली, सन्धि विग्रह द्वारा समास योजना समोच्चरित शब्द योजना आदि से भाषा को अलंकृत किया है । शब्दों की आवृत्ति बहुत मिलती है ।

'बिहरैं सिर ढारै, सरस दारै दरद बिदारै दुग मलकैं' में 'ढारै, उबारै' 'बिदारैं, मलकैं, झलकैं, ढलकैं, छलकैं'[२] । इसी तरह 'कीने पट्ट झलकत लागी छबि छलकनि, अलकनि, पलकनि, ढलकनि आए हैं' में समोच्चरित शब्द योजना है ।

'मची एक बेर द्वै झनक चुरियान की घनक घुँघरून की भनककिंकिनियान' में झंकृत करने वाली भाषा है । 'दरक दरकति' में संधियोग द्वारा समास योजना की है ।

- -

१- ______ शृंगार - कालिदास उपनाम ज्ञान, पद्य. ५. ८. १९२८

मुहावरे का भी प्रयोग है । मेरी आंखि दाहिनी लगी है फरकन कौन काज किधौं आंखि बाईं फरकति है ।

देव कवि की शैली देव ने परम्परागत शृंगारी कविता की धारा को अपने प्रयास से नवीन कल्पनाओं तथा भावनाओं द्वारा प्रगति की ओर बढ़ाया । इस में सन्देह नहीं कि इन्हों ने वही सब विषय लिए हैं । वही उपमान हैं पर प्रत्येक विषय में नवीन उद्भावनाओं से सजीवता प्रदान की है । प्रत्येक चित्र में इन की अपनी भावना उभरती सी प्रतीत होती है । इन के चित्रों में प्रत्येक रेखा अपना विशेष महत्व रखती है । एक नायिका सखी के साथ रंग भवन में गई । वहां प्रियतम नहीं मिले । उस की मानसिक स्थिति के कारण शरीर की वृत्तियों पर प्रभाव पड़ा है । उसी का एक चित्र खींचा है ।

> प्यारी सकेत सिधारी सखी संग स्याम के काम संदेसनि के सुख ।
> सूनी उतै रंग भौन चितै चित मौन रही थकि चौंकि कछू सुख ।
> एक ही बार रही थकि ज्यों कि त्यों मौंहनि तानि कै मानि महा दुख
> देव कछू रद बीरी है बीरी सुहाथ की हाथ रही मुख की मुख

इस में पहले की रेखाएं ढांचा तैयार करती हैं । अन्तिम रेखा सजीव है । इसी से चित्र में प्रभावोत्पादकता आ गई है । देव कवि ने चित्रों में कांछित अवयवों के बयान में कुशलता दिखाई है । गतिशील चित्र खींचते समय एक हड़बड़ी का सजीव चित्र खींचा है । रास लीला के वर्णन में नायिका की दशा का चित्र है ।

- - - - - - - -

> भूषननि, आलि, उलटे दुकूल देव, खुले भुज-मूल प्रतिकूल विधि बंक-मैं ।
> चूल्हे चढ़े छांड़े उफनात दूध-भाड़े, उन सुत छांड़ि अंक, पति छांड़े परजंक मैं

१- देव सुधा - पद सं० पृ० सं० १३४।८०

२- देव सुधा - पद सं० पृ० सं० ८२।४५

'चित्रों में रंग का वैभव भी मिलता है । एक रंग के चित्रण में चाँदनी की जगमगाहट से चित्र को झिलमिला दिया है । चाँदनी का महल, चाँदनी के समान राधा की छवि, चंद की कला, फूलों के वसन तथा मालाएं, झलकते हुए फुहारे मनि मानिक का चंदोवा, हीरे के हार, मोती की झालरें यह सब रेखाएं एक रंग की होते हुए भी अलग अलग अपने में उभरी सी हैं ।[1]

इसी प्रकार वर्षा वर्णन में 'अंबर बिराजे वर, अंबरन छाए छिति पीरे हरे लाल ये जवाहिर बिछाए हैं' में रंग का मेल किया है ।[2]

वर्षा में नायिका की भीगी चुनरी को नायक निचोड़ता है । उस चित्र में सूक्ष्म कौशल दिखाया है । 'चौगुनो रंग चढ़ी चित में चुनरी के चुवात लला के निचोरत' । डा० नगेन्द्र जी का कहना है बिहारी के चित्रों में नक्काशी का प्राधान्य है । उन की रेखाएं पैनी और रंग चढ़े हुए हैं । वे चित्र वस्तु परक अधिक और भाव परक कम हैं । यह जयपुर कलम का प्रभाव है पर देव के चित्रों में रेखाएं हल्की, कोमल, रंग तरल और घुले मिले हैं । उन का सम्बन्ध राजस्थानी अपनी देशी शैली से था जिसमें मूलतः भावपरक होने के कारण मार्दव की विशेषता थी ।[3]

श्रृंगार के चित्रों में रूप की अनुभूति को तीव्र करने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया है । इस में उपमा का प्रयोग चित्रों के सौंदर्य को बढ़ा देता है । मन को माखन के समान तथा यौवन को दूध के समान कहा है ।[4] 'जगर मगर आभु आभति दिवारी सी' में सौंदर्य की आभा और भी प्रखर हो जाती है । 'बड़े बड़े नैननि सों आँसू भरि भरि ढरि गोरो गोरो मुख आजु ओरो सो बिलानो जात'

१- देव सुधा पद सं० पृ० सं० ३८।१९

२- देव सुधा पद सं० पृ० सं० ६८।६८

३- देव और उन की कविता - डा० नगेन्द्र पृ० १८९

४- देव सुधा पद सं० पृ० सं० २६६।१४३

में सूक्ष्म अभिव्यंजना के द्वारा चमत्कार आ गया है । "आँखें मधु की मक्खियाँ हो गई" इस प्रकार की उपमाओं से काव्य भरा पड़ा है ।

अनुराग के रंगनि रूप तरंगनि अंगनि ओप मनो उफनी ।
कवि देव हिये सिँहरानी सबै सियरानी को देखि सुहाग सनी ।
बर धामनि धाम चढ़ो बरसै मुसुकानि सुधा घनसार घनी ।
सखियान के आनन इंदुन ते अँखियान की बंदनवार तनी ।[1]

इस में सखियों की आँखों की बंदनवार तनी है । चमत्कार मूलक है उत्प्रेक्षा तथा श्लेष में भी उक्ति का चमत्कार मिलता है । विरह की दशा पर रम्य एवं भावपूर्ण अत्युक्ति मिलती है । देव ने ज्यों रंगरेज मनोज है सलोने की बेलि बनाई में उत्प्रेक्षा का सौंदर्य मिलता है । अतिशयोक्ति तथा चमत्कार मोम के मन्दिर माखन कोमुनि बैठ्यो हुतासन आसन कीने[2] में मिलता है । कहीं कहीं इस सब से क्लिष्टता आ गई है । पर वह भावना के आवेग के कारण है ।

भाषा - विषय वस्तु के अनुरूप भावों का चयन हुआ है । सौंदर्य वृद्धि के लिए शब्दों की तोड़ मरोड़ तथा अव्यवस्था भी हुई है पर फिर भी भावात्मक शब्दावली से काव्य भरा हुआ है । इन्होंने भाषा को सजाने का प्रयास किया है । शब्दों की आवृत्ति द्वारा झंकार और सस्वरता पैदा की है ।

'फैलि फैलि फूलि फूलि फलि फलि झुकि झुकि झमकि झमकि आई कुंजै'[3]

'औढ़ी सी, उढ़ी सी, ढीमि ढीमी सी, ढकी सी ढीम,

अढ़ी सी, टकी सी, लगी लगी लहरानी सी' में[4] आवृत्तियाँ शब्दों को आगे ढुलकाती हुई भाषा में एक विशेष गति पैदा कर देती हैं । संधि विग्रह द्वारा समास योजना तथा समोच्चरित शब्द योजना से एक विशेष संतुलन की सृष्टि होती है ।

१- देव सुधा पद सं० पृ० सं० ४४।९१

२- देव सुधा पद सं० पृ० सं० १९।९

३-४- देव काव्य - रत्नावली पद सं. पृ. सं. २७/२५ ; १७ २।३५

चक-चकवान को चुरायो चक-चोटन सों,

चकित चकोर चक-चौंधी सीं चकै गई ।[१]

आगु में आगुन ही उरकै हुरकै फिर कै समुकै समुकावै ।[२] इन में यमक का प्रयोग चमत्कार के लिए हुआ है ।

जागुरी जगावै जगु जगुरी जगै न उगो न ज्योति जगै होति ही जों जग जग री कहीं कहीं अर्थ व्यंजन के चमत्कार के लिए शब्द समूह की योजना की है । 'फहर फहर होत पीतम को पीत पट, लहर लहर होत प्यारी की लहरिया'।

इन की भाषा साहित्यिक ब्रज है । इन्हों ने उसे और समृद्धि बनाया । इन्हों ने तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है पर पांडित्य या चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं । भाषा की श्री वृद्धि के लिए तत्सम शब्दों को अपनाया ।

कविंद कवि की शैली कविंद कवि ने वर्ण्य विषय के अनुकूल कल्पना में कौशल दिखाया है । चित्र सजीव तथा प्रभावयुक्त हैं ।

चटकारी चूनरी कुसुंभी या किनारी वारी, तैसिए चमक रही घूंघट उघारे तें ।[३]

तेल औ फुलेल लागी अलकै बिथुर रहीं, मानो नाग लटकत कुंडल किनारे ते ।

इस में चटकीली किनारेदार चूनरी का घूंघट है । उस के खुलने से ज्योति, बिखरे हुए बाल चित्र की रेखाएं हैं । अन्तिम रेखा दामिनी के समान नायिका है जो भाव को पूर्णतया स्पष्ट कर देती है ।एक चित्र है जिस मे नायिका कुंज में प्रेमी से मिलने जाती है । वहां मिलन नहीं हो पाता इस से वह बड़ी दुखी है । इस में भाव व्यंजना बड़ी सुन्दर है । 'पगन में छाले परे, नांघिबे को नाले परे, तऊ लाल! लाले परे राउरे दरस के'।[४]

१- सेस सुधा पद सं० पृ० सं० १०७।६१
२- " " ३९।३३
३- हिन्दी बृहत् साहित्य का इतिहास - कविंद पृ० सं० ४२४
४- रीति शृंगार कविंद.पृ० सं० १५३

श्लेष के द्वारा भावों में चमत्कार आ गया है । 'आंचर को पकरियो अचानक ही मेरी आली में नहीं छिपायो तोहि में नहीं छिपायो है'।[१] 'आंख जो हमारी लागी तुम सों अनोखे लाल तिन अब आंखिन की पलकैं न लागती'।[२] कहीं उपमा में भाव व्यंजना को सुन्दर बनाया गया है । तय तम अरुन दिनेस उदयौ है अमित तांक छिपुताई के तिमिर सब भागे हैं ।[३]

इस में नायिका रूपी सूर्य के निकलने से छिपुता रूपी अंधकार के नाश का वर्णन है । विरह वर्णन में उपमा के द्वारा अनुभूति व्यक्त की है ।

बूल सम लागी फूल सूल सी सुबास लागी बाग लागी बाघ सो तड़ाग लागी डाग सो[४] ।

- - - - - - -

- - - - - - -

चंद लागी चिता सों अंगार सों अगार लागी घर लागी गर सों नगर लागी नाग सों ।

अतिशयोक्ति के द्वारा चमत्कार काव्य में आ गया है । विरह में 'छाती बार हीवे जाकी लाती अंखियान तें' वर्णन किया है । नायिका के आंसुओं का वर्णन है 'आनंद के अंसुआ उकति बनी उपमा के पैमी बरुनीन में मुकुत मानो पोहे हैं'।

<u>भाषा</u> - भाषा मधुर और प्रसाद पूर्ण है । शब्दों की आवृत्ति जैसे 'मैन मैन के न हेरे बेन हैन के जैया छिन रैन के जितैया सौतियान के'[५] में पाई जाती है । समोच्चरित शब्द योजना द्वारा भाषा को सजाया है । 'ठग की ठगी सी रति जागे की जगी सी थकी औचकी भुगी सी चारों ओरन चिते रहीं' कहीं कहीं प्राकृत भाषा का भी प्रभाव है अगुग, बगुग, उबगुग का प्रयोग मिलता है ।

१-२ हजारा दूसरा भाग पद सं० पृ० सं० ७२।२७३, ८२।२९६

३- रीति शृंगार - कवित्त पृ० सं० १५२

४-५ हजारा पद सं० ५९, पृ० सं० ८९ , पद्य सं. ५९, पृ. सं. ८९

भाषा को अंकृत किया है ।

मन को अरेरै करै आठौ याम टेरै, बरही न की बरेरै दादुरंन की ।

गावन, जावन, मनभावन, पावन, छितावन, तावन, दावन, बिदावन, शब्दों का प्रयोग है । विषय तथा भाषा दोनों ही परम्परागत हैं ।

श्रीपति की शैली

श्रीपति रसवादी कवि हैं । इसी से काव्य में रस की प्रधानता दिखाई देती है । इन्हों ने विषय वस्तु सरल और सीधे ढंग से प्रस्तुत की है । कल्पना वैभव की कमी है पर चित्र स्वाभाविक हैं । नायक की टेढ़ी पाग का चित्र खींचा है ।

टेढ़ी पीत पाग पर कलंगी लसति टेढ़ी टेढ़ी
अलकैं अनूप टेढ़ी खोरि भाल की ।
जोर भरी भौंह टेढ़ी अरुनी लधन टेढ़ी
हैहै चितौन टेढ़ी लोचन विशाल की ।
श्री पति सुजान कहै टेढ़ी जमुना के तीर
टेढ़े ठाढ़े कान्ह सोभा टेढ़ी ये गुपाल की ।
दीन सी कहै न टेढ़ी कुमति नहीं है टेढ़ी
मन में बसी है टेढ़ी मूरति गुपाल की ।[1]

इस में कृष्ण जी के रूप का वर्णन करते समय सभी चीजें उन की टेढ़ी हैं । भाव व्यंजना की दृष्टि से कवि वर्णन करने में सफल है । इन्हों ने पावस वर्णन में बहुत से चित्र खींचे हैं ।

घन की घमक, बक पाँति की चमक, ज्योति-
हींगन झमक, चमकन चपंलान की ।
बेहर झकोरे मोरे सोरे चहुं ओरे सोरे
प्रेम के हिलोरे घोरे मुनि सुजान की ।[2]

इन सब रेखाओं से वर्षा का चित्र स्पष्ट हो जाता है ।

उपमा से भावों की तीव्रता बढ़ जाती है । रूप वर्णन में रूपके सौंदर्य को भावन,

१- श्रीपति के कवित्त- पाण्डुलिपि २११२
२- रीति शृंगार- श्रीपति - पृ. १२८

मखमल, फूलों की छड़ी के समान कहा है ।

गहगही गरुबी गुराई गोरी गोरे गात,
श्रीपति बिलोर-सीसी ईंगुर सी भरी-सी ।
बिज्जु थिर घरी-सी कनक-रेख करी-सी,
प्रबाल-छबि ऊँही सी लसत लाल छरी-सी ।[1]

भाषा - भाषा में शब्द आवृत्ति तथा समोच्चरित शब्द योजना के द्वारा ध्वनि पैदा हो गई है ।

छहरि छहरि हिम कहरि कहरि करि
थहरि थहरि दिन बीते पिया माह के ।
लहरि लहरि बीज फहरि फहरि आवै
घहरि घहरि उठै बादल असाढ़ के ।[2]

इस में छहरि छहरि, लहरि लहरि शब्दों से भाव व्यंजना में सहायता मिलती है । दृश्य के लिए छहरि शब्द का प्रयोग, घटा के लिए घहरि झंझा पवन भरपि भरपि झकोरि झोरि आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है । वर्षा वर्णन में जलमयी धरनि, तिमिर मयी देह, घन मयी गगन, तड़ितमयी घन[3] झल्ली झनकावन बिरही सतावन, मदन जगावन, चातक की गावन[4] आदि से चित्रों में सजीवता आ गई है । वास्तव में इन की भाषा भाव के अनुरूप चलती है । इनकी रचनाओं में अनुप्रास की बहुतायत है ।

धूम से धुंधारे, कहूँ कारद से कारे, ये निपट बिकरारे मोंहि लागत सघन के
- - - - - - -
दरषि दरषि हिम, लरषि लरषि करि, अरजि अरजि परे दूत ये मदन के
बरजि बरजि अति तरजि तरजि मोये गरजि गरजि उठै बादर गगन के

१- रीति श्रृंगार पृ० सं० १३५
२- पावस संग्रह - श्रीपति पद सं० ८ पृ० सं० २
३-४ रीति श्रृंगार श्रीपति पृ० सं० १४०, १३७
५- रीति-श्रृंगार - श्रीपति. पृ. १३४.

अनुप्रास के रसानुकूल वर्ण विन्यास का सृजन करके भाषा में कहीं ओज कहीं माधुर्य दिखाया है ।

भिखारीदास की शैली: दास कवि रस तथा ध्वनि के आचार्य हैं । अनुभूति के कारण रस परिपाक सर्वत्र हुआ है । कल्पना की ऊंची उड़ान न होते हुए भी चित्र आकर्षक है । नख से शिख तक श्रृंगार विभूषित नायिका का चित्र खींचा है ।

> पंकज पायनि पैजनियाँ कटि घांघरो किंकिनियाँ गरबीली ।
> मोतिनहार हमेल मलीम है सारी ओढ़ावनी कंचुकी नीली ।
> ठोढ़ी पै स्यामल बुंद अनूप तरयौनन की झुनियाँ चटकीली ।
> ईंगुर की बुर कीगुर की नथ भाल में लाल की बैंदी छबीली ।[1]

पैरों में पैजनियां, घाघरा, किंकिणी, हमेल, नीली कंचुकी, कान में तरौनियां, नथ, भाल की बैंदी आदि रेखाएं पूरे चित्र को स्पष्ट करती हैं । नायिका के सौंदर्य वर्णन में परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है । चंपकमाल, हेमलता, दीपशिखा की प्रभा, चंद्रकला, मनोज की अबला, चित्र की पुतली के समान नायिका कहा है । विरह में अनूठी भाव व्यंजना मिलती है । वियोगिनी संदेश भेजती है । 'चलो सखी कीजै यह अंब और दीजै अरू कहियो आ अमरैया राम राम कही है ।'[2] अंब और देकर वसंत आने वाला है, वह इस ओर संकेत करती है । विरह में दुखित नायिका को देखेहु दुखित अनदेखेहु दुखित है' ।

रूप वर्णन में इन्होंने चमत्कार की योजना की है । आनन को कमल, ओठों को बिंब, वेणी को सर्प, बोली को बीन में सादृश्यमूलक उपमा अलंकार का वर्णन कवि करना चाहता है पर वह इस ढंग से कहता है कि नायिका को देखकर उपमानों को भ्रम हो रहा है ।

१- काव्य निर्णय पृ० ७८ - भिखारीदास

२- रीति श्रृंगार दास पृ० सं० १६२

भाषा में अवधी, कन्नौजी, बुंदेली, खड़ी बोली, देशी, अरबी, फारसी सब तरह के शब्दों का मेल किया है। मुहावरे का भी प्रयोग किया है। 'इत बोरो जो रावरी सो न छुरे न छुरे परलोन लखाइय जू'।[1]

तोष कवि की शैली — तोष कवि का काव्य ललित है। चित्र योजना तथा उक्ति चमत्कार काव्य में मिलता है। एक चित्र में गोपी उद्धव जी से कह रही है कि यहां चंद्रप्रभा की तरह युवतियां हैं उन को छोड़ कर कृष्ण मथुरा गए जहां कुबजा कछुआ सी लेटती होगी तो उन का जी नहीं ऊबता होगा[2] । इस उक्ति से चित्र की अन्तिम रेखा सजीव हो उठती है। रसखान की सी भाव व्यंजना कुछ कुछ पाई जाती है।

> श्री हरि को छबि देखिबे को अंखियां प्रति रोमहि में कर देतो ।
> बैनन के सुनिबे हित स्त्रौन जितै तित सो करतो करि हेतो ।
> मो ढिग छांरी न काम कछू रहै तोष कहै लिखि तो बिधि एतो ।
> तो करतार इती करिनी करिकै कलि में कल कीरति लेतो ।[3]

रोम रोम में आँखें हो जाना, कान हो जाना उक्ति में चमत्कार ला देते हैं। इन्हों ने इस कल्पना का निर्वाह अच्छा किया है कि इस से विधि की कीर्ति मिल जाती है। कहीं कहीं भावों का विधान सघन है पर उलझा नहीं है। नायिका कृष्ण का रूप पूरा नहीं देख पाती जहां दृष्टि पड़ जाती है वहां से हटती भी नहीं। 'मैं अहकि जाति तकि लगि जाति दोउ अंखियां थकि जाति बनाई'।[4]

'सील सो गीली परी अंखियां लखि ढीली चितौनी चितै के हंसी वूं'।[5]

1- शृंगार निर्णय दास पृ० ६२ पद सं. १२८
2- कविता कौमुदी भाग १ - तोष - पद सं. द्वि. सं. ३१८-८
3- हिन्दी साहित्य का इतिहास तोष पृ० ३३९-३४०
4- रीति शृंगार तोष पृ० १६६

इस में कवि की सच्ची अनुभूति के दर्शन होते हैं । परम्परागत उपमेयों का वर्णन नये ढंग से किया गया है । नेत्रों की लालिमा देखकर मृगों ने गुमान छोड़ा, चंचलता में मीन ने आधीनता स्वीकार की, नोकदार देखकर चकोर की चर्चा कवियों को छोड़नी पड़ी, 'आई चोर चंचलताई राधिका के नयनन में खास खंजरीटन बराबी सहहिबे परी'[1]। उपमन (उपमान) और उपमेय वही हैं । केवल विधान नवीन है ।

भाषा - भाषा में प्रवाह है । स्वाभाविक रूप में आगे बढ़ती है । शब्दों की आवृति, समोच्चरित शब्द योजना तथा अनुप्रास के द्वारा भाषा में गतिशीलता आ गई है । हेमंत ऋतु के वर्णन में दिगंत सलसंत, कंत इकंत उकन्त, अनंत, छबिवंत, हिमंत आदि शब्दों का प्रयोग किया है ।[2] 'छुटि छुटि, झूमि झूमि, कहि कहि' आदि शब्द की आवृत्ति से झंकार उत्पन्न हो जाती है । अनुप्रास का प्रयोग परम्परा के अनुसार ही हुआ है । 'केकिन की केका कल कंठनि की कूवै, काम कलि की कलानि' 'सुघरी सुसीली, सुलसीली, सुरसीली,' लोने लोने लोचन पै खंजन चमत्कारी दंतन चमक चारु चंचलता चलाकसी' आदि शब्दों द्वारा काव्य को सजाया है ।

सोमनाथ की शैली सोमनाथ के काव्य में ध्वनि और शृंगार का सम्मिलित चमत्कार देखने को मिलता है । इन की अनुभूति भी स्वच्छ है । कल्पना वैभव की दृष्टि से भी कुछ कम नहीं है । चित्रों की रेखाएं स्पष्ट हैं ।

रवि भूषन आइ कलीन के संग ते, साधु के पास विराज गई ।
मुख चंद में आनि (मञाबनि) सों ससिनाथ, सबै घर में छवि छाय गई ।
इन को पति पेठे सवार सखी कह्यौ, यौं सुनि कै हिय लाज गई ।
मुख चाहकै, नार नवाइ लियौ, मुसक्याइ के भौन में भाजि गई ।[4]

१- द्वारा तोष पद सं० पृ० सं० ५५।८८

२- द्वारा तोष पद सं० पृ० सं० १०।३९०

३- रीति शृंगार तोष पृ० १०२

४- रीति शृंगार सोमनाथ पृ० १४३

इस में सास के पास बधू का आना, सास के पास बैठना, सखी के बचन सुनकर लज्जित होना, मुस्करा कर भवन को भागना चित्र की रेखायें हैं। अन्तिम रेखा ने चित्र को उभार दिया है। लज्जा के कारण नायिका का भाग जाना नायिका के मनोभावों को चित्रित करता है। रंगों के द्वारा चित्र को सजीव बनाया है। एक चित्र है जिस में शरद चंद्र की चन्द्रिका और नायिका के रंग बिरंगी बस्त्र, भुजंग की सी लहरें रंगीन रेखायें हैं जिन में चित्र समन्वित किया है।[1]

इन की रचनाओं में अलंकार की घटाटोप नहीं है। सीधे सादे शब्दों में भाव अभिव्यक्त किए गए हैं। चमत्कार का भी प्राधान्य नहीं है। अनुभूति की सरल अभिव्यक्ति ही विशेष है। विरहिणी नायिका कुछ कह नहीं पाती बार बार बाहर देखती है। "न कहै मुख तै कुछ अंतर की अंसुवानि सो आँखि पसारति है।"[2] इस से उस की मानसिक वेदना प्रगट होती है।

<u>भाषा</u> - भाषा में शब्दों की आवृत्ति, समोच्चरित शब्द योजना तथा अनुप्रास से सजीवता बढ़ गई है। वर्षा वर्णन में अधिकतर ऐसे शब्दों का ही प्रयोग परम्परा से चला आ रहा है। इस को इन्होंने भी निभाया है। "अंगन उछाह की लहर लहरी रहति, गहरी रहति, ठहरी रहति, छहरी रहति"[3] से रूप वर्णन "खिलि खिलखिलि तै उमहि महि, कीन्हों नभ छोड़ि छीन्हों धुरवा जनाये धूम करिगे"[4] इसी में डहडहे, मंरिको, करिगे, आवे घन आये घन आइ कै उघरिगे आदि शब्दों से वर्षा काल का चित्र खींचा है।

सोहति कसूंभी सारी सुन्दर सुगन्ध सनी, जगमगी देह दुति कुंदन के रंग सी।[5]
सील-सुघराई की सी सींव अरविन्द मुखी, नैनन की गति मृदु तरल तुरंग सी।
छुटती बहुंधा मनि भूषन मयूख चारु, 'सोमनाथ' लागी बानी उपमा बिरंग सी।
राजै रति मन्दिर अनंग अंगना सी आजु बाढ़ै अंग अंगनि में जोबन तरंग सी।

१-४ रीति शृंगार सोमनाथ पृ० सं० १४२, १४५, १४०, १४७,

५. हिन्दी मुक्तक साहित्य का इतिहास सोमनाथ पृ० ३५५

इस में उपमा के द्वारा भावोत्कर्ष दिखाया गया है । यौवन की तरंग भावों को स्पष्ट करती है ।

रघुनाथ कवि की शैली

रघुनाथ की कविता सरस एवं कवित्वपूर्ण है । भावों का स्पष्ट व्यक्तीकरण हुआ है । स्थिर तथा गतिशील दोनों चित्र स्पष्ट हैं । मानिनी नायिका का चित्र है ।

पान बिन अधर अंजन बिन नैन बड़े
हार बिन उर कछू औरे भेष भेषि रह्यो ।
सारी मलागजी नाक नथ बिन छूटे बार
कहिं रही भौंहि अरु मन महा रोषि रह्यो ।[1]

इस में नायिका का चित्र खिंच जाता है । बिना पान, बिना अंजन, खुले बाल से मानवती बैठी है । इसी तरह एक गतिशील चित्र चोर मिहीचनी का है ।

'खेल मिहीचनी को मचायो नंद मन्दिर में लुकिबे को कोठिन अटारिन में धंसि जाती' यह पहली रेखा है । दूसरी रेखा में 'नूपुर की ध्वनि' से पकड़ जाती है दौड़ते समय का चित्र है - वह दामिनी के समान लगती है । अन्तिम रेखा उस के आनन्द की है वह कृष्ण जी की ओर हंस हंस कर भाग जाती है ।[2] चित्रों की अभिवृद्धि के लिए इस प्रकार की योजना कवि करते हैं । अधिकतर तो परम्परागत ही वर्णन हुआ है । नेत्रों को सुधा के कुंडल भौंह को धनुष, मांग बीच फूल, बेनी की व्याल से उपमा दी है ।

भाव व्यंजना अनुभूतिपूर्ण है । आंखें नायिका की नुकीली हैं । उसे वर्णन करने के लिए कहते हैं 'यौवन आइबे की महिमा अंखियां मानो कानन से कहती हैं' ।[3] परम्परा से प्राप्त हुए उपमानों को नए ढंग से रखा है । कोकिल की बोली,

---

१- रघुनाथ - शृंगार सुधाकर [illegible] ३०/१०२
२- " " परकीया -
३- रीति शृंगार रघुनाथ बसंत वर्णन - पृ. १८०६

मलयानिल वायु, बसंत का आना, नायिका के लिए बड़ा कष्ट प्रद हो जाता है । सभी कवियों ने इस भाव को लिया है । इनका कहना है -

> के कहि मोर सिकारन को हहिं बागन कोकिल आवन पावै ।
> मूंदि झरोखन मंदिर के मलयानल आय न छावन पावै ।
> आये बिना रघुनाथ बसंत को बनी न कोऊ सुनावन पावै ।
> ब्यारी को बाढ़ो जियाओ धमार तो गाँव में कोऊ न गावन पावै ।[1]

नैनों के वर्णन में उपमाओं का तारतम्य दिखाकर कौशल दिखाया है । कृष्ण जी अचानक यमुना के किनारे गोपी को दिख जाते हैं । उसके मनोभावों के बदलने से नैनों की चंचलता में अन्तर होता जाता है ।

> कंजन से हूवै के फेरि खंजन से हूवै के फेरि मीन
> ऐसे हूवै के री चकोर ऐसे हूवै रहे ।[2]

विरह में अतिशयोक्ति वर्णन मिलता है । नायिका पत्र लिखना चाहती है पर विरह के आधिक्य से अक्षर में आँच भर जाती है ।

> हरि जाये देत चित सूखी स्याही झरि जाय,
> जरि जाय कागद, कलम डंक जरि जाय ।[3]

<u>भाषा</u> - इन की भाषा साफ सुथरी तथा गतिशील है । अनुप्रास से सजी है । 'कंचन सों चौसर सों चंद चांदनी सों,' 'कोयल कुहू के कूक देति,' 'छवि छया करि छपाकर छपा करिगो' 'जहाँ तहाँ फूलि फूलि झूलि झूलि' से भाषा में लय आगई है । शब्दों में आवृत्ति के द्वारा भी सौंदर्य बढ़ा है । छुरी, छुरी, घुरी घुरी, रुरी रुरी, ढुरि ढुरि से भाषा में सौंदर्य आ गया है । सहोच्चरित शब्द योजना झंकार पैदा कर देती है तथा भावों को आगे बढ़ाने में सहायक होती है ।

1- इश्कनामा - रघुनाथ बसंत वर्णन - पद्य. [illegible] [handwritten annotation above: [illegible]]
2- रीति शृंगार - रघुनाथ पृ० १०८
3- रसिक मोहन रघुनाथ पद्य सं० ८३ [illegible]

'ओबरीन,' 'दोबरीन,' 'तहखाने' 'खसखाने' ग्रीष्म के चित्र को खींचते हैं ।

बेनीप्रवीनकी शैली बेनी प्रवीन के काव्य में सरस प्रवाह एवं गहरी अनुभूति मिलती है । काव्य मर्मस्पर्शी भावों से भरा है । चित्र सजीव है ।

> छहरै सिर पै छवि मोरपखा उन की नथ के मुकता थहरै ।
> फहरै पियरो पट बेनी इतै उन की चुनरी के भबा भहरै ।
> रस रंग भिरे उभिरे है तमाल दोऊ रस ख्याल चहै लहरै ।[१]

यह चित्र राधा कृष्ण का है । इस में एक रेखा मोर पंख की है तो एक नथ के मोतियों की है । इस तरह दोनों के चित्र एक ही चित्रपट पर खींचे गए हैं । एक चित्र नायिका का है जिस में वह पति की प्रतीक्षा में झुकी है । इस में पहली रेखा विरहिणी नायिका की है । दूसरी रेखा आंसू भरी आंख में बढ़ी है ।— तीसरी रेखा पति के आने की है । चौथी में उस का उत्साह चित्रित है जैसे 'उदोत भये रवि के छवि प्रात लसै पुरइन में बाढ़ी'[२] चित्र में रंग के मेल से सौंदर्य की वृद्धि हो जाती है । प्रत्येक रेखा श्वेत रंग की खींची है । श्वेत वस्त्र पहने नायिका, चांदनी रात, सिकता की झलक, विमल जल मालती की माला सब एक ही रंग की रेखा है और सब मिलकर शुक्लाभिसारिका का चित्र प्रस्तुत करती है ।

भाव व्यंजना तथा उक्ति वैचित्र्य काव्य को ललित बना देते हैं । नायिका पति की प्रतीक्षा में बैठी है । सखी ने आकर कहा कि पति आ गए हैं । यह वचन उस के लिए अमृत के समान है ।

> बेहि जीवन की न रही कछु आस सजीवन ही सो निचोरि गई ।[३]

उक्ति वैचित्र्य भी इस कथन में मिलता है । विरहिणी कहती है सीप के मोती हमारे आंसू ही हैं । 'उपजै मुकुता नहिं सीपन ते, हम ही आंखियां भरि डारती हैं' ।[४]

१- सुंदरी तिलक - भारतेन्दु ध्यान मंगल - बेनी प्रवीन पद ६.१
२- ______ - प्रौढ़ा आगत पतिका बेनी प्रवीन - पद्य. प्र.सं. १५०।२४ - नवनीत सं.
३-४ नवरस तरंग पद सं० पृ० सं० १९१।२९, ४७।३

भाषा - इन की भाषा साफ सुथरी तथा चलती हुई है । राम चन्द्र शुक्ल जी ने अपने इतिहास में लिखा है, बहुतों की भाषा की तरह लद्धड़ नहीं है ।[1] भाषा में माधुर्य है । अनुप्रास के कारण सौंदर्य बढ़ गया है । नायिका सजी धजकर प्रसन्न हो रही है । उस का वर्णन है 'हेरि हेरि फेरि फेरि बाँधि बाँधि हँसि हँसि बिहँसि बलाय लेति लाय लेति छाती में'।[2]

चमत्कार प्रदर्शन के लिए पूरे पद में अनुप्रास का सौंदर्य मिलता है । 'चुन्नी से चरन चाँदनी में चमकत चकचौंधित चकोर चिनगी चीचोच चूनरी चामीकर चूते चाहि चौगुनी चमक चोली चंपक बरन चोली चुभी चंचु उनरी चंद्र-मुख चन्द्रिका ते चकई चपति चित चोपत प्रवीन बेनी चैत-चंद चूनरी चुई सी चरति चपला सी चै चपल चरु, चंचल चितौनि चटकीली चारु चूनरी'[3]। शब्दों की आवृत्ति से भाषा गतिशील हो गई है । 'फूलन सो फूलन', 'जुही में है जुही में', 'चाँदनी न चाँदनी' । सन्धि-योग विग्रह से भाषा में प्रवाह आता है । 'छूटत फुहार न फुहारन', 'माली वनमाली है न,' 'जहाँ पियाजाहा है तहाँई पिया जाहत है' । इसी तरह समोन्वित शब्द योजना से भाषा में झंकार आ गई है । 'झेलनि', 'हँसनि बिहँसनि', 'घहराती घटा', 'लहराती', 'फहराती समीर' 'महराती सुगन्ध', 'घहराती जुही फहराती जुही' आदि ऐसे शब्द भरे पड़े हैं । वर्षा वर्णन में विशेषकर ऐसे शब्दों से सरसता आ गई है । मुहावरे का प्रयोग हुआ है । 'बरसत मेह का भरत फफोला है ।'[4]

पद्माकर की शैली शृंगार परम्परा को नवीन भावनाओं से भरकर प्रतिष्ठित करने वालों में पद्माकर प्रतिभा सम्पन्न कवि हैं । इन्होंने अपने काव्य में सुभग योजना-

---

१- राम चन्द्र शुक्ल का इतिहास पृ० ३६३

२- नव-रस-तरंग - बेनी प्रवीन पद्य सं. पृ. सं. १८३।२८

३- नवरस तरंग पद सं० पृ० सं० २१४

४- नवरस तरंग पद सं० पृ० सं० ३३९।५९

और उक्त योजना द्वारा चित्रों को सजाया । कहीं कहीं तो साधारण भावों को अंकित किया । भाव चित्रण में हृदय की सच्ची स्वाभाविक प्रेरणा से काम लिया । सजीव चित्र काव्य में मिलते हैं । नायिका सोचती है -

पीतम के संग ही उमगि उड़ि जैबो कों न छुती अंग अंगनि परंब पखियाँ दई ।

कीजै कहा राम स्याम आनन बिलोकिबे को बिरचि बिरंचि न अनंत अखियाँ दई।[1]

इस में पंख पाने की इच्छा तथा अनंत आँखों की इच्छा प्रेमिका के लिए कितनी स्वाभाविक है । स्याम रंग में रंगने के बाद नायिका की यह अनुभूति कितनी सुन्दर है कि स्याम रंग में अपने को 'बोरत तौ बोरयो पै निबोरत बनै नहीं'।[2] चित्रों में अन्तिम रेखा भाव की चरम सीमा पर पहुंच जाती है इस से चित्र स्पष्ट हो जाता है ।

एक पगु भीतर सु एक देहरी पै धरे
एक कर कंज, एक कर है किवार पर ।[3]

इस में इसी रेखा से चित्र खिंच गया । वर्षा वर्णन, सावन के झूले और होली के चित्र बड़े सजीव हैं ।

चंचला चमाकें चहुं ओरन तें चाह-भरी, चरजि गई ती फेरि चरजन लागी री ।
कहै 'पद्माकर' लवंगन की लोनी लता, लरजि गई ती फेरि लरजन लागी री ।
कैसे धरौं धीर वीर त्रिविध समीरै तन, तरजि गई तो फेरि तरजन लागी री ।
घुमड़ि घुमड़ि घटा घन की घनेरी अबै, गरजि गई तो फेरि गरजन लागी री ।[4]

१- जगद्विनोद - पद्माकर पद सं० पृ० सं० ५५।९६
२- " " " ७८।१०१
३- पद्माकर पंचामृत जगद्विनोद पद सं० पृ० सं० १२२।१०९
४- " " " ३८४।१५४

इस में चंचला की चमक, अनंग की लता, त्रिविध समीर, घुमड़ी घटा ये ही रेखायें हैं पर शब्दों से उसे सजाया है । कहीं कहीं गतिशील चित्र भी मिलते हैं । घूंघट का चित्र 'झिलमिल झालर की भूमि लौं झुलत जात', 'मुख चूमन डुलत जात', 'घांघरे झकोरनि' आदि से चंचल चित्र को चित्र पट पर उतारा है । अतिशयोक्ति के द्वारा नायिका का रूप सौंदर्य खींचा है । 'बारन के भार सुकुमारि को लचत लंक, गात गड़ि जायनि बिछौना मखमल के' चित्र की मुख्य रेखायें हैं । विरह वर्णन में उक्ति वैचित्र्य से काम लिया है । विरहिणी को बसन्त ऋतु दुखदाई होती है यह परम्परागत भाव है । इस को व्यक्त करने के लिए कवि ने नया ढंग अपनाया है । 'किंशुक गुलाब कचनार औ अनारन की डारिन पै डोलत अंगारन के पुंज हैं'। नायिका को यह सब अंगार के समान लगते हैं उसी भावना को व्यक्त किया है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा चलती हुई स्वाभाविक और साफ सुथरी है । संयत रूप में अनुप्रास का प्रयोग है । अनुप्रास से भाषा में भाव तरंगित होते चलते हैं । प्रकृति के वर्णन में तो विशेषकर अनुप्रास का प्रयोग किया है बसंत ऋतु का चित्र अनुप्रास से स्पष्ट हो गया है ।

कूलन में केलिन कछारन में कुंजन में क्यारिन में कलित कलीन किलकंत है

- - - - - - -

- - - - - - -

बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में बनन में बागन में बगर्यो बसंत है

इस में बसंत का चित्र शब्द योजना द्वारा चित्रित है ।

ऐसे ही 'होली के वर्णन में' गुलाल पै गुलाल तेहि गुलाल पर, मंद लाल लाल मंद लाल पै गुलाल बरसत है', वर्षा का-'बद्दलनि बुंदनि बिलोकि बकुलान बाग बागलनि बेलिन बहार बरसा की है' झूला-'कैंहै पद्माकर झमक की झकोरन सों चारों ओर चोर किंकनीन की मचति है'। कदम, अनार, आम, अगर, अशोक, थोक, लतनि समेत लोने लोने लगि भूमि रहे । फूलि रहे, फलि रहे, फबि रहे, फैलि रहे, झपि रहे, झलि रहे, झुकि रहे झूमि रहे ।

१-२- पद्माकर-पंचामृत - पद सं. पृ. सं. २२३।१३२, ११२।८४
३- जगद्विनोद्‌ काव्य-संग्रह-पद्माकर - पद सं. पृ. सं. ९८।१९
४ - पद्माकर- पंचामृत पद सं. पृ. सं. ३७८।१५६

शब्द की आवृत्ति, समोच्चरित शब्द योजना द्वारा भाषा में झंकार उत्पन्न होती है । 'लमकि लमकि', 'चमकि चमकि', 'झुकि झुकि', 'झूमि झूमि', 'झिलि झिलि', 'मेलि मेलि', 'झमकि झमकि', 'दमकि दमकि' आदि शब्दों से भाषा सजी हुई है । 'तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै', 'हरी हुलसी मिलहैं' से काव्य अंकृत है । भाषा ब्रज है, पर वीर भावों के वर्णन में अकड़ती और कड़कती हुई भाषा है । 'जगुग', 'बगुग', 'उबगुग', 'बगुग' ऐसे शब्दों का प्रयोग है । भाषा में भावों के अनुसार अनेक रूपकता पाई जाती है ।

ग्वाल कवि की शैली ग्वाल कवि में भाव तथा अभिव्यक्ति की परम्परा के और कवियों की अपेक्षा कमी है पर वाग्विदग्धता अच्छी है । वस्तु वर्णन में सामान जुटाने में चतुर हैं । शब्दों से चित्र सज गए हैं ।

गल बाहीं सखान के डारि गरे करै मीठी महाबत रावनि की
झलकै चिकनी झलकै रुख में झलकै दुरबीन की घाव गिरी
कवि ग्वाल फिरावत फूल छरी फिर फंदन में ससराव गिरी

इस में गले में बाहें डाले, चिकनी झलकें, फूल की छड़ी घुमाते हुए चित्र की रेखाएं हैं । इसमें भाव स्पष्ट है ।

नायिका के रूप वर्णन के चित्र की रेखाएं सजीव हैं ।

हीरा के आरस पर हीरा के परस बंद
रजत की सेज दूध पारस सी ह्वै रही ।
सेत सेत वाह के चंदोवा चहुंओर तने
सेत आबला तें सुखमा की भीर ज्यौं रही ।
ग्वाल कवि मोतिन की झालरैं की झिलमिल
झिलमिल अखीन अनंत छबि ह्वै रही ।
सरद की चटकीली चांदनी की ज्योति मिली
प्यारी मुख चारु चांदनी से एक ह्वै रही ।[2]

1- नख-शिख वर्णन - कवि ग्वाल पद सं. प. पृ. ५११८
2- ग्वाल का ऋतु वर्णन - भारतजीवन प्रेस काशी पद सं. पृ. सं. ४६।१८

'इस में हीरा की फर्श, रजत की सेज, चंदोवा, श्वेत बादल, मोतियों की झालर, शरद की चांदनी तथा प्यारी का मुख चित्र की रेखाएं हैं । कहीं कहीं भाव व्यंजना भी सुन्दर है । शूम और दाता के वर्णन में कहा है सूमन की नाव जल पै प्यारी डूब जात दातन की नवका पहाड़ चढ़ि जात है'।[१] उत्प्रेक्षा द्वारा भावों को सजाया है ।

तूल के पहल हैं कि मंजु मखमल हैं कि मारवन महल है कि अमल को ।

भाषा - इन की भाषा व्यवस्थित और चलती हुई है । अनुप्रास के द्वारा ऋतु वर्णन किया है । इस से भाव सूक्ष्म होते हुए भी चित्र सा खड़ा हो जाता है । पद में शब्द झुलकते हुए से जान पड़ते हैं । निरर्थक शब्दों का समावेश भी सार्थक शब्दों के साथ सजीव हो जाता है ।

ग्रीष्म का वर्णन अनुप्रास तथा शब्दों की आवृत्ति से सजीव हो गया है । 'ग्रीषम की गजब धुकी है धूप धाम धाम, गरमी झुकी है जाम जाम अति तापनी'। अंत में 'जब पियो तब पियो अब पियो फेर अब पीवत हूं पीवत बुझै न प्यास पापनी'।[२] विरह में वर्षा का चित्र इन शब्दों में है -

घूम आये झूम आये दूम आये भूमि आये,
भूमि भूमि आये घन घंघोर धमाके सों ।[३]

झूम झूम चलत चहूंधा घन घूम घूम
दूम दूम छकी छकी धूम धाम से दिखात हैं ।
तूल कैसे पहल पहल पर उठे आवें,
महल महल पर सहल झुकात है , ।[४]

नैनों का वर्णन अनुप्रास में चित्रित है ।

१- गुवाल रत्नावली - कवि किंकर पद सं० ७४ , ११२

२- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास पृ० ३८३

३- रीति शृंगार - गुवाल पृ० सं० १२९ ,

४- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास पृ० सं० ३८३

गुवाल कवि आन भरे, सान भरे, श्याम भरे,
स्यान भरे, कछु अलसान भरे भाल के ।
लाज भरे, लाग भरे, लोक भरे, लाभ भरे,
लाली भरे, लाड़ भरे लोचन हैं लाल के ।[1]

शब्दों का चमत्कार पाया जाता है, उल्का, उछल्का आदि।
इन की भाषा में ठेठ पूर्वी हिन्दी, गुजराती और पंजाबी मिलती है । 'जाकी खूब खूबी खूब खूबन की खूबी यहाँ ताकी खूब खूबी नभ गाइ' आदि ऐसे शब्दों का प्रयोग है । राम चंद्र शुक्ल जी का कहना है कि इन की कविता बाजारी है ।[2]

प्रतापसाहि की शैली प्रताप साहि के व्यंग को काव्य का जीव मानने के कारण इन का विशिष्ट स्थान है । अधिक अनुभूति न होते हुए भी कल्पना के कारण अभिव्यंजना सुन्दर हुई है । इन के चित्र की रेखाएं स्पष्ट हैं । अन्तिम रेखा चरमोत्कर्ष को अंकित करते हुए भी और सब रेखाएं व्यर्थ नहीं हैं । चित्र में पहली रेखा है कि नायिका किसी की बात नहीं मानती । दूसरी रेखा जल में नए नए खेल खेलती है । तीसरी में बिना सखियों के रहती है । चौथी रेखा में ही सब भाव स्पष्ट हो जाते हैं ।

'कौन परी यह बानि अरी नित नीर भरी गगरी ढरकावै'। घड़े के पानी में अपने नेत्रों का प्रतिबिंब देखकर मछली का भ्रम होता है । इस से वह जल फेंक देती है । कवि परम्परा के अनुसार कहना चाहता है कि नायिका के नेत्र मीन के समान हैं, जिस को कि उस ने इस ढंग से कहा है । ऐसे ही एक चित्र में नायिका गगरी में प्रतिबिंब देखकर चकित हो जाती है । 'आजु सरोवर में सजनी जल भीतर पंकज फूल निहारे'।[3]

१- रीति शृंगार - गुवाल पृ० सं० २२८

२- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३७५

३-४ रीति शृंगार प्रताप साहि पृ० सं० २१९ ,२१८

जल के भीतर कमल खिला दिखाई देता है । कोमलता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है । 'घाखिये ना इन फूलन की पंखुरी कहुं अंगनि में गड़ि जैहै '।[1] परम्परा के अनुसार श्वेत रंग का वर्णन भी किया है ।

चांदनी महल फैल्यो चांदनी फरस सेज चांदनी बिछाय
छवि चांदनी रिते रही ।[2]

<u>भाषा</u> - इन की भाषा एक समान चलती है । न कहीं भाषा में आडम्बर है और न तोड़ मरोड़ । भाषा में कहीं शिथिलता नहीं है । अनुप्रास योजना भी रूचिकर है । ग्रीष्म का वर्णन करने के लिए इन शब्दों का प्रयोग है । 'छावत गगन धूर धावत वधात आवे चाप चढ़ो ग्रीष्म गर्यंद मतवारो सों '।[3] अनुप्रास से भाषा अश्लील हो गई है ।

अंग अंग भूषन विभूषन विरंचि ज्योति[4]
जोवन जवाहिर की जाहिर जमाई है तैं।
चढ़ चढ़े जोवा चारू चंदन अरगजा
औ अंगराग हेत कल केसर मंगाई है तैं ।

वर्षा के वर्णन में शब्दों के द्वारा चित्र खींचा है ।

- - - - - - -

कोकिल कपोत शुक चातक चकोर मोर[5]
ठौर ठौर कुंजन में बैठी सब छाय हैरी।
जमुना के कूल औ कदंबन की डारन पै,
चारो ओर घोर सोर मोरन मचाय हैरी।

- - - - - - - -

समोच्चारित शब्द योजना से झंकार पैदा हो गई है ।

चकी सी छकी सी कोउ लागि टकटकी सी
सो कोउ चित्र लिखी सी भई नारि बरसाने की ।

1-2 - रीति शृंगार - प्रतापसाहि - पृ. २२०, २२०
3 - हजारा - पं. ह. - पृ. ह. १२।३५८
4-5 रीतिसंग्रह - पृ. २२२, २२५

'कहरत केल, हहरत है दिगीस दल, लहरत सिंधु, ठहरत घन देस के'।

आलम कवि की शैली आलम प्रेमी कवि हैं । अपनी तरंग में आकर रचना की है इसी से काव्य तीव्र अनुभूतियों से भरा हुआ है । इन के चित्र में कवि के हृदय की तन्मयता झलकती है । इन के चित्र अधिकतर भावात्मक हैं । नायिका के रूप सौंदर्य का चित्र खींचा है ।

गोरे आंक थोरे लांक थोरी बैस भोरी मति
घरी घरी और छबि अंग अंग में जगी ।
कहि कवि आलम छलक नैन नैन भई
मोहनी सुनत बैन मन मोहनै ठगी ।

तेरोई मुखारबिंद निंदे अरबिंदै प्यारी
उपमा को कहै ऐसी कौन जिय में लगी ।
तेई चापि गई चंद्रिकाऊ छपि गई छबि
देख भोर को सो चांद भयो फीकी चांदनी लगी ।[१]

इस में पहली रेखा गोरे अंगों की है । दूसरी में नैनों और बचनों का वर्णन है । तीसरी में मुखारबिंद की रेखा है । अन्तिम रेखा चरम सीमा की है जिस में रूप सौंदर्य में चांदनी भी फीकी लगती है । कहीं कहीं भाव व्यंजना अनोखी है । 'काहे को समुद्र मथि देवता ने श्रम कीन्हों चौदह रतन तिय नैनन में चाह हैं'। नैनों की चंचलता के वर्णन में उक्ति वैचित्र्य से काम लिया है ।

पानिप सों मोती जैसे अहरात भार भर तैसेई चपल नैन थिरकति थोरी है ।

यशोदा के विरह वर्णन में उपमा बड़ी सुन्दर है । कवि का प्रेम गैया का प्रेम, चिड़िया का प्रेम अधिक ऊँचा है ऐसी भावना व्यक्त की है ।[४]

१- आलम केलि पद सं० २१ पृ. १०

२- " २६ पृ. १५

३- " ८६ पृ. ३७

४- " १२६ पृ. ५५

इनकी उत्प्रेक्षायें सुन्दर हैं । शब्द वैचित्र्य तथा अनुप्रास की प्रवृत्ति सर्वत्र है । शब्द चित्र भी भरे पड़े हैं ।

> केसू कुसुमरे अब अरे मानो कबैला धरे
>
> कबैल खाई कोयल करेजो भूजि जात है ।

इस में विरहिणी की भावना व्यक्त है । बसंत का वर्णन परम्परागत ही है ।

> जा थल कीन्हें बिहार अनेकन ता थल कांकरी बैठि चुन्यो करै ।
>
> जा रस नाति करी बहु बातन ता रसना सो चरित्र गुन्यो करै ।
>
> आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करै ।
>
> नैनन में जो सदा रहते तिन की अब कान कहानी सुन्यो करै ।[1]

इस में प्रेम की तन्मयता दृष्टिगत होती है । अनुप्रास के सहारे चित्र खींचे हैं । नेत्रों के सौंदर्य का वर्णन करना है । उसे इस उक्ति में कहते हैं ।

> प्रेम रंग रंगे जगमगे जागे जामिनी के
>
> जोबन की जोति जगि जोर उमगत है ।
>
> मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत हैं झुकत है
>
> झुकि झुकि झहूंपि उघरत हैं ।
>
> कहै कवि आलम निकाई इन नैनन की
>
> पंखुरी पदुम पै भंवर थिरकत है ।
>
> चाहत है उड़िबे को देखत मयंक मुख जानत है
>
> रैनि ताते ताही में रहत है ।[2]

इस में पहली दो रेखायें अनुप्रास द्वारा खींची हैं । नयनों की चंचलता का वर्णन है पर अन्तिम रेखा भावात्मक है । कवि की नई उक्ति है कि नेत्रों में पुतली रूपी भ्रमर उड़ना चाहते हुए भी नहीं उड़ता क्यों कि वह सोच रहा

1- रीति शृंगार- आलम और शेख- पृ. ८०

2- आलम और शेख - कविता कौमुदी भाग १ पृ. ३४५

है कि रात है । कमल रूपी नेत्रों की पंखुड़ियों में भंवर का ठिरकना चित्र की शोभा को बढ़ा रहा है ।

भाषा - भाषा अनुप्रास, शब्दों की आवृत्ति, समोच्चरित शब्द योजना से सजी है । अनुप्रास का उदाहरण नीचे दे रहे हैं :-

'उपाकर उचे छिन छीन भई उपा ही टी आ ठाढ़ु है छबीली', 'किलक कटि किंकिनि, शब्दों की आवृति ढीली ढीली हगै', 'गाढ़ी गाढ़ी भुजनि', 'लाल लाललोचन' आदि मिलते हैं । समोच्चरित शब्द योजना - 'रस बरसात, गरसात, अरसात गात,' 'चौकति चकति पछिताति मुरछति सम', 'हरबरे गहबरे गरे जरी सी औ थकी सी है'[1] 'चितवनि चकी सी है छली है कि छली है कि काहू कछु दीनी है'। 'पीपर तिया ते भये पीपर के पात हैं', मुहावरे का प्रयोग है । कहीं शब्द चमत्कार भी है ।

'पटकत मटुकी झटकि झटकत पट, लिपट छटकि फूटि लट सु लटकि के', भाषा परिमार्जित एवं सुव्यवस्थित है । कहीं कहीं उर्दू का प्रयोग है ।

घनानन्द की शैली

शृंगारी कवियों की परम्परा दो धाराओं में उन्मुख हुई - एक तो रीति की धारा दूसरी स्वच्छन्द धारा । मतिराम, देव, पद्माकर आदि रीति की धारा को आगे बढ़ाने वाले रहे पर घनानन्द, आलम, बोधा आदि स्वच्छन्द काव्य को । स्वच्छन्द काव्य की धारा भी अखंड रूप से संस्कृत साहित्य से बहती चली आ रही है । कालिदास के काव्य में इस के सर्वत्र दर्शन होते हैं । कालिदास भी भाव प्रधान कवि थे । इन्हों ने जंगलों की खुली प्रकृति में प्रणय का प्रसार किया है । हाल की गाथा सप्तशती तो इस परम्परा का बृहद् संग्रह ही है । इस धारा की मुख्य विशेषता है कि कवि अपने मनोयोगों का सर्वत्र चित्रण करते हैं । प्रेम भाव की अनुभूति ही मुख्य विषय है । शरीर संयोग की ओर ध्यान नहीं गया, इसी से अश्लीलता कहीं नहीं है वरन् मानस संसर्ग ही उन की निधि है । हृदय की

१ - रीति शृंगार - आलम शेख - पृ० ८८

भावनाओं को प्रगट करने में इतने लगे रहे कि कृत्रिम रूप अलंकारादि की ओर ध्यान ही नहीं गया । भावों के आगे बुद्धि का स्थान नगण्य सा है । इन की शैली की मुख्य विशेषता आत्म-निवेदन ही है । इन के वर्णनों में विरह में भी उन्मुक्तता अधिक बढ़ जाती है ।

घनानन्द की शैली वक्रतापूर्ण है । लक्षणा के सहारे भावों को तीव्र बनाया है । इस में अलंकारों के कारण भाषा नहीं वरन् भाव संश्लिष्ट हो गए हैं । सुजान का वधिक से और विरही का पक्षी से रूपक बांध कर क्रिया साम्य द्वारा भावों को चित्रित किया है

अधिक बधिक तें सुजान! रीति रावरी है ,
कपट-चुगी दै फिरि निपट करी बुरी ।
गुननि पकरि लै, निपांख करि छोरि देहु,
मरहिंन जीयें, महा विषम दया- छुरी ।
हौं न जानी, कौन धौं है याने सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यों परति प्यारे अंतर-कथा दुरी ।
कैसे आसा-द्रुम पै बसेरो लहै प्रान-खग
बनक निकाई घन आनंद नई जुरी ।[1]

पर ऐसे चित्रण कम ही मिलते हैं । अधिकतर तो सरल भाषा में मार्मिक अभिव्यक्ति ही हुई है । विरही के दुख के कारण बिना बादलों के ही पानी बरसने लगता है । न तो कहीं बादलों की कौंध है और न तपन की कमी है ।

१- घनानन्द कवित्त पद सं० ६६ पृ० ४८

घनआनंद जीवन मूल सुजान की कौंधनि हूं न कहूं, दरसैं ।
सु न जानिये धौं कित छाय रहे, दृग-चातिक-प्रान तपे तरसैं ।
बिन पावस तो, इन्हें थ्यावस हो न, सु क्यों करिये अब सो परसैं ।
बदरा बरसै रितु मैं घिरिकै नित ही अंखियां उघरी बरसैं ।[1]

इस में हृदय पर मार्मिक ठेस लगती है । हृदय को तन्मय करने वाला काव्य ही इन की शैली की विशेषता है ।इन के काव्य में मानव नहीं वरन् मानव की प्रकृति, भावनाओं तथा मानसिक स्थिति का चित्रण है । रूप वर्णन संयोग तथा वियोग में नायिका के हृदय की झलक चित्रित है । इन की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी भावों के चित्रण में हो रही है । नायिका के शीघ्रता से परिवर्तन होने वाले छोटे से छोटे भावों का भी चित्रण किया है । नायिका को प्रियतम की याद आ रही है । अंक भरौं, चकि चौंकि परौं, कबहूंक लरौं, छिन ही मैं मनाऊं ।
देखि रहौं, अनदेखे कहौं, दुख सोच सहौं सु लहौं सुधि पाऊं ।
जानि तिहारी सौं मेरी दसा यह को समुझै अरु काहि सुनाऊं ।
यौं घनआनंद रैन-दिना न बिनीतत, जानियै कैसे बिताऊं ।[2]

दिन रात विरहिणी का कैसे बीत रहा है इस का चित्र है । अन्तर्दशाओं का चित्रण काव्य में जगह जगह पर मिलता है । घनआनंद के दर्शन के बाद चित्र में मिलन की इच्छा होती है उसी का चित्रण है । मिलन की बड़ी अटपटी दशा है ।

'धूम को न धरै, गात सीरो परै ज्यौं ज्यौं धरै, ढरै नैन नीर बीर, हरै मति आह की'[3] दाह की आग में मानसिक अन्तर्दशाओं का चित्रण है । घनानन्द के कवित्त में उक्ति चमत्कार कहीं कहीं शाब्दिक है और कहीं कहीं अनुभूति के साथ ।

१- घनआनंद कवित्त पद सं० १७ पृ० ५

२- " पद सं०१५०, पृ० ७५

३- " पद सं० १८०, पृ० १००

शाब्दिक चमत्कार अलंकारों द्वारा प्रयुक्त है । 'तब हार पहार से लागत है अब आनि के बीच पहार परे ।'[1] में श्लेष के द्वारा भावों की तीव्रता भी चित्रित की है तथा चमत्कार भी । कहीं कहीं अनुभूति की असाधारणता दिखाई देती है । विरहिणी की दशा को देखकर प्रकृति भी भावुक हो गई है ।

बूँदैं न परति मेरे जान जान प्यारी! तेरे
बिरही कौं हेरि मेघ आंसुनि झर्यौ करै ।[2]

ऐसे ही पवन से विरहिणी प्रार्थना करती है ।

बिरह-बिथाहि मूरि, आंखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायन की हा हा! नेकु आनि दै ।[3]

इन के कवित्त की कुछ और विशेषतायें भी हैं । इन के कवित्त में प्रत्येक पंक्ति समान बल की होती है । इन्हों ने नाम का प्रयोग विशेष सौंदर्य के साथ किया है तथा प्रेम कथा को अपने आप कहा है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा विशुद्ध ब्रज है । दूसरी भाषा के शब्दों का प्रयोग नहीं किया है । ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग निरन्तर है । शब्दावली सर्वत्र समान है 'रस निचुरत मीठी मुसक्यानि' में 'निचुरत' शब्द अधिक सार्थक है । मीठी मुसकान में रस निकलता है इस से भाव यह निकलता है कि वह प्रिय है तथा वह लज्जावती भी है । 'ये बावरी ह्वै अररात परी' में नैनों का प्रियतम को देखने के लिए टूट पड़ना ध्वनित करता है । शब्दों की आवृत्ति के द्वारा भाषा में ध्वनि बढ़ गई है । 'पुरवाई पौन' के लिए, 'लहकि लहकि'[4], 'तावरे तचै' के लिए 'दहकि दहकि', 'बदरा' 'बहकि बहकि'

1- घनानन्द कवित्त पद सं० पृ० सं० १३।७
2- " ५७।३४
3- " ७०।४२
4- " ४६३।२१६

'चपला' 'चहकि चहकि' तथा 'प्रसून वास' के लिए 'महकि महकि' शब्दों से भावों को व्यक्त किया है । समुच्चरित शब्द योजना द्वारा भावों को तीव्र किया है । 'दरसी परसी बरसी सरसी मन लैहू गयो पै बसो मन ही' ।[१]

मुहावरे तथा कहावतों में भाषा की अर्थद्योतिनी शक्ति बढ़ती है । भावनाओं की तीव्रता मुहावरों के कारण बढ़ जाती है । मन की स्थिति का चित्र 'मेरो मन भयो भटू पात है बघूरे को' में ज्यादा स्पष्ट हो जाती है ।

बोधा की शैली — बोधा की शैली की विशेषता है उन के व्यक्तिगत भावों के चित्रण की । उन के भाव बिना परिष्कृत किये हुए ही व्यक्त हुये हैं । जैसा अनुभव किया वैसा कह दिया । सब जगह आत्माभिव्यक्ति की ही प्रवृत्ति दिखाई देती है । इन्हों ने अपनी अनुभूति से व्यक्त किया है कि प्रेम के पंथ पर चलना बहुत कठिन है ।

अति छीन मृनाल के तारहु ते, तेहि ऊपर पांव दै आवनो है ।
सुई बेह ते द्वार सकी न तहां, परतीति को टांडो लदावनो है ।
कवि बोधा अनी घनी नेजहु ते, चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है ।
यह प्रेम को पंथ कराल महां, तरवार की धार पै धावनो है ।[२]

इस में साधारण रूप से अपने भावों को व्यक्त किया है । प्रेम की पीड़ा अनुभव की है । इसी से उस की अन्तर्वेदनाओं के चित्रण में सफल हुए हैं । मोहन की बांसुरी से नायिका प्रभावित हुई है उसी का चित्रण करते हैं

ता दिन ते हौं जकी सी थकी ~~चकचौंधी~~ चकचौंधी
फिरौं नहिं धीरज ही धरौं

कहीं कहीं इन की अभिव्यक्ति साधारण कोटि की है । कोयल की बोली को कुठार सी बानी कहा है । कहते हैं

ठौर कुठौर बियोगिनि के ~~कबहूं~~ कहूँ कुहरि देहन में लगि जैहै ।[४] उपमा भी

१- घनानन्द कवित्त पद सं० पृ० सं० १२५।७५
२- रीति शृंगार इश्कनामा पृ० १९२ — बोधा - पृ.१५
३-४ इश्कनामा बोधा कृत द्वितीय खंड पद सं० ., ० पृ.१०

साधारण है भाल में रोरी की बिंदी लगी है हसी में लगी मनो बीरबहूटी । नायिका कहती है तुम्हारे बिना हमें फुटका अरु फेनी जलेबी आदि कुछ नहीं पसंद है । प्रकृति के वर्णन में सब फूलों के नाम गिना दिए हैं ।

सेवती जाही जुही कचनार अनार करील कनैर निहारी ।
पांडर मौर सिरी मचकुंद कदंब ली शोभा लखी फुलवारी ।[1]

<u>भाषा</u> - इन की भाषा स्वभाविक रूप में है । अलंकारों का विशेष आग्रह नहीं है । साधारण भाव है वैसी ही साधारण भाषा है । शब्दों की आवृत्ति कहीं कहीं मिलती है । 'मुख बोलै न हेरै हंसै न लखै ना कहै दरवाजे कहै पछू'। सब साधारण कोटि का है ।

<u>ठाकुर कवि की शैली</u> ठाकुर की शैली की विशेषता है आप बीती का चित्रण । साधारण सी अनुभूति, कृत्रिमताओं से हीन तथा सरलता । यह हैं इन के काव्य के गुण । साधारण बोलचाल की भाषा में अभिव्यक्ति हुई है । अन्य शृंगारी कवियों की तरह काव्य का बाह्य रूप है पर उस का प्रयोग भिन्न है । सब से बड़ी विशेषता तो है कि इन की रूचि लोक की ओर उन्मुख थी । इसी से इन्होंने राज दरबारों के अतिरिक्त जगत का वर्णन किया है । जीवन के साधारण प्रसंगों में व्यक्तिगत अनुभूति के चित्र खींचे हैं ।

चिक कान जो दूसरी बात सुनै, अब एक ही रंग रह्यो मिलि डोरी ।
दूसरो नाम कढ़ात कहूँ, रसना जो कहूँ तो हलाहल बोरो ।
ठाकुर यों कहती ब्रज बाल, सो ह्यां अभिमान को भाव है थोरो !
ज्यों तू के अँखियाँ परि जांय, जो सांवरो छांड़ि तकै तन गोरो ।[2]

इन के काव्य में सहन शीलता का विशेष वर्णन है । गोपी कृष्ण के प्रेम में इतनी मगन है कि वह और कुछ नहीं सुनना चाहती । हृदय की

१- इश्कनामा बोधा कृत चौथा अध्याय पद सं० १६ पृ. २७

२- रीति शृंगार ठाकुर पृ० २०१

अन्तर्दशाओं का भी चित्रण है ।

> बाँको सो बको सो कहूं बक सो बको सो कहूं
>
> पाइन थक्यो सो भाँति भाँतिन तिहारी है ।[१]

इन में अनुभूति का असाधारणता पाई जाती है । इस से चमत्कार प्रदर्शन भी काव्य में मिलता है ।

> घन को निहारै तब बारै होत आयुन पै[२]
>
> बीजुरी निहारै तब बारै होत तो पै री ।

भाषा - भाषा में शब्द चयन उपयुक्त बन पड़ा है । वाक्य रचना सरल और स्वाभाविक है । कुछ संस्कृत और उर्दू शब्दों का प्रयोग है । ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग होता है । वर्षा वर्णन में 'घन' के लिए 'घहरान', अंग 'कहरान', 'कैकी कहरान' आदि शब्दों का प्रयोग है । मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग इन की अपनी विशेषता है । स्वभाविक मुहावरों का प्रयोग है । 'देखति ही ब्रज की कुराइन भयो यों कहा खेत की कहे ते हरियान की समकती' ।

समुच्चरित शब्द योजना से भाषा में गति आ गई है । 'दौरि दौरि दमकि दमकि छुरि दामिनि यों दुंद देत क्यहूं विसान बरसत है' । शब्दों की आवृत्ति से भाषा में चमत्कार प्रदर्शन किया, 'छटपट छारी देखि घटघट बारी बीज मटमट रावरे अवश अटपट है' ।

पजनेस कवि की शैली पजनेस कवि की भाव योजना परम्परा के अनुसार है । फुटकल कवि अधिकतर अंग वर्णन के मिलते हैं । अलंकारों के सहारे अंग का चित्र खींचा है इस से अधिकतर चित्र उत्प्रेक्षा तथा उपमाओं से भरे पड़े हैं । बेंदी का वर्णन किया है

> चयन अबीरन की उड़त घटा सी तामें
>
> विज्जुन घटा सी बेंदी चमकत भाल की ।[३]

१-२ रीति शृंगार ठाकुर पृ० २०१, २०२

३- पजनेस प्रकाश पद सं० ४७ पृ. से. २०

मांग के वर्णन में

कुंदन जरी सी मांग मोतिन भरी सी रूप

राजत परी सी बाल बैठी कुरसी पर ।[१]

रूप वर्णन करते समय आभा उफनी परी सी है में भाव व्यंजना उच्च श्रेणी की है । नायिका में चमक इतनी अधिक है कि सम्हालेनै नहीं सम्हली । यह अतिशयोक्ति की सौंदर्य है । नायिका की उपमा कनक छड़ी से दी है ।

डिठौना का वर्णन किया है उत्प्रेक्षा के द्वारा ।

कैधौं भौंरि परयो है प्रिया के रूप-सागर में,

कैधौं तन पजनेस भासत गोपाल की ।

कैधौं ससि-अंक में कलंक बनिता के संग

कैधौं मुख-पंकज पै बैठी अलि दू-बालकी ।[२]

बसंत वर्णन करते समय नायिका का एक चित्र खींचा है ।

किरन सी कढ़ि आई आंगन उघारि गात

कवि पजनेस छैल छिति पै छहरिगो ।

उझकि झपाक मुख फेरि प्यारे ससि ओर

हेरि हेरि हरषि हिमंचल पै अरिगो ।

आधो मुख मलत अबीर ते मुकेश हाथ

नख रेख चिंहित उरोजन पै भरिगो ।

मानो अर्धचंद्र को प्रकास अर्ध चंद्रिका पै

चांदिका पै चंद्र चूर चूर ह्वै के ढरिगो ।[३]

इस में उपमा से शब्दों को सजाया है ।

१- पजनेस प्रकाश पद सं० ७७ पृ. सं. ३२

२- रीति श्रृंगार पजनेस पृ० २३६

३- पजनेश प्रकाश — पजनेश, कवि प्रद सं. पृ. सं. ४ ५१

<u>भाषा</u> - इन की भाषा में नवीनता है । शृंगार रस का वर्णन करते हुए भी कठोर वर्णों का प्रयोग कहीं कहीं बड़ी सुगमता से कर लिया है । इन का पद विन्यास सुन्दर है । फारसी शब्दों का प्रयोग है । अधिकतर कोमलकांत पदावली का ही प्रयोग हुआ है ।अनुप्रास में चित्र खींचे गए हैं । नायिका के भावों का वर्णन अनुप्रास के द्वारा -

चौंकि चकी उझकी सी छकी जकी छीजि निरीछनि लागि छपावन[1]

कपोल वर्णन -

झलक झलान झला झल झल झलकत झमल कपोल गोल गहब गुलाबी यों ।

वर्षा वर्णन में वायु के चलने का वर्णन -

झंझा झंझ झोकन झपाक झम झरा झर झरनि झरैगी झुरवान में ।

घूर धुंध धूधर धूम धुंधरत धुर्धर धुधरित धूम धुवान में ।[2]

धूम रंग धीरे धीरे धरायर अंगन पै धावत अधर कर धुंध गति वारे में

झंझा की झकोरे झिल्ली झनकत झीन झीन झनन झनत[3] झिल्ली की झंकार का वर्णन है । इस प्रकार के वर्णन में काव्य में गति आई है ।

१ कवि की शैली :- द्विजदेव शृंगारी कवियों के अन्तिम कवि हैं । इन की कविता में भाव योजना केवल परिपाटी के अनुसार ही नहीं है वरन् पाठक को लीन होने के लिए सरस दशा के चित्र खींचे हैं । इन की कविता में सहज उद्वेलन है । रूप का वर्णन किया है उस में भुजंग से भी अधिक जहरीला विष का रूप दिखाकर रूप की प्रभावोत्पादकता दिखाई है ।

जे जस-मंत्र सवाई रहे इन कैं न है जंत्र, न मंत्र, न है जुगि ।

जे डसि भावति एक ही बार, इन्हैं नहिं तोष विनाहिं डसे जुगि ।

भेद बताइन सौं श्री भुजंगन सों 'द्विजदेव' रहे यौं कितो गुनि ।

आंखिन देखि डरैं जे कहूँ, सखि ए मित कीं डसैं कानन सौं सुनि ।[4]

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

१- शैली - शृंगार = पद्मेन्द्र पृ० २२५

२-३- पद्मेश कवित्त पद सं० ८१ पृ० सं० १३

४- भाव मयंक पद सं० पृ० सं० ५४।७२

रूप सौंदर्य का जहर सुनने से ही चढ़ जाता है यह प्रभाव की विशेषता है । रूप सौंदर्य सभी कवियों ने वर्णन किया है पर उस के प्रभाव पर किसी का ध्यान नहीं गया । बसंत ऋतु में चांदनी रात में सौंदर्य बिखरा हुआ है उस के कारण की ओर इन का ध्यान हुआ ।

चांदनी के भारन दिखात उनयौ सो चंद, गंध ही के भारन बहत मंद मंद पौन [१]

प्रकृति के वर्णन में संयोगावस्था वियोगावस्था दोनों में ही प्रकृति का रूप बदला हुआ है इस के चित्र खींचे हैं । रेखा स्पष्ट है । पहली रेखा में 'चहकि चकोर उठे, सोर करि भौंर उठे, है बोलि ठौर ठौर कोकिल सुहावने' है । अंत में प्रकृति से आनंदित हो नायिका की 'उमंग अनंद अनुमान लों चहूँधा लागे फूलि फूलि सुमन मरंद बरसावनें' रेखा खींची है । पूरा चित्र आनंद का सामने आ जाता है । वियोग में 'औरे भाँति कोकिल, चकोर ठौर ठौर बोले, औरे भाँति सबद पपीहन के है गये' ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा का सब से बड़ा गुण स्वच्छता है । अनुप्रास तथा शब्द की योजना के द्वारा चित्र खींचे हैं । इन के हृदय की सच्ची उमंग का चित्रण निरन्तर हुआ है । नैनों का वर्णन गतिशील भाषा में किया । ऐसे ऐसे शब्द चुनकर रक्खे हैं कि एक एक भाव का चित्रण हो जाता है ।

'बाकि बंक हीने, राते कंज छबि छीने माते झुकि झुकि झूमि झूमि काहू को कछू गनैं न' । इन शब्दों से नेत्र का वर्णन है । वर्षा का चित्र 'उमड़ि घुमड़ि घन छड़त अखंड धार, अति ही प्रचंड पौन झूमनु चहुत है' ।[३]

घहरि घहरि घन सघन चहूँधा घेरि, छहरि छहरि विष बूँद बरसावै न ।[४]

इन शब्दों से वर्षा का चित्र पाठक के सम्मुख आ जाता है ।

१-२ मान मयंक पद सं० पृ० सं० १५० १९ १४४/५६   ७- मान मयंक - पद सं. पृ. सं. ९८६/१२१

३-५ रीति श्रृंगार पृ० २३८, २३८, २४१

६- रीति श्रृंगार - द्विजदेव पृ० २४१

शब्दों की आवृत्ति से भाषा में झंकार पैदा हो गई है । 'जकि झकि', 'गात गात' थकि थकि जात पेखि' 'भरि भरि आवै', करि करि आवत', 'झुलि झुलि जात पट', 'झुलि झुलि जाती', 'उन उन' अनुप्रास से भाषा में सहजता आ गई है । 'लहलही लोलित लवंग लतिका की लाल', 'सुरभि समीर सरसान लागे', 'कबैलिया की कूकनि' 'झुकि झुकि झांकति झरोखा ते कारी घटा' आदि से भाषा में लालित्य माधुर्य तथा मार्दव की स्थापना हुई है । 'तू जो कहै सखि लोनो स्वरूप सो मो अंखियान में लोनी गई लगि' में श्लेष के प्रयोग से भावों में सुन्दरता आ गई है । 'विनोद सौं वार लौन सी राई' में मुहावरे का प्रयोग किया है ।

इन सब कवियों में भाव की साम्यता है । केवल लिखने के ढंग में अंतर है । इसी से भावों में अन्तर हो गया है । केशव ने 'ऊख रस के तक मयूख रस मीठो है पियूष हू की पैनी छाहि जाको' कहा है, इस में छांह की विशेषता बताई है । 'ऊख रस से मीठा नियराइये मयूख' तथा उस से भी उत्तम पियूष को कहा है । गंग कवि ने एक तो मुख की निकाई की विशेषता बताई है दूसरे ऊख रस को निरर्थक कहा है । पियूष रस के आगे मयूख ही नीरस है । इसी भाव को देव ने लिखा है । मधुर बानी पियूष के समान है । इस में तुलना नहीं की है । केवल भावात्मक वर्णन है कि ऐसी बाणी सुनकर भूख भाग जाती है ।

गंग कवि ने नायिका का वर्णन करते समय लिखा है 'झरप झरोखा झांकी आइके', गोरी झांक कर चली गई । केवल दास ने नायिका का स्वभाव ऐसा ही कहा है । 'रीझि रिझाई झरोखनि झंकि रही मुख देखि दिखाई सुभाहिं' । नायिका की विशेषता है ।

चिंतामनि त्रिपाठी की नायिका चन्द्रमुखी है दिन में भी चांदनी फैलाए रहती है । 'उझकि झरोखे झुम्के चाहिबे की' अर्थात् झरोखा झांकना

— —

चाहिए ही । वास्तव में इस का प्रयोग प्रयास द्वारा है कोई आवश्यकता नहीं ।

कालीदास त्रिवेदी का प्रयोग अधिक सुन्दर है । नायिका की भावनाओं का चित्रण है । विरह में नायिका व्याकुल है । उस की अवस्था चित्रित की है । 'हिलि मिलि जोरुनि में, झांकत झरोखनि में, हियरा में हिलकी, दुगन अनुसार में'। देव कवि ने नायिका को झरोखा झांकते वर्णन नहीं किया है वरन् सखी नायक को झरोखा झांकने को बुलाती है । वह नायिका के रूप सौंदर्य का वर्णन करती है ।

पद्माकर ने नायिका के देखने के ढंग को चित्रित किया है 'उझकि झरोखा ह्वै झमकि झुकि झांकी आय'। इतने से ही श्याम की सुध भूल गई । इस में नायिका के सौंदर्य वर्णन है। उस के झांकने से चारो ओर चांदनी फैल गई । इस में कवि ने स्वाभाविक चित्रण किया है । ~~द्विज देव~~ ने दीपावली को देखने आने में नायिका का झरोखे से झांकने का चित्रण किया है । 'ओझकि उझकि जो न झांकती झरोखे तें तो' इतने परिवर्तन जो हो गए वह न होते । मंद दीपक आनन्दित न होते । मानस के कमल भी न खिलते ।

केशव के काव्य की विशेषता है कि इन्होंने रस परिपाक को अनुभवों तक ही सीमित रखा । कल्पना का उचित प्रयोग नहीं किया । बुद्धि के सहारे सब वर्णन किया है । चिंतामणि की कविता रस की दृष्टि से नीरस नहीं। कल्पना की ऊंची उड़ान नहीं है पर सच्ची अनुभूति व्यक्त की है । कुलपति मिश्र में अनुभूति की कमी है । रसपरिपाक काव्य में हुआ है । देव में रस चेतना की गंभीरता कल्पना वैभव, सच्ची अनुभूति तथा चित्रात्मकता है । श्रीपति में रस परिपाक पुष्ट, पर कल्पना वैभव का अभाव है । चित्रों में स्वाभाविकता है । सोमनाथ की विशेषता यह है कि विषय वस्तु की अभिव्यंजना सीधे सादे ढंग से है । चमत्कार की जगह अनुभूति की प्रधानता है ।अधिक अलंकारों का प्रयोग नहीं है । भिखारी दास में रस और ध्वनि दोनों का परिपाक है । कल्पना वैभव और अनुभूति कम है पर चित्र मार्मिक है ।प्रताप साहि के व्यंग काव्य की मुख्य विशेषता है । अनुभूति की तीव्रता नहीं है पर कल्पना

का वैभव है । गुपाल में कल्पना वैभव अधिक नहीं है । रस परिपाक भी साधारण कोटि का है । तोष के काव्य की विशेषता उक्ति चमत्कार और सरलता है । सुखदेव मिश्र में अलंकार कम पर कल्पना से पूर्ण है । उपमायें स्वाभाविक हैं । पद्माकर में कल्पना का वैभव है । दृश्य योजना और शब्द योजना इन के काव्य की विशेषता है । बेनी प्रवीन में गहरी भावुकता तथा चित्रात्मकता है । मतिराम में अलंकार योजना तथा अनुभूति है । व्यक्ति वस्तु तथा भाव का सजीव चित्रण हुआ है ।

गिरधर कवि -

इन की शैली सरल, स्पष्ट तथा व्यवहार की शिक्षा देने की सामर्थ्यवाली है । इन्हों ने नीति काव्य संतों के समान ही किया है पर इन के काव्य में ऐहिकता की मात्रा अधिक है । काल की महत्ता स्थापित करने के लिए उदाहरण अति साधारण सा दिया है कि हाथ में व्यक्ति हुक्का पकड़े रह गया और काल आ गया ।[1] साधारण से साधारण विषय को अन्योक्ति के द्वारा चमत्कार पूर्ण तथा प्रभाव शाली बना दिया है । कहना चाहते हैं कि बड़े को छोड़ कर छोटे के पास जाने से अपमान होता है उस के लिए भंवर की अन्योक्ति ली है ।

कोई भंवर गुलाब तजि गए जौ कुरकुर पास ।
धरिक समान अंगार है करक्स आई बास ।[2]

इन के काव्य में तथ्य निरूपक, उपदेशात्मक, आत्माभिव्यंजक, अन्योपदेशक, ऐतिहासिक तथा व्याख्यात्मक शैलियों का प्रयोग मिलता है । समय पर नहीं चूकना चाहिए सब का आदर सम्मान करना चाहिए[3] इस में तथ्यात्मक शैली है । 'बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछिताय' में, 'पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढ़ो दाम । दोनो हाथ उलीचिए यही सयानो काम' में उपदेशात्मक शैली तथा पपीहा चातक की अन्योक्तियां मिलती हैं । एक जगह जो बीज बोया जाता है वही निकलता है उस के लिए कहा है :-

---

१-४ गिरधर कुंडलियां पद सं० पृ० सं० ८६।७०, १८।१२, ७५।२३, ६९।३२ , ७८/२७

लहसुन तजै न गंध रूइ अगर संयुतो ।
कबहुं अहै गजराज कबहुं सूकर के पूता ।[१]

साधारण से साधारण विषयों में सच्ची अनुभूति थी इसी से आत्माभिव्यंजक शैली में पूर्णतया सफल हुए हैं ।

कह गिरधर कविराय लोन बिन सबै अलोना ।
बहुरि पिया घर आवै, कहा करिहौं ले गौना ।[२]

ऐतिहासिक तथ्य भी परम्परा के अनुसार पाए जाते हैं । अपने भाई को कभी कष्ट नहीं देना चाहिए क्योंकि त्रास देने से बिभीषण राम से जाकर मिल गया । अंत में बिभीषण को राज्य मिला ।[३] हिरण्यकश्यप, कंस, रावण के घर फूट के कारण समाप्त हो गए ।[४] तेरह व्यक्तियों से शत्रुता करने में व्याख्यात्मक शैली का परिचय मिलता है ।[५]

<u>भाषा</u> - इन की भाषा ब्रज है पर अरबी फारसी जैसे 'पिदर' 'बिरादर' तथा संस्कृत जैसे 'अकलेद्य', 'अशोच्य' आदि शब्द पाए जाते हैं । कहीं कहीं भाषा में खिलवाड़ मिलता है ।

अकल मध्य में अकल हूं, ना मैं अकल अनकल ।
सकल मध्य मैं सकल हूं, ना मैं सकल असकल ।[६]

इन की भाषा सरल तथा स्पष्ट है इस से जल्दी ही कंठस्थ हो जाती है । प्रचलित कहावतों का प्रयोग भाषा को अधिक लोक प्रिय बनाता है ।

कह गिरधर कवि राय दुःख जिन का मन चंगा ।
सो भोगत ब्रह्मानंद कठौती तिन को गंगा ।[७]

अनुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा का प्रयोग नहीं है । कूटार्थ का प्रयोग कहीं कहीं मिलता है, इन की शैली में प्रसाद गुण पाया जाता है ।

१-५ गिरधर कुंडलियाँ पद सं० पृ० सं० (२१६),६२।१९,७२।२२,९५।३०,

६-७ - गिरधर कविराय - कुंडलिया - पद ह.पु.लि. ११२/३५४.२५८

शैली -

गोस्वामी तुलसी दास - इन की शैली की विशेषता उस की कोमलता, सुबोधता, रमणीयता तथा प्रवाह है । इनका नीति सूक्तियों की परम्परा में है । इस से उस में चमत्कार की विशेषतायें पाई जाती हैं । 'दीपसिखा सम जुवती' से गोस्वामी जी दूर रहने को कहते हैं क्यों कि वह दाह प्रदायिनी है । इन्हों ने मन को पतंगा कहा है, जो कि दीप शिखा में अपनी आहुति करता है । स्वभाव साम्य होने के कारण इन की उपमायें सुबोध हैं । नीच व्यक्ति और पतंग की एक समान प्रवृत्ति होती है 'ढीलि दिए गिरि परत महिं, खैंचत चढ़त अकास' । चंदन के वृक्ष पर रहने वाले सर्पों का जहर कम नहीं होता वैसे ही नीच सज्जन के साथ भी नीचता नहीं छोड़ते । नीति की विशिष्टता प्रभाव पूर्ण हो इस के लिए साधारण अनुभव की वस्तुयें, दैनिक जीवन में काम आने वाली वस्तुओं से उदाहरण लेते हैं । कपूर में हींग की सुगन्धि व्याप्त नहीं हो पाती । धतूरे को कनक सब कहते हैं पर गहना कोई नहीं बनवा लेता । नेत्रों को फाड़ फाड़ कर देखने से नेत्र बड़े नहीं हो जाते । काजल की कोठरी में जाने पर एक लीक से कोई नहीं बच पाता । इन की उपमायें बड़ी अनोखी हैं । प्रतिदिन छांह को हटते देखा है पर संपति भी वैसी ही हटती है यह अद्भुत उक्ति है ।

> दिए पीठि पाछे लगै सनमुख होत पराइ ।
> तुलसी संपति छांह ज्यों लखि दिन बैठि गंवाइ ।[1]

कितनी सुन्दर स्वभावोक्ति है । किसी को भी छोटा नहीं समझना चाहिए । इस की पुष्टि के लिए कहते हैं पीपल के बीज के समान जो बच जाता है वह समय पाकर पूर्ण वृक्ष हो जाता है । अग्नि में धुआँ उतना ही स्वाभाविक है जितना सपूत के कपूत ।

भाषा - सरल ब्रज भाषा का प्रयोग है । कहीं कहीं अवधी तथा संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है । अनुप्रास का भी प्रयोग है । 'जलधि जीवन जलद,

---

१- तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० ५५७।८९

'सुधा सुधाकरि' प्रीति पपीहा पयद की प्रगट' आदि । समोच्चरित शब्द योजना भी है, -
'औजल जरे जवास' । विशेषण भी साभिप्राय हैं । 'हसनि, मिलनि, बोलनि मधुर' शब्द'
की विशेषता दिखाते हैं । संज्ञा, विशेषण क्रिया में प्रेषणीयता है ।

हिय फाटहुँ फूटउ नयन जरउ सो तन केहि काम ।

द्रवहिं, स्रवहिं पुलकहिं नहीं, तुलसी सुमिरत राम ।[१]

हृदय के लिए 'द्रवहिं' तथा नयन के लिए 'स्रवहिं' का प्रयोग
किया है, जो अर्थ के सौंदर्य को बढ़ाता है । इन के शब्द जल्दी अर्थ बोध कराते हैं ।
साधारण मुहावरे का प्रयोग मोती के समान पिरोया हुआ है । 'जइहैं बारह बाट,'
'तिनके मुंह मसि लागि हैं, मिटिहि न मरिहैं धोय' । गोस्वामी जी की सूक्तियाँ
इतनी प्रचलित हो गई हैं कि वह जनता की बोलचाल की भाषा में आगई हैं, यथा

जैसी हो भवितव्यता तैसी मिलै सहाइ ।

आपु न आवै ताहि पर ताहि तहां लै जाइ ।[२]

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु ।

विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रलापु ।[३]

रत्नावलि - इन की कविता साधारण कोटि की है । नीति
की बातें साधारण पद्य में लिखी हैं, अधिकतर तो परम्परागत पतिव्रत धर्म का चित्रण
किया है । उपमायें भी साधारण हैं । 'कामिनी' को 'घी के घट' के समान कहा है तथा
'पुरुष' को 'अंगारे' । परम्परा से स्त्री को अग्नि के समान कहा है , पर इन की उक्ति
में यह विशेषता है । कहीं कहीं काव्य में सौंदर्य भी मिल जाता है ।

रत्नावलि भवसिंधु मधि, तिय जीवन की नाव ।

पिय केवट बिन कौन जग, खेइ किनारे लाव ।[४]

१-३ तुलसी दोहावली पद सं० पृ० सं० ४१।२५, ४५०।१५४, ४३९।१५०

४- रत्नावली लघु दोहा संग्रह पद सं० पृ० सं० ११।७० हस्त लिखित प्राचीन लिपि-
प्रतियाँ पं० गोविन्द वल्लभ भट्ट शास्त्री, सोरों निवासी के यहां सुरक्षित हैं ।

भाषा - साधारण ब्रज है । अनुप्रास का प्रयोग किया है । 'युवक जनक जामात' जैसे पद मिलते हैं । प्रेषणीय शब्दों का प्रयोग है । 'फेरुआ,' भिक्षुकन के लिए कहा है । भिक्षु घूमा फिरा करते हैं इस से फेरुआ शब्द सार्थक है ।

उदैराज - इन के विचार सुन्दर हैं । अनुभव पूर्ण उक्तियां हैं । जगह जगह सुन्दर कल्पना का वैभव देखने को मिलता है । कुछ ही दोहे नीरस हैं, अधिकतर चमत्कार तथा आलंबन से युक्त हैं ।जवानी' और 'जरा' का 'अशाध्वी' और 'शाध्वी' से साम्य दिखाने में चमत्कार का योग है । गुणी को कहीं भी रखे मान मिलता है । इस को दिखाने के लिए चन्द्रमा को समुद्र से निकाल दिया गया है तो शिव जी ने मस्तक पर धारण कर लिया , ऐसा कहते हैं । साधारण ज्ञान का परिचय इनकी उक्तियों में मिलता है । चूना और हल्दी मिलाकर लाल रंग हो जाता है इस साधारण ज्ञान को भी परिचय मिलता है ।

भाषा - भाषा राजस्थानी है । पंजाबी का भी प्रभाव है । मुहावरे प्रयुक्त हैं, 'बैठे हाथ बिकाय', नीति काव्य की दृष्टि से यह पुस्तक उपयोगी है ।

रहीम - ये न तो सन्त, न भक्त और न रसिक प्रिय हैं । इसी से इन की शैली कुछ अपने ढंग की है । न उस में कोरा उपदेश है न गंभीर भक्ति और न अलंकारों से लदी हुई रीति परम्परा का अनुसरण करती हुई श्रृंगारिक शैली, ये दरबारी कवि होते हुए भी किसी बंधन में नहीं थे । इसी से इन की कविता की आत्मा है इन की स्वानुभूति । कहीं कहीं भले ही कल्पना का चमत्कार तथा अलंकार मिल जावे, पर अधिकतर तो जगत के उपादान जीवन, मनुष्य की प्रवृत्ति, उस के स्वभाव, उस के व्यवहार की सूक्ष्म आलोचना ही मिलेगी । इन की दृष्टि इतनी पैनी थी कि साधारण से साधारण जगत के व्यापार अछूते नहीं बचते । उनको इन्हों ने कभी उपदेशात्मक ढंग से कभी तथ्य निरूपक ढंग से तथा कभी कथात्मक ढंग से रख दिया है

जिस को पाठक पढ़ कर अपने जीवन में अनुभव कर के देखता है, तो कह उठता है, रहीम ने कितनी सत्य बात कही है । उसे पग पग पर रहीम की अनुभूतियाँ अनुभव करने को मिलती हैं, तो सोचता है कि रहीम को यह हमारे जीवन की बातें कैसे पता थीं, कभी कभी तो इन के दोहे इतने घटते से प्रतीत होते हैं कि वह उस के जीवन के अंग हो जाते हैं । निर्धन प्रतिदिन ही खर्च बढ़ने और रोजी घटने का अनुभव किए रहता है । इस के अतिरिक्त वह इस तथ्य का नित अनुभव करता है ।

बरु रहीम कानन बसिय, असन करिय फल तोय ।
बंधु मध्य गति दीन ह्वै, बसिबो उचित न होय ।[१]

विपत्ति आने पर ही सगे की पहचान होती है । धनी पुरुष निर्धन होने पर पिछली बातें ही करते हैं । ये सब रहीम के अनुभव के तथ्य हैं । इन्हों ने सूक्ष्म दृष्टि से जगत को परखा और सब के सामने रखा ।

यों रहीम सुख होत है उपकारी के संग ।
बाँटन वारे को लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ।[२]

जो अनुभव में आया उसे उपदेशात्मक ढंग से कह दिया ।

हीरा सिर तें काटिये, मलिए नोन लगाइ ।
रहिमन करुए मुखन को चहियत यही सजाइ ।[३]

कथात्मक ढंग -

जे गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग ।
कहा सुदामा बापुरे, कृष्ण मिताई जोग ।[४]

तथ्य निरूपक ढंग से भी कुछ दोहे मिलते हैं । सूर्य से सर्दी कम होती है, अंधेरा मिटता है, पर उल्लू नहीं देख पाता तो उस से सूर्य का

१-४ रहीम कवितावली सब सं० पृ० सं० ११९।१४, १५३।१८, ४७।५, ६०।७

क्या बिगड़ता है[1]। शरीर की उपमा पृथ्वी से की है। जैसे पृथ्वी को शीत घाम मेह सहना पड़ता है वैसे ही शरीर को भी सुख दुख सब सहने पड़ते हैं[2]। कहीं कहीं स्वभाव पर व्यंग कसा है।

> पुरुष पूजै देवरा, तिय पूजै रघुनाथ।[3]
>
> कहु रहीम कैसे बने, बैल बैल को साथ।

स्त्री पुरुष को बैल और बैल कहा है।

<u>भाषा</u> - ब्रज भाषा में रचना की है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग है। फारसी अरबी शब्द भी मिलते हैं। इन की भाषा सरल और भावपूर्ण है। प्रसाद और माधुर्य गुण पाया जाता है। अनुप्रास के द्वारा भाषा को गतिशील बनाया है। 'बैर खून खाँसी खुशी' से दोहे में चमत्कार आ गया है। शब्दों की आवृत्ति से भाव में तीव्रता आ जाती है। 'बैर प्रीति अभ्यास जस, होत होत ही होत'। सम्मोचरित शब्द योजना से झनकार उत्पन्न होती है। 'अरज गरज', 'कूबरो कूबरो' यह सब साधारण से शब्द हैं पर भाषा की तीव्रता को बढ़ाते हैं। इन की शैली की एक यह भी विशेषता है कि थोड़े से शब्दों में अन्तिम पद में भाव पूरा स्पष्ट हो जाता है। 'घर घर गए रहीम' ही दोहे का मुख्य भाव है -

> कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम को धीम।
>
> केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गए रहीम।[1]

शब्दों के प्रयोग में चतुरता दिखाई है। साधारणतया 'बढ़े' का अर्थ उन्नतिशील होता है, पर बोलचाल की भाषा में 'बढ़े' दिया के बुझाने को कहते हैं। रहीम ने कहा है 'बारे उजियारे लगै, बढ़े अँधेरो होय'।

गोस्वामी तुलसी दास जी और रहीम के दोहों में साम्यता है। दोनों की शैली का अंतर इस से पता चलता है।

> उरग तुरंग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
>
> तुलसी परखत रहब नित, इन्है न पलटत बार'।[2] तुलसीदास जी

1- रहीम कवितावली पद सं० पृ० सं० २४८।२२, ६५।८, ११२।१३, ३३।५

2- तुलसी दोहावली " ३०९।१३५

उरग तुरंग नारी नृपति, नीच जाति हथियार ।
रहिमन इन्हें संभारिए, पलटत लगै न बार [1]। रहीम:

इस में गोस्वामी जी परखने को कहते हैं, बराबर परीक्षा लेने को कहते हैं कि बराबी तो नहीं आ रही है । रहीम जी उसे केवल सम्हाल कर रखने को कहते हैं । सम्हालकर रखने में व्यक्ति की चतुरता नहीं मालूम होती है क्यों कि राजा का सम्हालना अपने हाथ में नहीं है । गोस्वामी जी का कथन अधिक उपयुक्त है ।

वृंद - इन की शैली विशुद्ध नीति की है और नीतिकारों में किसी में धर्म की प्रबलता है किसी में उपदेश की । इन को क्या होना चाहिए इस की चिंता नहीं, क्या होता है यह महत्वपूर्ण बात है । इन की शैली की विशेषता यही है कि व्यवहारिक जीवन में मनुष्य स्वभावतया क्या करता है, इसी को इन्हों ने सरल और स्पष्ट शब्दों में कह दिया है । इन के विचार से स्वार्थ सिद्धि के लिए नैतिक और अनैतिक साधनों की चिन्ता व्यर्थ है । जब सारा संसार धर्म पूर्ण व्यवहार नहीं करता तो अपना ही जीवन आदर्शवाद में क्यों व्यर्थ किया जावे । इन्हों ने दैनिक जीवन की बातों से, मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति से, प्रकृति के उपादानों से तथा साधारण वस्तुओं से दृष्टांत लेकर अपने कथन की पुष्टि की है । शीतल जल से आग बुझती है,[2] बालक की तोतली भाषा से प्रसन्नता होती है,[3] वायु आग को प्रदीप्त करती है पर दीपक को बुझा देती है,[4] तथा ऊख को पीड़ित करने से रस निकलता है[5] आदि से अपने कथनों की पुष्टि की है कि शत्रु पर विश्वास न करे, मीठी बात अच्छी ही होती है, बलवान के सभी सहायक होते हैं निर्बल के नहीं, तथा जो रस वाला होता है उसे कष्ट मिलने पर भी वह दूसरों का हित करता है । ऐसे ऐसे साधारण से दृष्टांत लिए हैं कि वह सभी के जीवन में घटित होते हैं । इसी से इन के विचार प्रभावोत्पादक हैं ।

1- रहीम कवितावली पद सं० पृ० सं० १३६.
2-5 वृंद सतसई - सतसई सप्तक - ३४७/३१३, ३३०/३१२, २०३/३०२, २८/२७१

ताको अरि कहा करि सकै, जाकी जतन उपाय ।
जरै न तातो रेत सों जाके पनही पाय

इन्होंने नीति की पुष्टि के लिए पौराणिक तथ्यों का भी निरूपण किया है । 'करत तपस्या सूद्र को ज्यों मार्यो रघुराय' से नीति निपुण राजा के विचारों की पुष्टि की[२] तथा 'सीता हरिबे तैं भयो रावन कुल को नास' से 'जैसी भवितव्यता होती है वैसी बुद्धि हो जाती है'।[३] की उक्ति सिद्ध होती है । सभी नीतिकार की पैनी दृष्टि होती है पर इन में यह विशेषता है कि बड़ी साधारण से साधारण की ओर इन की दृष्टि गई है । आटे में थोड़ा नमक किसी को पता नहीं लगता, इतना ही जीवन में झूठ बोला जा सकता है । नकटे को आरसी दिखाने पर किसे न क्रोध होगा ।

हिय दुष्ट के बदन तैं मधुर न निकसै बात ।
जैसे करुवी बेल के को मीठे फल खात ।[४]

रत्ती भर जल से दूध का उबाल मिट जाता है यह सूक्ष्म निरीक्षण नहीं है तो और क्या है । साधारण लोकोक्तियों तथा मुहावरों से कथन की सत्यता को दृढ़ किया है । कवियों ने परम्परा से इस तथ्य को माना है कि लोहा पारस से छू जाने पर सोना हो जाता है, इसी तथ्य का निरूपण किया है जैसे पारस को परसि लोह कनक ह्वै जाय ।[५] इस के अतिरिक्त 'एक म्यान में द्वै छुरी जैसे मावै नाहिं'[६]। इन की कल्पना भी कहीं कहीं बड़ी सुन्दर है । 'सोहे हू सीतल करै जैसे नीर समीर'[७], 'मरे परेहू उदर में बल बाढ़त है मीन'[८]।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा की विशेषता है सरल भाषा में अपने भावों की अभिव्यक्ति । साधारण से साधारण लोकोक्तियों का प्रयोग करके भाषा को सुगम तथा सुबोध बना दिया है । इन की भाषा में समाहार शक्ति का पूरा विकास पाया जाता है ।

१-८ सतसई सप्तक - वृन्द सतसई २८७/३०८, २७८/३१०, १४३/२४८, ४७७/३१८
११८/२७५, ६६२/३३८, ८२/२४२, ४४१/३२०

भली न होवै कुटल जन, भली कहै जो कोय ।
विष मधुरी मीठी लवन, कहै न मीठो होय ।[१]

इन के अधिकतर दोहों में अन्तिम पद में उदाहरण दिया जाता है । भाषा ब्रज है । संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग है । प्रसाद और माधुर्य दोनों गुण की अधिकता है । ओज गुण कम मात्रा में है । रहीम और वृंद दोनों में एक भाव है । दोनों में अपनी अपनी विशेषता है । यथा

ऊपर दरसै सुमिल सो अंतर अनमिल आंक ।[२]
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फांक । वृंद
रहीम प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन ।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाके तीन ।[३] रहीम

इस में वृंद ने यथार्थ का चित्र खींचा है पर रहीम ने उपदेश दिया है कि ऐसी प्रीति नहीं करनी चाहिए । यही दोनों कवियों की विशेषता है ।

दीन दयाल गिरि - दृष्टांत तरंगिणी में इन की शैली की विशेषता तथ्यात्मक निरूपण में है । कहीं कहीं उपदेश मिलते हैं । पौराणिक दृष्टांत भी मिल जाते हैं ।

नहीं रूप कछु रूप है विद्या रूप निधान ।
अधिक पूजियत रूप तें बिना रूप विद्वान ।[४]

संतोष धन उत्तम धन है इस का उपदेश दिया है । 'लिए रतन अति जतन सों सुर असुरन दधि माहिं' में पौराणिक तथ्य का निरूपण है । अपनी प्रखर प्रतिभा और परिवेक्षण दृष्टि से नवीन विषयों पर नवीन उद्भावनाएं व्यक्त की हैं । कच्चे घड़े में पानी टपकता रहता है 'ज्यों सर सूखो देखि कै हंस न आवत पास' । कहीं कहीं कवि ने परम्परा की उक्तियों को ही नवीन ढंग से व्यक्त किया है । स्वाति का सर्प के मुख में पड़ कर विष होना सीप में मोती होना तथा भृंगी कीट का

१-२ सतसई सप्तक - वृंद सतसई पद सं० पृ० सं० १६५।३००, ४००।३२३
३- रहीम दोहावली पद सं० पृ० सं० ३२।२१३,
४- दीनदयाल दृष्टांत तरंगिणी पद सं० पृ० सं० ९०।८१

उपमान परम्परा से चला आ रहा है । इन सब उक्तियों को दृष्टांत रूप में व्यक्त किया है ।

> रचै सठहिं बुध आप सम सैन सुनाय अनूप ।[1]
> जैसे भृंगी कीट कों करत सने निज रूप ।

इन की शैली में कहीं कहीं पूर्वपद में प्रतिपाद्य विषय है तथा कहीं दृष्टांत पहले बाद में प्रतिपाद्य विषय । 'पर संपति अति सुरति कै खल मति दूबे जरि छार' में पूर्व पद तथा 'जैसे पके द्रुठ तरु जारि करै बन छारि' में पहले दृष्टांत है । 'सोहत बुद्ध सो बुध सभा ज्यों हंसन में काग' में 'हंसन में काग' से पूरा भाव स्पष्ट होता है ।

<u>भाषा</u> - इन की भाषा में समाहार शक्ति पाई जाती है । मनुष्य तीन तरह की प्रवृत्ति का होता है कोई बाहर मृदु होते हैं, कोई भीतर से तथा किसी किसी का हृदय बाहर भीतर दोनों से ही मृदु होता है । बाहर से मृदु बेर की तरह, भीतर से मृदु बादाम की तरह तथा दोनों जगह से मृदु अंगूर की तरह होते हैं[2] । थोड़े से शब्दों में इतने भाव भर दिये हैं, जो कि साधारण कवि के बस की बात नहीं है । शब्दों का उपयुक्त चुनाव ही इस की कसौटी है ।

भाषा शुद्ध है । शब्दों को व्यवस्थित ढंग से रक्खा गया है, तथा शब्दों का चुनाव उपयुक्त है । विदेशी शब्दों का प्रयोग कम है । सुजन की प्रीति के लिए 'पाहन की रेख' के समान अमिट कहा है । 'अमिट' भाव को व्यक्त करने के लिए इस से अधिक उपयुक्त कोई शब्द नहीं मिल सकता । भाषा का सौंदर्य लोकोक्तियों से बढ़ जाता है । इस से रचना प्रभावोत्पादक अधिक हो जाती है, क्यों कि लोकोक्तियां जन जन के जीवन में पदार्पण कर चुकी होती हैं । उन्हीं उक्तियों को दुबारा नए ढंग से देखकर पाठक की मनोवृत्ति उसी ओर झुकती है । तभी ऐसी उक्तियां हृदयस्पर्शी होती हैं । 'बना लौ प्रिय मुख में नहिं पीछे पछतान',[3] यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है और लोकोक्ति भी है । 'पूरन जल बरसे नहीं, ज्यों घन गरजन हार '[4] में उस कहावत है कि जो गरजते हैं वह बरसते नहीं की पुष्टि होती है ।

१-४ दीनदयाल गिरि दृष्टांत तरंगिनी पद सं० पृ० सं० १४१।८४, १५३।८५, —१५८।८५

विक्रम सींह - इन की शैली बिहारी के अनुकरण पर है । इन का शृंगार वर्णन अधिक स्वच्छ एवं विकसित है । इन में सहज स्वाभाविक अनुभूतियां हैं, वस्तु का सौंदर्य अनुभव गम्य है । ऐसे उपमानों का प्रयोग है जो बिंब ग्रहण करने में सहायक हों । 'जहं पग बंकन रखती है वहां मानो गुलाल फैल जाता है'।[1] इस में पैरों की लालिमा दिखाने का प्रयोजन है । शरीर की सुगंध गुलाब के इत्र के समान फैलती सी दृष्टिगत होती है ।[2] कवि अपनी अनुभूति के मिश्रण से इन वर्णनों में सरसता, आर्द्रता उपस्थित करते हैं । इन के चित्रों की रेखाएं स्पष्ट हैं 'ठोढ़ी पर अंगुरी दिए ठाढ़ी आंगन मांहि'।[3] बंशी की ध्वनि सुनकर चित्र लिखी सी[4] हो गई । शब्दों में चमत्कार अनुप्रास में चमत्कार परम्परा से चला आ रहा है । 'उर उरझत सुरझत न फिरि, फिरि फिरि उरझत जात'[5], 'उर उरझ्यो चित चोर सों सो फिर सुरझ्यो जात'[6], 'सुर्ज फरकत झुलत हियो'[7] आदि शाब्दिक चित्र भरे पड़े हैं ।

नव-दंपति का एक चित्र खींचा है वे आपस में मिलते हैं प्रसन्न हो जाते हैं, बातें करना चाहते हैं, हंसते हंसते चलते हैं ।[8] इस तरह के भावना प्रधान शब्दों में बड़े सरस हैं । संयोगानुभूतियों की व्यंजना में स्थूल चेष्टाओं में लीन नहीं होते वरन् हृदय की लोल तरंगों का अवलोकन करते हैं । विक्रम की नायिकाएं सुसम्य, सुसंस्कृत एवं सुशिष्ट हैं उन में जीवन की सच्ची अनुभूतियों के वर्णन मिलते हैं । इन में कल्पना की दुरूहता नहीं मिलती । रूचि पवित्र है, दृष्टि स्वच्छ है, अलंकारों का बोझा नहीं है तथा भाषा सरल है । शृंगार के विभिन्न अंगों का प्रयोग किया है इस से सतसई प्रणय कहानी सी बन गई है । यही इन की शैली की विशेषता है । इन की भाषा में विदग्धता एवं शिष्टता अधिक है । ज्योतिष का निरूपण साधारण शब्दावली में किया है । विशेषणों का प्रयोग उपयुक्त किया है । 'हंसी हैं नैन', 'सलौने हैं गात', 'निचौने हैं नैन' 'मधुराई मुसकान' का प्रयोग किया है । कहीं कहीं श्रुति कटु तथा

१-८ विक्रम सतसई पद सं० पृ० सं०१०५/३५१, १०६/३५१, १०९/३५१, ५१०/३८२, १७१/३५६, २५६/३४८, ३५०/३७२, ४०४/३७२

कहीं कहीं मधुर शब्दों का प्रयोग किया है ।

> चटक चटक तामन फटिक लटकि लटकि फिर जाति ।।
> चटक चटक चित हिय अटकि गहति हु चर मुस्कयाति ।[१]

भाव तथा विषय एक से होते हुए भी कवि की प्रतिभा, कवि की अनुभूति तथा कवि के शब्दों की प्रेषणीयता के कारण प्रत्येक कवि की रचना अलग अलग दिखाई देती है । इन सभी कवियों ने नायिका के 'झरोखेमें झांकने' का चित्र अंकित किया है । कृपा राम ने कहा है नायिका सब की दृष्टि बचाकर झरोखा झांक कर चली गई[२] इस में दर्शकों को नायिका की झलक थोड़ी देर के लिए मिली तथा वे उस को देखने को लालायित हैं यह भाव भी इस में व्यंजित है । बिहारी ने अपनी झांकने वाली नायिकाओं को 'घायक चर' के समान कहा है ।[३] बिहारी की नायिका के सौंदर्य के कारण दर्शकों की लालसा तीव्र है तथा लालसा पूरी न होने के कारण उस का सौंदर्य कष्टदायक है यह व्यंजना निकलती है । कृपाराम की नायिका चतुर भी है पर बिहारी की नायिका में कोई चतुरता नहीं है । केवल रूप सौंदर्य है । राम सहाय जी की नायिका बार बार उझक उझक कर देखती है । वह बादल की चमक के समान है ।[४] इस में न तो दर्शकों की लालसा व्यंजित है और न नायिका का मनोभाव ही । केवल एक साधारण सा कार्य व्यापार ही चित्रित है । विक्रम कवि ने नायिका के मनोयोगों का चित्रण किया है । उसे झरोखा से बाहर देखने की इच्छा होती है इस से वह आनन्दित होती है,[५] अतः उस के झरोखा झांकने में विनोद प्रतीत होता है

१- विक्रम सतसई पद सं० ५९० पृ. ६. ३८३

२- कृपा राम हित तरंगिनी पद सं० १२

३- बिहारी सतसई पद सं० ३४६ पृ. ६ ११०

४- राम सतसई पद सं० ५१८ पृ. ६. २६८

५- विक्रम सतसई पद सं० ७१९ पृ. ६. ३५८

इस में दर्शकों की इच्छाओं को चित्रित नहीं किया है । केवल नायिका के कौतूहल वर्णित हैं ।

इस तरह बिहारी का एक दोहा है जिस में नेत्र उलझते हैं पर कुटुम्ब टूटते हैं । चतुरों के हृदय में तो प्रीति होती है पर दुर्जनों के हृदय में गाँठ पड़ती है ।[1] इस में व्यापार तो साधारण है पर इस ढंग से कहा है कि कोई चमत्कार की वस्तु है । नायिका नायक के छुपा छिपी प्रेम से इस तरह की स्थिति हो जाती है । इसी भाव को रसनिधि ने कहने का प्रयत्न तो किया है पर शब्दों की तारतम्यता न होने के कारण वह अनुभूति नहीं होती । दृग उलझते हैं पर बंधता मन है । यह कौन सी रीति है ।[2] प्रेमनगर में यह अनीति देखी जाती है । इस में शब्दों में 'अनीति' शब्द आया है पर भावों में कोई अनीति नहीं प्रतीत होती । नेत्रों का उलझना और मन का बंधना विपरीत अवस्था के व्यापार नहीं लगते । जैसा कि बिहारी में है सज्जन और दुर्जन विपरीत गुणों वाले होते हैं वैसी व्यवस्था रसनिधि में नहीं मिलती, इस से कोई विशेष चमत्कार नहीं मिलता । विक्रम कवि ने 'अनीति' के द्वारा मानसिक स्थिति का चित्रण किया है नैन जुड़ते हैं पर हृदय में जलन होती है ।[3] जुड़ना और जलना एक दूसरे की विपरीत क्रियाएं नहीं हैं इस से इन में भी कोई विशेषता नहीं मिलती ।

संत साहित्य में सभी ने एक से विषय लिए हैं पर सब की शैली भिन्न है । कबीर की शैली, दादू की शैली, पलटू साहिब की शैली आदि सभी सन्तों में कुछ अपना व्यक्तित्व है, जो सब की साखियों में झलकता है । यहाँ कुछ उदाहरण देकर इस का कारण ढूंढने का प्रयत्न करेंगे । कबीर ने नाम की उपमा पारस से दी है । इस में इन्होंने कहा है कि मन रूपी लोहा नाम रूपी पारस को छूते ही सोना हो जाता है, सोना होने के कारण माया मोह के बंधन से छूट जाता है । इस में नाम और

१- बिहारी सतसई पद सं० ६६६ पृ.सं. ८५

२- रसनिधि सतसई पद सं० ४१० पृ.सं. २०

पारस के गुणों में साम्यता है । मन और लोहा के गुणों में साम्यता है तथा मनुष्य सोना होने पर उस का मैलापन जो लोहे का था, वह नष्ट हो जाता है और वह बंधन रहित होकर सोने की तरह चमकने लगता है । दादू ने भी पारस की उपमा दी है पर वह गुरु से । पारस रूपी गुरु जब शिष्य को छूता है तो अपने समान कर लेता है । गुरु तो शिष्य को अपने समान कर सकता है, पर पारस लोहे को पारस नहीं बना पाता । अतः इस में पूरी साम्यता नहीं है । इस के अतिरिक्त गुरु शिष्य को छूने मात्र से अपने समान नहीं कर सकता । दरिया साहब (मारवाड़ वाले) ने इसी उपमा को कबीर की तरह नाम को पारस कहा है । पर इन की साखी में 'पलट कंचन भया' तथा 'पलटै अंग' उचित नहीं लगता । पलटने के अर्थ होते हैं उलटना, काया पलट होना । काया पलट होना भी यदि अर्थ माना जाय तो जिस तरह से व्यक्ति बदलता है, इस की कोई कोई उक्ति नहीं है। अतः इस में अनुभूति की कमी मालूम होती है । उपमा सादृश्यमूलक नहीं मिलती । तुलसीदास ने पारस शब्द का केवल प्रयोग सा किया दिखता है । नाम पारस है, पर लोहा क्या है, इस का वर्णन नहीं है । सोना फिर लोहा नहीं हो सकता । इस में कोई अर्थ विशेष नहीं निकलता । अनुभूति की कमी ही इस का कारण प्रतीत होती है । सहजो बाई ने पारस धनवानों के घर होता है ऐसा कहा है पर अभाव में तो ऐसा नहीं होता इस में वर्णन में कोई विशेषता भी नहीं है । गरीबदास ने गुरु को पारस की जातिकहा है । दादू के समान इन्होंने भी पारस के स्पर्श से पलट जाना कहा है । जो कि समान गुण होने के कारण कोई भाव उत्पन्न नहीं करता तथा कथन कीओ सा उल्लेख प्रतीत होता है । पलटू साहिब को जड़ी बूटी के खोजते नाम रूपी पारस मिल गया । उस का क्या प्रभाव होता है, उस के क्या गुण हैं, इस के ऊपर कोई विवेचन नहीं है ।

साहित्य में परम्परा से यह विचार चला आ रहा है कि भृंगी कीट को अपने निरन्तर साथ से अपने समान गुण वाला कर लेता है । कबीर ने इसी से गुरु से भृंगी की उपमा दी है जिस में शिष्य गुरु के निरन्तर संसर्ग से वही गुण

धारण कर लेता है जो गुरू के हैं । इस में उपमा और उपमान में साम्यता है । इसी से पाठक इस को पढ़कर तुरंत ही अर्थ को समझ लेता है । दादू ने भी इसी तरह की उपमा दी है । इस में भाव तो वही है 'दादू भृंगी कीट ज्यों आप सरीखे करि लिए' में वही भाव आ जाता है । 'सतगुरू सेती होड' तथा 'दूजा नाहीं कोई' पद निरर्थक है । इस से कोई अर्थ में गंभीरता नहीं बढ़ती । इस के विपरीत कबीर का एक एक शब्द सार्थक है । वह पहले पद में गुरू को दंडवत इसी लिए करने को कहते हैं क्यों कि गुरू गुणी है । इसी से दादू की साखी में अर्थ की उतनी तीव्रता नहीं प्रतीत होती । दरियाव साहिब (मारवाड़ वाले) ने जो उपमा दी है वह केवल शाब्दिक है । अर्थ की दृष्टि से कीट कभी भृंगी से नहीं कहता कि हमारी रक्षा करो, अर्थात् उपमा में गुण साम्य नहीं है । इसी से वह अर्थ नहीं आता जितना आना चाहिए ।

गरीबदास जी ने जीव को पशु और सतगुरू को भृंग कहा है । भृंग पशु को न तो परिवर्तित ही करता है औ न पुरवे से जिन्दा ही करता है । अतः इस उपमा में रूप साम्य नहीं है । इस का कारण प्रतिभा की कमी ही कही जा सकती है ।

कबीर दास ने ब्रह्म को पांच तत्व से न्यारा कहा है । 'नाद बिंदु ते भिन्न है, पांच तत्व से न्यार'। रज्जब जी ने पांच तत्व को सब जगह बताया है । 'पंचतत्व सब ठौर है, सब घट सबहीं मांहि'। दोनों में बड़ा अन्तर है, कबीर ने ब्रह्म को पांच तत्व से न्यारा कहा है और रज्जब ने आत्मा को पंचतत्व वाला कहा है । केशव दास ने भी 'पांच तत्व गुन तीन के, पिंजर गढ़े अनंत' कहा है'। शरीर पंच तत्व का बना है । सहजो बाई ने भी वही भाव लिया है जो कबीर ने लिया है ।

रूप नाम गुन सूं रहित, पांच तत्व सूं दूर ।[1]
चरनदास गुरू ने कही, सहजो हिया हजूर ।

[1] संत बानी संग्रह · सहजोबाई पद सं. दृ. दि. १०/१५८

'न्यारा' के अर्थ होते हैं अलग, निराला विलक्षण जो कि ब्रह्म की विशेषता को बताते हैं । 'दूर' के अर्थ बहुत फासले पर होता है । इस शब्द से ब्रह्म के गुण का परिचय नहीं होता । सहजो की शैली में शब्दों की पूर्ति मिलती है । भावना की उत्कटता कम है ।

इसी तरह कबीर के विचारों से मेल खाते हुए सभी सन्तों ने लिखा है, पर अनुभूति की कमी के कारण भावों में तीव्रता कम है ।

आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक ।
कह कबीर नहिं उलटिए, वही एक की एक । - कबीर
गारी आई एक है, पलटे भई अनेक ।
जो पलटू पलटै नहीं, रहै एक की एक । - पलटू साहिब
बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुलतान ।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान । - कबीर
बिरहा बिरहा आखीऐ, बिरहा तू सुलतान ।
फरीदा जिसु तनि बिरह न उपजै, सो तन जान मसानु ।-शेख फरीद
निंदक नियरे राखिए आँगन कुटी छवाय - कबीर
निंदक निज जन तारिहो, मन मल भंजन हार - रज्जब

अध्याय ७

हिन्दी मुक्तक काव्य की उपलब्धि और उपसंहार

इस विकसित मुक्तक परम्परा को देखकर मन में एक प्रश्न उठता है कि कवियों का चित्त मुक्तक रचना में ही क्यों रमा ? आचार्य वामन के अनुसार मुक्तक रचना कवि की प्रथम कृति होती है धीरे धीरे वह प्रबन्ध की ओर क्यों न बढ़ा ? प्रतिभा की कमी तो न थी तब उन को मुक्तक रचने में ही क्यों सन्तोष हुआ ? मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने से पता चलता है कि मानव की प्रवृत्ति यश की ओर उन्मुख होती है । इसी दृष्टि से काव्य शास्त्रियों ने काव्य के उद्देश्य को [illegible] में लोकोत्तर आनंद तथा कीर्ति लिप्सा कहा है । काव्य की उत्पत्ति वाल्मीकि ने लोकोत्तर आनंद के कारण की, वेद भी लोकोत्तर आनंद के कारण ही रचे गए । अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि प्रबन्ध काव्य रचने में लोकोत्तर आनंद की प्रवृत्ति काम कर रही है । मुक्तक का आदि रूप सूक्त काव्य है । सूक्तों की प्रणयन उपदेश देने के लिए हुआ था । इन सूक्तियों से कवि पथ प्रदर्शन करते थे । एक जन-श्रुति प्रसिद्ध है कि एक सेठ को भारवि कवि ने अपनी एक सूक्ति लाख रूपए में बेची । उसी सूक्ति के कारण वह अपनी प्रिय स्त्री तथा पुत्र की हत्या के पाप से बच गया । सूक्ति में कहते हैं

> सहसा विदधीत न क्रियाम विवेकः परमापदो पदम ।
>
> वृणते हि विमृश्य कारिणं गुण लुब्धा, स्वयमेव न संपदा ।[1]

अर्थात् बिना विचारे कोई एकाएक काम न कर बैठना चाहिए । संपत्तियाँ विचार कर पग उठाने वालों को स्वयं ही वरण करती हैं । इसी तरह बिहारी ने भी 'नहिं पराग नहिं मधुर - - - - - -' के द्वारा जय सिंह को सचेत किया था । इस के अतिरिक्त पंडितों ने राज प्रचलित मुक्तक का कारण लिखा है

1- किरातार्जुनीय द्वितीय सर्ग

संस्कृत काल से ही कवियों को राजाओं ने आश्रय दिया । वे उन की प्रशंसा की गाथा में सभी तरह के काव्य रचते थे । वैसे तो प्रबन्ध काव्य भी मिलते हैं पर मुक्तक काव्य का क्षेत्र अधिक समीचीन था । दरबारों में कवि राजा की प्रशंसा अपनी प्रतिभा दिखाने के लिए तथा धन लिप्सा के कारण करते थे । कई कवि होते थे । सभी अपना स्थान ऊंचा रखना चाहते थे । संस्कृत काल में प्रबन्ध काव्य राजा को सुनाए जाते थे पर शृंगार काल तक आते आते यह परिस्थिति बदल गई । प्रबन्ध काव्य के सुनने के लिए न तो राजा और न दरबारियों को किसी को भी अवकाश नहीं होता था । सभी कवि अपना चातुर्य प्रकट करते थे अतः थोड़े से छन्द सुनने का ही समय रहता था इस के अतिरिक्त चुभती बातें, आकर्षित करने वाली उक्तियां, हृदयस्पर्शी तथ्य ही सब को प्रभावित कर पाते थे । हिन्दी साहित्य के समय मुगल दरबारों में कवियों को आश्रय मिला । वहां उर्दू, फारसी के कवि भी होते थे । फारसी के काव्य में विरह उक्तियों पर कल्पना का गहरा रंग चढ़ाकर दरबार में चाकचक्य उत्पन्न करने की ओर अधिक ध्यान दिया गया, इस चमत्कृति में उन्हें वाहवाही मिली, निश्चय ही ऐसे वातावरण में रहकर प्रत्येक कवि वाहवाही तथा धन प्राप्त करने के लिए एक से एक बढ़कर चमत्कृत उक्तियों को प्रभावित करेगा । समय की कमी के कारण वह कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों को भरना चाहेगा । अतः मुक्तक काव्य की धारा को अधिक से अधिक योग सामाजिक वातावरण के कारण मिला । प्रबन्ध काव्य की विशेषताओं का तो हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं इसी से हिन्दी शृंगारी कवियों की दृष्टि उधर नहीं गई । उपासना परक काव्य तो अधिकांश उपदेशात्मक तथा पथ-प्रदर्शक ही है उस में प्रबन्ध को कोई स्थान मिल ही नहीं सकता । नीति-परक काव्य भी थोड़े ही शब्दों में कहा जा सकता है । उस में कथा वार्ता से कोई प्रयोजन ही नहीं, अतः मानव की प्रवृत्तियों, सामाजिक वातावरण, राजनैतिक हलचल तथा धार्मिक आंदोलन ने मुक्तक काव्य को ही प्रथम आश्रय दिया । यहां काव्य, प्रबन्ध काव्यों की ओर दृष्टि जा ही नहीं सकती थी, हमें अब यह देखना है कि मुक्तक परम्परा का निर्वाह सभी कालों में पूर्ण रूप से हुआ है कि नहीं ।

जैसा कि पिछले अध्यायों में हम वर्णन कर चुके हैं कि मुक्तक साहित्य की परम्परा मानव प्रवृत्ति के अनुसार प्रवाहित होती रही, इसी सभी परम्पराओं का मूल स्रोत वेदों में मिलता है । वेदों से प्रभावित संस्कृत काव्य में कुछ बातें कम हुई कुछ बढ़ी, जैसे मानव शुद्ध प्रकृति का उपासक न रहकर मानव की मनोवृत्तियों से प्रभावित होकर प्रकृति को देखने लगा इससे उपासना में भी उस की दृष्टि बदल गई । वह प्राकृतिक शक्तियों के स्थान पर प्रतीकों की आराधना करने लगा । राम, कृष्ण, शिव पार्वती आदि ने इन्द्र, सूर्य, अग्नि का स्थान लिया । प्राकृत काव्य में प्रकृति की शक्तियों की ओर मानव का ध्यान ही नहीं गया । वह अपनी आत्मा का उत्थान, ब्रह्म की जानकारी, ब्रह्म को पाने का उपाय, जीवन मरण से छुटकारे का साधन ढूढ़ने लगा । वास्तव में वह अपने ऊपर अधिक ध्यान देने लगा । उसे संसार असार, माया से पूर्ण तथा अभिलाषाओं सहित प्रतीत होने लगा । मानव उन से बचने का प्रयत्न कर अपने में लीन होने का प्रयत्न करने लगा । यही धारा अपभ्रंश काव्य में भी बही । प्रत्येक कवि इसी में रत रहा कि किसी तरह संसार से मोक्ष पाया जाय । इस नश्वर शरीर का क्या भरोसा । नाम के आधार से संसार की यात्रा पूर्ण की जाय । यद्यपि वैदिक युग में स्त्री, पुत्र, धन, तथा समाज सभी की अभिलषित कामना करता था, पर अपभ्रंश काल के आते आते तक न तो उसे स्त्री की चिंता न पुत्र की । धन उस की उन्नति में बाधक तथा समाज का संपर्क व्यर्थ । वास्तव में यह कहना उचित ही होगा कि मानव केवल अपने व्यक्तित्व को ही रखना चाहता है । इसी धारा का प्रभाव हिन्दी उपासना-परक मुक्तक काव्य पर पड़ा । सभी कवि इस शरीर को हेय दृष्टि से देखते रहे । केवल आत्मा की उन्नति होनी चाहिए । वैदिक ऋषि आत्मोन्नति के साथ साथ स्वस्थ शरीर के लिए भी प्रयत्नशील थे । वे देह को देवताओं की पुरी तथा परम ज्योति के दर्शन का मन्दिर मानते थे -

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या ।

तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।[१]

१- अथर्व वेद १०।२।३१

अर्थात् यह शरीर देवताओं की अयोध्यापुरी है जिस में आठ चक्र और नव द्वार हैं । उस में सुखदायक स्वर्णमय कोष है जो प्रभु की ज्योति से व्याप्त है । इसी की परम्परा में हिन्दी में कबीर कहते हैं -

नर नारी सब नरक है, जब लग देह सकाम ।
कहै कबीर ते राम के, जे सुमिरै निहकाम ।[1]

इतना सब होते हुए भी धारा अविच्छिन्न ही रही । इस में दृष्टि में भले ही भेद हो गया है । मुक्तक की परम्परा कहीं भी अविच्छिन्न नहीं होती । शृंगार-परक काव्य की स्रोतस्विनी भी वैदिक साहित्य से निकल कर उसी वेग से बहती रही । उस में भी कहीं कोई भाव अधिक प्रबल है कहीं क्षीण । वैदिक साहित्य से निकली धारा का रूप तथा सौंदर्य श्रेष्ठ संस्कृत साहित्य में कालिदास आदि के प्रयास से द्विगुणित हुआ, काव्य शास्त्रों में उस का कुछ रूप निखरा, पर प्राकृत साहित्य में उस का वेग तीव्रतर हो गया । वेग ही नहीं बल्कि क्षेत्र भी बढ़ गया । वेद में देवताओं का सौंदर्य, संस्कृत में राजा महाराजाओं तथा काव्य शास्त्रों में परम सुंदरियों का विवेचन रहा पर प्राकृत में यह धारा जन जन जीवन पर आधारित हो गई । इस में प्रत्येक स्त्री तथा पुरुष नायक एवं नायिका है । वास्तव में इस धारा में साधारण से साधारण मानव अवगाहन करने लगा । इस का स्रोत गाथासप्तशती है जैसा हम पिछले अध्याय में कह चुके हैं । इस के बाद धारा का प्रवाह बढ़ता गया । अपभ्रंश में सिद्धों तथा नाथों के द्वारा कुछ क्षीण सी प्रतीत हुई पर हिन्दी में बिहारी ने इस में वेग को तीव्र तम कर दिया । बिहारी द्वारा शृंगार-परक मुक्तक काव्य सन् १८५० तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित रहा । न तो उस में किसी प्रकार की क्षीणता ही आई और न स्वच्छता की कमी ।

इसी भाँति नीति-परक मुक्तक काव्य की प्रवृत्ति वैदिक काव्य से चलकर अक्षुण्ण रूप से बहती रही । कहीं कहीं दृष्टिकोण में समाज

१- कबीर ग्रंथावली पृ० सं० ४९ पद ६.७

के कारण परिवर्तन हो गया है, पर आदि नीति तत्व वैसे ही बने रहे। वर्ण्य विषय की दृष्टि से हिन्दी नीति साहित्य धारा का क्षेत्र विस्तृत है। उस ने जीवन के हर पहलू को आंका मानव की प्रत्येक प्रवृत्तियों के मूल्य को आंका तथा लोक व्यवहार की दृष्टि से व्यक्ति को परखा है।

कला की दृष्टि तथा कवियों की शैली की दृष्टि से भी परम्परा अक्षुण्ण बनी रही। कवियों की अनुभूति, पर्यवेक्षण तथा परिस्थितियों से प्रेरित होकर नई नई उद्भावनाएं उत्पन्न हुईं तथा धारा के प्रवाह को और गति मिली। प्रत्येक कवि ने अपनी शैली के द्वारा इस धारा का अवगाहन किया तथा धारा के आगे बढ़ाने में सहयोग दिया। मेरा यही कहना है कि समाज बदल गया, मानव की मनोवृत्तियों में परिवर्तन आ गए, बड़े बड़े राजा आए और चले गए पर जो मुक्तक काव्य की धारा मूल मानव प्रवृत्तियों के द्वारा वैदिक काल से बही थी वह अक्षुण्ण बनी रही। निरन्तर बहते बहते आज के साहित्य को भी अपनी विचार धाराओं से प्रभावित कर रही है।

- - - - - - -

पुस्तकों की सूची

संस्कृत - प्राकृत - अपभ्रंश के ग्रंथ

आर्यासप्त शती - गोवर्धनाचार्य - निर्णय सागर प्रेस

गाथासप्त शती - निर्णय सागर प्रेस

पाहुड़ दोहा - मुनि रामसिंह

सावयधम्म दोहा - देवसेन कृत

सुभाषित रत्न भांडागार - काशीनाथ - निर्णय सागर प्रेस

सूक्ति मुक्तावली - जल्हण - ओरियंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा

शतकत्रय - भर्तृहरि कृत - श्री वेंकटेश्वर [illegible] प्रकाशित

शिवमहिम्नस्तोत्र - पुष्पदंत

इतिहास ग्रंथ

अपभ्रंश साहित्य का इतिहास - डा० हरिवंश कोछड़

प्राकृत साहित्य का इतिहास - डा० जगदीश चन्द्र जैन

प्राचीन भारतीय साहित्य - विंटरनित्ज़

संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा० हंसराज अग्रवाल

संस्कृत साहित्य की रूपरेखा - श्री चन्द्रशेखर पाण्डेय

संस्कृत साहित्य का इतिहास - डा० ए० बी० कीथ

हिन्दी साहित्य का इतिहास - डा० राम चन्द्र शुक्ल

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा० राम कुमार वर्मा

हस्तलिखित पुस्तक

माखन दोहावली - हस्तलिखित - हिंदी साहित्य - सम्मेलन, प्रयाग

कवित्त श्रीपति के २२१२३ संख्या ५० - मयाशंकर याज्ञिक

रसनिधि के दोहे - खंडित प्रति - मयाशंकर याज्ञिक संग्रह

दोहा फुटकर [illegible]

बरवै [illegible] - नागरी प्रचारिणी सभा

कोश

बृहद् हिन्दी कोश - ज्ञान मंडल प्रकाशन काशी - सं. कालिका प्रसाद

ब्रजभाषा सूर कोश - सातवां खंड - लखनऊ विश्व विद्यालय - निर्देशक डा. दीनदयालु गुप्त
सं. प्रेमनारायण टंडन पी.एच.डी.

विशाल शब्द सागर - सं. श्री नवल जी - न्यू इंपीरियल बुक डिपो - नई सड़क - दिल्ली

बृहद् पर्यायवाची कोश - भोलानाथ तिवारी - किताब महल - इलाहाबाद

श्रीधर भाषा कोश - नवल किशोर प्रेस - प्रकाशक - १९५९ ई.

काव्य

कबीर वचनावली - ना० प्र० स० काशी

कबीर ग्रंथावली - ना० प्र० स० काशी

कबीर साखी संग्रह - बेलवेडियर प्रेस

पलटू दास की बानी भाग १

भाग २

सुन्दर विलास - बेलवेडियर प्रेस

भीखा साहिब की बानी

जगजीवन साहिब की बानी

दूलन दास की बानी

दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी

दरिया साहिब (बिहार वाले) की बानी

चरन दास की बानी

गरीब दास की बानी

रैदास की बानी

गुलाल साहिब की बानी

मलूक दास की बानी

सहजो बाई का सहज प्रकाश

रज्जब की बानी - बम्बई

बखना जी की बानी - सं. साहित्य सुमन माला - प्रथम सुमन सं० स्वामी मंगलदास

संत बानी संग्रह भाग १ - बेलवेडियर प्रेस

गोरख बानी - प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

भूषण ग्रंथावली - श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - साहित्य सेवक कार्यालय - काशी

आनन्दघन ग्रंथावली - नागरी प्रचारिणी सभा काशी

तुलसी रचनावली - सं. बजरंग बली 'विशारद' प्रका. श्री सीताराम प्रेस

तुलसी दोहावली - गीता प्रेस, गोरखपुर

[illegible] दोहावली - महावीर सिंह गहलोत

सतसई सप्तक - डा० श्याम सुन्दर दास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी

बिहारी सतसई रत्नाकर - सं. जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर

रहिमन विलास - सं० ब्रजरत्न दास, राम नारायण लाल प्रयाग

गिरधर कविराय - कुंडलियां - वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस
कुंडलियां गिरिधरराय - प्रकाशक रामकुमार बुक डिपो - हजरतगंज लखनऊ

दीन दयाल गिरि ग्रंथावली - ना० प्र० स० काशी

भिखारी दास - काव्य निर्णय

गंग के कवित्त - पुरोहित हर नारायण लाल शर्मा

बेनी प्रवीन ~~बेनी कवि~~ - नव रस तरंग - सं. पं. कृष्ण बिहारी मिश्र बी.ए. एल.एल.बी.

देव सुधा - सं० मिश्रबंधु - लखनऊ

पद्माकर पंचामृत - सं० विश्वनाथ प्रसाद, काशी

राम मयंक - श्री हरदयालु सिंह जी

सेनापति कवित्त रत्नाकर - सं. उमाशंकर शुक्ल एम.ए.

घनानंद कवित्त - वाणी वितान प्रेस, वाराणसी
रसखान पदावली - सं. श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
रसनिधि - रतनहजारा सं. जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव - भारत जीवन प्रेस काशी

केशव ग्रंथावली - हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग

मुबारक रत्नावली - सं० कवि किंकर, प्रयाग

दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक - डा० त्रिभुवन सिंह

देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र

निर्गुण काव्यदर्शन - सिद्धिनाथ तिवारी

बिहारी और उनका साहित्य - हरवंश लाल शर्मा

बिहारी मीमांसा - डा० राम रतन भटनागर

बिहारी सत - डा० संसार चन्द्र

बिहारी का नया मूल्यांकन - डा० बच्चन सिंह

भारतीय मुक्तक परम्परा - डा० राम सागर त्रिपाठी

मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियाँ - डा० परशु राम चतुर्वेदी

मलूक दास सुन्दर दास चरन दास की दार्शनिक विचारधारा - डा. ~~[illegible]~~ दीक्षित

महाकवि देव - भोला नाथ तिवारी

रीतिकालीन कविता एवं शृंगार रस का विवेचन - राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी

रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना - डा० बच्चन सिंह

रीति काव्य की भूमिका तथा देव - डा० नगेन्द्र

रसखान काव्यमय भाष्य - दुर्गा शंकर मिश्र

वेद में सांकेतिक अलंकार - पं रघुनंदन शर्मा

वैदिक सार - The Vedic Essence - विश्वेश्वरानंद - प्रकाशन - होशियारपुर

संत साहित्य - डा० सुदर्शन मजीठिया

संत कवि दरिया - एक अनुशीलन - डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी

सिद्ध साहित्य - डा० धर्मवीर भारती

सेनापति और उनका काव्य - दुर्गा शंकर मिश्र

संत कबीर - डा० राम कुमार वर्मा

संत कबीर दर्शन - राजेन्द्र सिंह गौड़

हिन्दी साहित्य पर संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश काव्य का प्रभाव - डा० हरनाम सिंह शर्मा

हिन्दी में शृंगार परम्परा और बिहारी - डा० गणपति चन्द्र गुप्त

हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास - डा० जितेन्द्र नाथ पाठक

हिन्दी युग और प्रवृत्तियाँ - शिव कुमार शर्मा

हिन्दी की काव्य शैलियों का विकास - हरदेव बाहरी

हिन्दी नीति काव्य - डा० भोला नाथ तिवारी

हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग - नामवर सिंह, प्रयाग

हिन्दी में नीति काव्य का विकास - श्री राम स्वरूप

हिन्दी साहित्य के बृहद का साहित्य षष्ठ भाग - डा० नगेन्द्र

हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि - डा० गोविन्द त्रिगुणायत

हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय - डा० बड़थ्वाल

हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास